# प्रेमचंद

२

प्रस्तुतकर्ता - अमृत राय

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

मूल्य — आठ रुपया

प्रकाशक — हस प्रकाशन, इलाहाबाद

मुद्रक — सम्मेलन मुद्रणालय, इलाहाबाद

आवरण-सज्जा — कृष्ण चद्र श्रीवास्तव

प्रथम सस्करण — प्रेमचद स्मृति दिवस १९६२

# भूमिका

'गुप्तधन' के दो खण्डों में प्रेमचंद की छप्पन नयी कहानियाँ दी जा रही हैं। ये कहानियाँ इस अर्थ में नयी नहीं हैं कि इतनी नयी पाण्डुलिपियाँ मिली हैं। वह कैसे होता? कहानियों की जिस क़दर माँग रहती है, साधारण जाने-माने लेखक के पास भी कहानी नहीं बचती, प्रेमचंद की तो बात ही और है।

ये कहानियाँ नयी इस अर्थ में हैं कि हिन्दी पाठकों के सामने पहली बार संकलित होकर आ रही हैं। हर कहानी के अंत में सूत्र का संकेत दिया हुआ है और जैसा कि आप देखेंगे, इनमें से अधिकांश कहानियाँ हमको मुंशीजी के उर्दू कहानी-संग्रहों और पुरानी पत्रिकाओं से मिली हैं और कुछ हैं जो हिन्दी की पुरानी पत्रिकाओं में दबी पड़ी थीं। क्यों ये कहानियाँ उर्दू से हिन्दी में नहीं आयीं या जो हिन्दी में हैं भी, क्यों उन्हें संकलित नहीं किया गया—यह मैं नहीं कह सकता। यही अनुमान होता है कि मुंशीजी चीज़ों के रख-रखाव के मामले में जिस क़दर लापरवाह थे, समय पर उनको ये कहानियाँ न मिली होंगी, कटिंग न रखी होगी, फ़ाइल इधर-उधर हो गयी होगी, शायद कुछ कहानियाँ ध्यान से भी उतर गयी हों, जो भी बात रही हो, ये कहानियाँ छूट गयीं। गुमशुदा कहानियों का यह नया ख़ज़ाना, यह गुप्त धन, आपके सामने रखते हुए मुझे वास्तव में बड़ा हर्ष हो रहा है—यही कि मेहनत ठिकाने लगी, एक ढंग का काम हुआ। 'सोज़े वतन' की चार कहानियाँ भी, जो पहले और कहीं नहीं छपीं, इस किताब में शामिल कर ली गयी हैं। इस तरह इन कहानियों को लेकर प्रेमचंद की कुल कहानियों की संख्या २१० से २६६ हो जाती है। मेरा अनुमान है कि अभी तीस-चालीस कहानियाँ और मिलनी चाहिए। उर्दू-हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फ़ाइलें—और हिन्दी से भी ज्यादा उर्दू पत्र-पत्रिकाओं की फ़ाइलें—आसानी से नहीं मिलतीं। अकसर खण्डित मिलती हैं। कम जाने-माने और साप्ताहिक-पाक्षिक पत्रों की तो प्रायः नहीं मिलतीं। उदाहरण के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' की फ़ाइल का न मिलना बड़े ही कष्ट की बात है। मेरा विश्वास है कि उसमें मुंशीजी की कुछ कहानियाँ मिलनी चाहिए। इतना तो निश्चित है कि उसमें मुंशीजी की पहली हिन्दी कहानी है। एक चिट्ठी में इसका संकेत मिलता है। लेकिन वह कहानी कौन-सी है, कैसी है, किसी संग्रह में संकलित होकर प्रकाशित होती रही है या नहीं—यह सब कुछ भी पता नहीं चल सकता जब तक वह फ़ाइल देखने को न मिले। और कहीं न मिले, 'प्रताप' कार्यालय में ज़रूर मिलेगी, इस विश्वास से मैं वहाँ गया, पर निराश होना पड़ा। पर मैं पूरी तरह निराश नहीं हूँ और सच तो यह है कि पुराने पत्रों को

छानबीन अभी उस आत्यंतिक लगन से की भी नहीं जा सकी है जो कि अपेक्षित है। मुझे यक़ीन है कि अगले कुछ बरसों में मुझे या मेरे किसी और उत्साही भाई को और भी कुछ कहानियाँ मिलेंगी।

उर्दू से प्राप्त कहानियों को ज्यों का त्यों छाप देना हिन्दी पाठकों के प्रति अन्याय समझकर मैंने उनको हिन्दी का जामा पहनाया है — मुंशीजी की अपनी हिन्दी का, यानी जहाँ तक मुझसे हो सका। कहानी की आत्मा ही नहीं, भाषा और शैली की भी रक्षा करने के इस प्रयत्न में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है या नहीं मिली, इसका निर्णय तो आप करेंगे, पर मुझे संतोष है कि मैंने अपनी ओर से इसमें कुछ उठा नहीं रखा।

उर्दू संग्रहों में मुंशीजी की दो कहानियाँ 'बरात' और 'क़ातिल की माँ' ऐसी मिलीं जो हिन्दी में नहीं मिलतीं। मुझे उनको भी शामिल कर लेना चाहिए था। लेकिन मैंने उनको छोड़ देना ही ठीक समझा क्योंकि वही या लगभग वही कहानियाँ, बहुत थोड़े हेर-फेर के साथ, श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद के कहानी संग्रह 'नारी हृदय' में मिलती है। उनके शीर्षक क्रमशः 'वरयात्रा' और 'हत्यारा' हैं। संग्रह में आने के पहले ये दोनों ही कहानियाँ 'हंस' में छपी थीं, खुद मुंशीजी ने उन्हें छापा था। मुंशीजी के नाम से ये कहानियाँ कब और कैसे उर्दू में छपने लगीं, इस रहस्य का उद्‌घाटन हुए बिना उन कहानियों को इस संग्रह में शामिल करना ठीक नहीं जान पड़ा। हो सकता है कि वे संग्रह मुंशीजी के देहान्त के बाद प्रकाशकों ने अपने मन से तैयार कर लिये हों। जो भी बात हो, वे कहानियाँ विवादास्पद हैं और उनको यहाँ शामिल नहीं किया गया।

'ताँगेवाले की बड़' और 'शादी की वजह' सही मानों में कहानी की प्रेमचंदी परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आतीं, लेकिन अत्यंत रोचक हैं, कहानी के समान ही रोचक, उन्हें किसी तरह छोड़ा नहीं जा सकता था और लेखों के साथ उनको देना उनकी मिट्टी ख़राब करना होता क्योंकि वे लेख से ज्यादा कहानी के क़रीब है और उनकी चाशनी बिल्कुल कहानी की है, इसलिए उन्हें यहीं शामिल कर लिया गया है। ये दोनों ही चीजें 'जमाना' में छपी थीं और 'बंबूक़' के नाम से छपी थीं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि अपनी हलकी-फुलकी चीजों के लिए मुंशीजी कभी-कभी इस नाम का इस्तेमाल करते थे जो १९०५ के आसपास कानपुर में ही उन्हें अपने क़रीबी दोस्तों की महफ़िल में मिल चुका था।

अमृत राय

# अनुक्रम

# गुप्त धन – २

# पुत्र-प्रेम

१

बाबू चैतन्यदास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नही था, उसका यथायोग्य व्यवहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो-तीन गाँवों में उनकी जमीदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वभावत. प्रश्न होता था — इससे स्वय मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का ? यदि दो मे से किसी का कुछ भी उपकार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समान समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थें। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनो कालेज में पढते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनों ही चतुर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी-बड़ी आशाएँ थी। वे उसे विद्योन्नति के लिए इग्लैण्ड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

२

किन्तु कुछ ऐसा सयोग हुआ कि प्रभुदास को बी० ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई। दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनोदिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी। यहाँ तक कि परीक्षा मे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ-सम्वाद सुनकर भी उसके चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न दिखायी दिया। वह सदैव गहरी चिन्ता मे डूबा रहता था। उसे अपना जीवन बोझ-सा जान पडने लगा था। एक रोज चैतन्यदास ने डाक्टर साहब से पूछा — यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा का कोई असर नही हुआ ?

डाक्टर साहब ने सन्देहजनक उत्तर दिया — मैं आपको सशय में नही डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह ट्युबरक्युलासिस है।

चैतन्यदास ने व्यग्र होकर कहा — तपेदिक ?

डाक्टर — जी हाँ, उसके सभी लक्षण दिखायी देते है।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा, मानो उन्हे कोई विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो — तपेदिक हो गया !

डाक्टर ने खेद करते हुए कहा — यह रोग बहुत ही गुप्तरीति से शरीर में प्रवेश करता है।

चैतन्यदास — मेरे खानदान मे तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर — सम्भव है, मित्रो से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हों।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले — अब क्या करना चाहिए ?

डाक्टर — दवा करते रहिये। अभी फेफडो तक असर नही हुआ है। इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास — आपके विचार मे कब तक दवा का असर होगा ?

डाक्टर — निश्चयपूर्वक नही कह सकता। लेकिन तीन-चार महीने में ये स्वस्थ हो जायेंगे। जाडो में इस रोग का जोर कम हो जाया करता है।

चैतन्यदास — अच्छे हो जाने पर ये पढ़ने मे परिश्रम कर सकेंगे ?

डाक्टर — मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सके।

चैतन्यदास — किसी सैनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थ्यालय) मे भेज दूँ तो कैसा हो ?

डाक्टर — बहुत ही उत्तम।

चैतन्यदास — तब तो ये पूर्णरीति से स्वस्थ हो जायँगे ?

डाक्टर — हो सकते हैं, लेकिन इस रोग को दबा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है।

चैतन्यदास नैराश्य भाव से बोले — तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया।

३

गर्मी बीत गयी। बरसात के दिन आये। प्रभुदास की दशा दिनोंदिन बिगडती गई। वह पड़े-पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बडे-बड़े डाक्टरो की व्याख्याएँ पढ़ा करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता। पहले

कुछ दिनों तक तो वह अस्थिरचित्त-सा हो गया था। दो-चार दिन भी दशा सँभली रहती तो पुस्तके देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता। दो-चार दिन भी ज्वर का प्रकोप बढ जाता तो जीवन से निराश हो जाता। किन्तु कई मास के पश्चात् जब उसे विश्वास हो गया कि इस रोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड दी। पथ्यापथ्य का विचार न करता, घरवालो की निगाह बचाकर औषधियाँ ज़मीन पर गिरा देता। मित्रो के साथ बैठकर जी बहलाता। यदि कोई उससे स्वास्थ्य के विषय मे कुछ पूछता तो चिढकर मुँह मोड लेता। उसके भावों मे एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी और बातो मे एक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी। वह लोक-रीति और सामाजिक प्रथाओ पर बडी निर्भीकता से आलोचनाएँ किया करता। यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन मे रह-रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ, तथापि वे कुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोक-मत के भय से धैर्य के साथ दवा-दर्पन करते जाते थे।

जाडे का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टेम्परेचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा — अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है?

डाक्टर — बिलकुल नहीं, बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाता है।

चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा — तब आप लोग क्यो मुझे इस भ्रम मे डाले हुए थे कि जाड़े में अच्छे हो जायेंगे? इस प्रकार दूसरो की सरलता का उपयोग करना अपना मतलब साधने का साधन हो तो हो, इसे सज्जनता कदापि नही कह सकते।

डाक्टर ने नम्रता से कहा — ऐसी दशाओं मे हम केवल अनुमान कर सकते हैं और अनुमान सदैव सत्य नही होते। आपको ज़ेरबारी अवश्य हुई, पर मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी इच्छा आपको भ्रम मे डालने की नही थी।

शिवदास बड़े दिन की छुट्टियों मे आया हुआ था, इसी समय वह कमरे में आ गया और डाक्टर साहब से बोला — आप पिता जी की कठिनाइयो का स्वय अनुमान कर सकते है। अगर उनकी बात नागवार लगी हो तो उसे क्षमा कीजिएगा।

चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा — तुम्हें यहाँ आने की क्या जरूरत थी। मै तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँ मत आया करो। लेकिन तुमको खबर ही नही होती।

शिवदास ने लज्जित होकर कहा — मैं अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों। मै केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहता था कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए?

डाक्टर ने कहा — अब केवल एक ही साधन और है। इन्हे इटली के किसी सैनेटोरियम मे भेज देना चाहिए।

चैतन्यदास ने सजग होकर पूछा — कितना खर्च होगा?

'ज्यादा से ज्यादा तीन हजार। साल भर रहना होगा।'

'निश्चय है कि वहाँ से अच्छे होकर आवेगे?'

'जी नहीं। यह तो एक भयकर रोग है, साधारण बीमारियो मे भी कोई बात निश्चयरूप से नही कही जा सकती।'

'इतना खर्च करने पर भी वे वहाँ से ज्यो के त्यो लौट आये तो?'

'तो ईश्वर की इच्छा। आपको यह तसकीन हो जायगी कि इनके लिए मै जो कुछ कर सकता था, कर दिया।'

४

आधी रात तक घर मे प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्ध फल के लिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवदास भी उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढ़ता के साथ अनुमोदन कर रही थी। अन्त में माता की धिक्कारो का यह फल हुआ कि शिवदास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया। बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से काम लिया। पति के सद्भावो को प्रज्वलित करने की चेष्टा की। धन की नश्वरता की लोकोक्तियाँ कहीं। इन शस्त्रो से विजय-लाभ न हुआ तो अश्रु-वर्षा करने लगी। बाबू साहब जल-बिन्दुओ के इस शर-प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों मे हार स्वीकार की — अच्छा भाई, रोओ मत। जो कुछ तुम कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी — तो कब?

'रुपये हाथ मे आने दो।'

'तो यह क्यों नही कहते कि भेजना ही नही चाहते?'

'भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली है। क्या तुम नही जानती?'

'बैंक में तो रुपये है? जायदाद तो है? दो-तीन हज़ार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है?'

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खा जायँगे और एक क्षण के बाद बोले —— बिलकुल बच्चो की-सी बाते करती हो। इटली में ऐसी कोई सजीवनी नही रक्खी हुई है जो तुरन्त चमत्कार दिखायेगी। जब वहाँ भी केवल प्रारब्ध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेगे। पूर्व पुरुषो की सचित जायदाद और रक्खे हुए रुपये मै अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नही कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते-डरते कहा —— आखिर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है ?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले —— आधा नही, उसको मैं अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती, वह खानदान की मर्यादा और ऐश्वर्य बढ़ाता और इस लगाये हुए धन के फलस्वरूप कुछ कर दिखाता। मै केवल भावुकता के फेर में पडकर धन का ह्रास नही कर सकता।

तपेश्वरी अवाक् रह गयी। जीतकर भी उसकी हार हुई।

इस प्रस्ताव के छः महीने बाद शिवदास बी० ए० पास हो गया। बाबू चैतन्यदास ने अपनी जमीदारी के दो आने बन्धक रखकर कानून पढने के निमित्त उसे इगलैण्ड भेजा। उसे बम्बई तक खुद पहुँचाने गये। वहाँ से लौटे तो उनका अन्तःकरण सदिच्छाओं से परिपूर्ण था। उन्होने एक ऐसे चलते हुए काम मे रुपये लगाये थे जिससे अपरिमित लाभ होने की आशा थी। उनके लौटने के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषाओं को लिये हुए परलोक सिधारा।

५

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने सम्बन्धियो के साथ बैठे चिता-ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र-प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ-सिद्धान्त पर ग़ालिब आ गया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन में यह कल्पना उठ रही थी —— सम्भव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय ! मैंने तीन हजार का मुँह देखा और पुत्र-रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती जाती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणो से बेध रही थी। रह-रहकर उनके हृदय मे वेदना की शूल-सी उठती थी। उनके अन्तर की ज्वाला उस चिता-ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात् उनके कानो मे शहनाइयो की आवाज़ आयी। उन्होंने आँख ऊपर उठाई तो मनुष्यो का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते,

गाते, पुष्प आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँचकर उन्होने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमे से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खडा हो गया। बाबू साहब ने पूछा—किस मुहल्ले में रहते हो?

युवक ने जवाब दिया—हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहा कम आते हैं, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमे मणिकर्णिका घाट पर ले जाना।

चैतन्यदास—ये सब आदमी तुम्हारे साथ है?

युवक—हाँ, और लोग पीछे आते है। कई सौ आदमी साथ आते है। यहाँ तक आने में सैकड़ों उठ गये पर सोचता हूँ कि बूढे पिता की मुक्ति तो बन गई। धन और है ही किसलिए।

चैतन्यदास—उन्हें क्या बीमारी थी?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा, मानो वह अपने किसी निज सम्बन्धी से बात कर रहा हो—बीमारी का किसी को कुछ पता नही चला। हरदम ज्वर चढा रहता था। सूखकर कॉटा हो गये थे। तीन वर्ष तक खाट पर पड़े रहे। जिसने जहाँ बताया वहाँ लेकर गये। चित्रकूट, हरिद्वार, प्रयाग सभी स्थानो मे ले-लेकर घूमें। वैद्यो ने जो कुछ कहा उसमे कोई कसर नहीं की।

इतने मे युवक का एक और साथी आ गया और बोला—साहब, मुँह देखी बात नही, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीकरे समझा। घर की सारी पूँजी पिता की दवा-दारू मे स्वाहा कर दी। थोडी-सी जमीन तक बेच दी, पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गद्गद स्वर से कहा—भैया, रुपया-पैसा हाथ का मैल है। कहाँ आता है, कहाँ जाता है, मनुष्य नही मिलता। जिन्दगानी है तो कमा खाऊँगा। पर मन में यह लालसा तो नही रह गयी कि हाय! यह नही किया, उस वैद्य के पास नही गया, नही तो शायद बच जाते। हम तो कहते है कि कोई हमारा सारा घर-द्वार लिखा ले, केवल दादा को एक बोल बुला दे। इसी माया-मोह का नाम जिन्दगानी है, नही तो इसमे क्या रक्खा है? धन से प्यारी जान, जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब, आपसे सच कहता हूँ, अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नही तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यदास सिर झुकाये ये बातें सुन रहे थे। एक-एक शब्द उनके हृदय मे शर के समान चुभता जाता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशून्यता, अपनी भौतिकता अत्यन्त भयकर दिखायी देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि सस्कार मे उन्होने हजारो रुपये खर्च कर डाले। उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

—सरस्वती, जून १९२०

## इज्ज़त का खून

मैने कहानियो और इतिहासों मे तकदीर के उलट-फेर की अजीबोगरीब दास्ताने पढी है। शाह को भिखमगा और भिखमगे को शाह बनते देखा है। तकदीर एक छुपा हुआ भेद है। गलियो मे टुकड़े चुनती हुई औरते सोने के सिहासन पर बैठ गयी है और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सर झुकाती थी, आन की आन मे चील-कौओं का शिकार बन गये है। पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कही नही मिलती। आह, उन घटनाओ को आज याद करती हूँ तो रोगटे खडे हो जाते है और हैरत होती है कि अब तक मै क्यो और क्योंकर जिन्दा हूँ। सौन्दर्य लालसाओ का स्रोत है। मेरे दिल मे क्या-क्या लालसाएँ न थी पर आह, निष्ठुर भाग्य के हाथों मर मिटी। मै क्या जानती थी कि वही आदमी जो मेरी एक-एक अदा पर कुर्बान होता था, एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा।

आज तीन साल हुए जब मैंने इस घर में कदम रक्खा। उस वक्त यह एक हरा-भरा चमन था। मैं इस चमन की बुलबुल थी, हवा में उड़ती थी, डालियो पर चहकती थी, फूलों पर सोती थी। सईद मेरा था, मै सईद की थी। इस सगमरमर के हौज़ के किनारे हम मुहब्बत के पांसे खेलते थे। इन्हीं क्यारियो में उल्फ़त के तराने गाते थे। इसी चमन में हमारी मुहब्बत की गुप-चुप बातें होती थी, मस्तियों के दौर चलते थे। वह मुझसे कहते थे — तुम मेरी जान हो। मै उनसे कहती थी — तुम मेरे दिलदार हो। हमारी जायदाद लम्बी-चौड़ी थी। ज़माने की कोई फ़िक्र, जिन्दगी का कोई ग़म न था। हमारे लिए जिन्दगी सशरीर आनन्द, एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादे खिलती थी और खुशियाँ हँसती थी। जमाना हमारी इच्छाओं पर चलनेवाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा — मेरी जान, मैं तुमसे एक बिनती करने आया हूं। देखना इन मुसकराते हुए होंठो पर इनकार का हर्फ न आये। मैं चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ। मेरे लिए

तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है। मै अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फ़कीर बनकर रहूँ। तुम मेरी नूरजहाँ बन जाओ, मै तुम्हारा सलीम बनूँगा, और तुम्हारी मूँगे जैसी हथेली के प्यालो पर उम्र बसर करूँगा।

मेरी आँखे भर आयी। खुशियाँ अपनी चोटी पर पहुँचकर आँसू की बूँद बन गयी।

२

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज मे कुछ तबदीली नजर आने लगी। हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगडा या बदमजगी न हुई थी। मगर अब वह सईद न था जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी। वह अब रात की रात गायब रहता। उसकी आँखों मे प्रेम की वह उमग न थी न अन्दाजों मे वह प्यास न मिज़ाज मे वह गर्मी।

कुछ दिनो तक इस रूखेपन ने मुझे खूब रुलाया। मुहब्बत के मज़े याद आ-आकर तड़पा देते। मैंने पढ़ा था कि प्रेम अमर होता है, क्या वह स्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नही वह अब भी लहरे मार रहा था। पर अब उसका बहाव किसी दूसरी ओर था। वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मैं भी सईद से आँखे चुराने लगी। बेदिली से नही, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आँखे मिलाने की ताब न थी। उसे देखते ही मुहब्बत के हजारो करिश्मे नजरो के सामने आ जाते और आँखे भर आती। मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिंचता था, कभी-कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरो पर गिरूँ और कहूँ —— मेरे दिलदार, यह बेरहमी क्यो? क्यों तुमने मुझसे मुँह फेर लिया है, मुझसे क्या ख़ता हुई है? लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते मे खड़ा हो जाता।

यहाँ तक कि धीरे-धीरे मेरे दिल मे भी मुहब्बत की जगह हसरत ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी। मेरे लिए सईद अब बीते हुए बसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठडी हो गयी। प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नही, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गयी। जो आदमी प्रेम के पवित्र मन्दिर मे मैल से भरा हुआ हो वह हरगिज इस योग्य नही कि मैं उसके लिए घुलू और मरूँ।

एक रोज़ शाम के वक़्त मै अपने कमरे मे पलग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी,

तभी अचानक एक सुन्दर स्त्री मेरे कमरे में आयी। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा। रूप की ज्योति ने दरो-दीवार को रौशन कर दिया गोया अभी सफ़ेदी हुई है। उसकी अलकृत शोभा, उसका खिला हुआ, फूल-जैसा लुभावना चेहरा, उसकी नशीली मिठास, किसकी तारीफ करूँ। मुझ पर एक रोब-सा छा गया। मेरा रूप का घमण्ड धूल में मिल गया। मैं आश्चर्य मे थी कि यह कौन रमणी है और यहाँ क्योकर आयी? बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूँ और पूछूँ, कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे मे आया। मैं समझ गयी कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा। मै उठी जरूर पर शान से गर्दन उठाये हुए। आँखों में हुस्न के रोब की जगह घृणा का भाव आ बैठा। मेरी आँखो मे अब वह रमणी रूप की देवी नही, डसनेवाली नागिन थी। मै फिर चारपाई पर बैठ गयी और किताब खोलकर सामने रख ली। वह रमणी एक क्षण तक खडी मेरी तस्वीरों को देखती रही, तब कमरे से निकली, चलते वक़्त उसने एक बार मेरी तरफ़ देखा, उसकी आँखों से अगारे निकल रहे थे जिनकी किरणों मे हिंस्र प्रतिशोध की लाली झलक रही थी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ — सईद इसे यहाँ क्यो लाया? क्या मेरा घमण्ड तोड़ने के लिए?

३

जायदाद पर मेरा नाम था पर यह केवल एक भ्रम था, उस पर अधिकार पूरी तरह सईद का था। नौकर भी उसी को अपना मालिक समझते थे और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते। मै सब्र के साथ जिन्दगी के दिन काट रही थी। जब दिल में उमगे न रही, तो पीडा क्यो होती?

सावन का महीना था, काली घटा छायी हुई थी, और रिमझिम बूँदें पड़ रही थीं। बागीचे पर हसरत का अँधेरा और सियाह दरख़्तों पर जुगनुओ की चमक ऐसी मालूम होती थी कि जैसे उनके मुँह से चिनगारियों जैसी आहें निकल रही है। मैं देर तक हसरत का यह तमाशा देखती रही। कीड़े एक साथ चमकते थे और एक साथ बुझ जाते थे, गोया रोशनी की बाढ़े छूट रही है। मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक़ हुआ। मौसम की हालतें हसरत के मारे हुए दिलों पर भी अपना जादू कर जाती है। बागीचे में एक गोल बँगला था। मैं उसमे आयी और बरामदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी। मुझे आज मालूम हुआ कि निराशा में भी एक आध्यात्मिक आनन्द होता है जिसका हाल उनको नही मालूम जिनकी इच्छाएँ पूर्ण हैं। मैं चाव से एक मल्हार गाने लगी। सावन विरह और शोक का

महीना है। गीत में एक वियोगी हृदय की कथा ऐसे दर्दभरे शब्दों मे बयान की गयी थी कि बरबस आँखो से आँसू टपकने लगे। इतने मे बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आयी। सईद का नौकर पिछले दरवाज़े से दाखिल हुआ। उसके पीछे वही हसीना और सईद दोनो चले आ रहे थे। हसीना ने मेरे पास आकर कहा —आज यहाँ नाच-रग की महफ़िल सजेगी और शराब के दौर चलेंगे।

मैंने घृणा से कहा —मुबारक हो।

हसीना —बारहमासे और मल्हार की तानें उडेंगी, साज़िन्दे आ रहे हैं।

मै —शौक से।

हसीना —तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जायगा।

सईद ने मुझसे कहा —ज़ुबैदा, तुम अपने कमरे में चली जाओ, यह इस वक़्त आपे मे नहीं है।

हसीना ने फिर मेरी तरफ लाल-लाल आँखे निकालकर कहा —मैं तुम्हें अपने पैरों की धूल के बराबर भी नही समझती।

मुझे फिर जब्त न रहा, अकडकर बोली —और मै तुझे क्या समझती हूँ, एक कुतिया, दूसरों की उगली हुई हड्डियां चिचोडती फिरती है!

अब सईद के भी तेवर बदले, मेरी तरफ भयानक आँखों से देखकर बोले —ज़ुबैदा, तुम्हारे सर पर शैतान तो नहीं सवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तड़प उठी, जिन होंठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार की बातें सुनी हों उन्ही से यह जहर निकले, और बिलकुल बकसूर! क्या मै ऐसी नाचीज और हक़ीर हो गयी हूँ कि एक बाज़ारू औरत भी मुझे छेड़कर गालियाँ दे सकती है और मेरा ज़बान खोलना मना! मेरे दिल में साल भर से जो बुखार जमा हो रहा था, वह उबल पड़ा। मैं झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायतभरी निगाहो से देखकर बोली —शैतान मेरे सर पर सवार है या तुम्हारे सर पर, इसका फैसला तुम खुद कर सकते हो। सईद, मै तुमको अब तक शरीफ़ और ग़ैरतवाला समझती थी, तुमने मेरे साथ बेवफाई की, इसका मलाल मुझे ज़रूर था, मगर मैंने सपने में भी यह न सोचा था कि तुम ग़ैरत से इतने खाली हो कि एक हया-फरोश औरत के पीछे मुझे इस तरह ज़लील करोगे। इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा।

हसीना ने तेज़ होकर कहा —तू मुझे हया-फ़रोश कहती है?

मैं —बेशक कहती हूँ।

सईद — और मै बेगैरत हूँ ?

मै — बेशक ! बेगैरत ही नही, शोबदेबाज, मक्कार, पापी, सब कुछ। यह अल्फाज बहुत घिनावने है लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफ़ी नही।

मैं यह बाते कह ही रही थी कि यकायक सईद के लम्बे-तगडे, हट्टे-कट्टे नौकर ने मेरी दोनों बाँहें पकड ली और पलक मारते भर मे हसीना ने झूले की रस्सियाँ उतारकर मुझे बरामदे के एक लोहे के खम्भे से बाँध दिया।

इस वक़्त मेरे दिल मे क्या ख़याल आ रहे थे, यह याद नही पर मेरी आँखो के सामने अँधेरा छा गया था, ऐसा मालूम होता था कि यह तीनों इन्सान नही, यमदूत है। गुस्से की जगह दिल में एक डर समा गया था। इस वक्त अगर कोई गैबी ताकत मेरे बन्धनों को काट देती, मेरे हाथो में आबदार ख़जर दे देती तो भी मै जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर आँसू बहाने के सिवा और कुछ न कर सकती। मुझे ख़याल आता था कि शायद खुदा की तरफ से मुझ पर यह क़हर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रही है। मै अपनी पिछली जिन्दगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन-सी गलती हुई है जिसकी यह सज़ा है। मुझे इसी हालत में छोडकर तीनो सूरतें कमरे मे चली गयी। मैंने समझा मेरी सजा खत्म हुई। लेकिन क्या यह सब मुझे यो ही बँधा रक्खेगे ? लौडियाँ मुझे इस हालत मे देख लें तो क्या कहें ? नही, अब मै इस घर में रहने के काबिल ही नही। मै सोच रही थी कि रस्सियाँ क्योंकर खोलूँ मगर अफसोस, मुझे न मालूम था कि अभी तक मेरी जो गति हुई है, वह आनेवाली बेरहमियों का सिर्फ़ बयाना है। मैं अब तक न जानती थी कि यह छोटा आदमी कितना बेरहम, कितना कातिल है। मैं अपने दिल से बहस कर रही थी कि अपनी इस ज़िल्लत का इलज़ाम मुझ पर कहाँ तक है। अगर मै हसीना की उन दिल जलानेवाली बातों का जवाब न देती तो क्या यह नौबत न आती ? आती और जरूर आती। वह काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली थी। इसीलिए उसने ऐसे दिल दुखानेवाले लहजे में बात ही शुरू की थी कि मैं गुस्से मे आकर उसको लान-तान करूँ और उसे मुझे ज़लील करने का बहाना मिल जाय।

पानी ज़ोर से बरसने लगा था, बौछारों से मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अँधेरा था। मैं कान लगाये सुन रही थी कि अन्दर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजे साफ़ न सुनायी देती थी। इतने मे लालटेन फिर कमरे से बरामदे मे आयी और तीनों डरावनी सूरतें फिर सामने

आकर खड़ी हो गयी। अब की उस खूनी परी के हाथों में एक पतली-सी कमची थी। उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया। उसकी आँखो मे एक खून पीनेवाली वहशत, एक कातिल पागलपन दिखायी दे रहा था। मेरी तरफ शरारत-भरी नजरों से देखकर बोली — बेगम साहबा, मै तुम्हारी बदजबानियो का ऐसा सबक़ देना चाहती हूँ जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे। और मेरे गुरू ने बतलाया है कि कमची से ज्यादा देर तक ठहरनेवाला और कोई सबक़ नही होता।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मै तिलमिला गयी, मालूम हुआ कि किसी ने पीठ पर आग की चिनगारी रख दी। मुझसे जब्त न हो सका। माँ-बाप ने कभी फूल की छडी से भी न मारा था। जोर से चीखे मार-मारकर रोने लगी। स्वाभिमान, लज्जा, सब लुप्त हो गयी। कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और सब भावनाएँ ग़ायब हो गयी। उन हिन्दू देवियों के दिल शायद लोहे के होते होगे जो अपनी आन पर आग मे कूद पड़ती थी। मेरे दिल पर तो इस वक़्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। सईद तस्वीर की तरह खामोश खड़ा था। मै उसकी तरफ फ़रियाद की आँखों से देखकर बड़े विनती के स्वर में बोली — सईद, खुदा के लिए मुझे इस जालिम से बचाओ, मै तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम मुझे ज़हर दे दो, खजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नही। उन दिलजोइयों को याद करो, मेरी मुहब्बत को याद करो, उसी के सदक़े इस वक़्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हे इसका इनाम देगा।

सईद इन बातो से कुछ पिघला। हसीना की तरफ डरी हुई आँखो से देखकर बोला — ज़रीना, मेरे कहने से अब जाने दो। मेरी ख़ातिर से इन पर रहम करो।

जरीना तेवर बदलकर बोली — तुम्हारी ख़ातिर से सब कुछ कर सकती हूँ, गालियाँ नही बर्दाश्त कर सकती।

सईद — क्या अभी तुम्हारे ख़याल में गालियों की काफ़ी सजा नही हुई?

ज़रीना — तब तो आपने मेरी इज्ज़त की खूब कद्र की! मैंने रानियो से चिलमचियाँ उठवायी है, यह बेगम साहबा है किस ख़याल में? मै इसे अगर कुन्द छुरी से काटूँ तब भी इसकी बदजबानियों की काफी सज़ा न होगी।

सईद — मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

जरीना — आखें बन्द कर लो।

सईद — जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ, अब इन्हें माफ़ करो।

ज़रीना ने सईद को ऐसी हिकारतभरी आँखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमे खानदानी गैरत और बड़ाई और इन्सानियत का जरा भी एहसास बाक़ी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दाना जज्बे के काबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचाननेवाले कितनी गलती करते है क्योकि दिखायी कुछ पड़ता है, अन्दर कुछ और होता है! बाहर के ऐसे सुन्दर रूप के परदे मे इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता! कोई शक नहीं, रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है। बोली — अच्छा तो अब आपको मुझ पर गुस्सा आने लगा। क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मै तो हया-फरोश कुतिया ही ठहरी!

सईद — तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नही देखा जाता।

जरीना — तो यह कमची हाथ में लो, और इसे गिनकर सौ लगाओ। गुस्सा उतर जायगा, इसका यही इलाज है।

सईद — फिर वही मज़ाक़।

ज़रीना — नहीं, मैं मज़ाक़ नही करती।

सईद ने कमची लेने को हाथ बढाया मगर मालूम नही जरीना को क्या शुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद यह कमची को तोड़कर फेंक देंगे। कमची हटा ली और बोली — अच्छा मुझसे यह दगा! तो लो अब मैं ही हाथो की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उस बेदर्द ने मुझे बेतहाशा क़मचियां मारना शुरू कीं। मै दर्द से ऐंठ-ऐंठकर चीख़ रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नते करती थी, अपने किये पर शर्मिन्दा थी, दुआएँ देती थी, पीर और पैग़म्बर का वास्ता देती थी, पर उस क़ातिल को जरा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की तरह दर्दोसितम का यह नज्ज़ारा आँखों से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े से बड़ा दुश्मन भी मेरे रोने-धोने पर तरस खाता। मेरी पीठ छिलकर लहू-लुहान हो गयी, ज़खम पड़ते थे, हरेक चोट आग के शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नही उसने मुझे कितने दुर्रे लगाये यहाँ तक कि कमची को मुझ पर रहम आ गया, वह फटकर टूट गयी। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

४

मुझे इस तरह ज़लील और तबाह करके तीनों ख़बीस रूहें वहाँ से रुखसत हो

गयी। सईद के नौकर ने चलते वक़्त मेरी रस्सियाँ खोल दी। मै कहाँ जाती? उस घर मे क्योंकर कदम रखती?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल के फफोले उससे कहीं ज्यादा जानलेवा थे। सारा दिल फफोलो से भर उठा था। अच्छी भावनाओ के लिए जगह भी बाक़ी न रही थी। उस वक़्त मै किसी अंधे को कुएँ मे गिरते देखती तो मुझे हँसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसको मुँह चिढाती। दिल की हालत में एक ज़बर्दस्त इन्कलाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, ग़म न था, मौत की आरज़ू न थी, यहाँ तक कि बदला लेने की भावना भी न थी। उस इन्तहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया था। हालाँकि मैं चाहती तो कानूनन् सईद को शिकजे मे ला सकती थी, उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज़्ज़ती, यह बेआबरूई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस सिर्फ़ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए जलील हो गयी। क्या यह दाग़ किसी तरह मिट सकता था? हरगिज नही। हाँ वह छिपाया जा सकता था और उसकी एक ही सूरत थी कि ज़िल्लत के काले गड्ढे मे गिर पड़ूँ ताकि सारे कपडो की सियाही इस सियाह दाग को छिपा दे। क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं, जिसकी दीवारे टूटकर ढेर हो गयी हो? इस किश्ती से क्या पानी की सतह अच्छी नही जिसके पेंदे मे एक बड़ा छेद हो गया हो? इस हालत मे यही दलील मुझ पर छा गयी। मैने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, अपने काले चेहरे को और भी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। मै अनजान में ही सईद से नैतिक रूप से बदला लेने पर आमादा हो गयी। रात भर मै वहीं पडी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्ही खयालात मे उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मज़बूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पौ फटते ही मैं बागीचे से बाहर निकल आयी, मालूम नही मेरी लाज-शर्म कहाँ ग़ायब हो गयी थी। जो शख्स समुन्दर मे ग़ोते खा चुका हो उसे ताल-तलैयो का क्या डर? मैं जो दरोदीवार से शर्माती थी, इस वक्त शहर की गलियों मे बेधड़क चली जा रही थी —और कहाँ? वही जहाँ ज़िल्लत की कद्र है, जहाँ किसी पर कोई हँसने वाला नहीं, जहाँ बदनामी का बाजार सजा हुआ है, जहाँ हया बिकती है और शर्म लुटती है!

इसके तीसरे दिन रूप की मण्डी के एक अच्छे हिस्से मे एक ऊँचे कोठे पर बैठी

हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी कि कंधे से कधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ-सुथरे कपडे पहने कतार की कतार दरिया की तरफ जा रहे थे। हमारे बाजार की बेशकीमत जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कही हसीनों के झूले थे, कही सावन के गीत, लेकिन मुझे इस बाजार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ मालूम होती थी। ऐसा मालूम होता था कि शहर की और सब सड़के बन्द हो गयी है, सिर्फ़ यही तग गली खुली हुई है और सब की निगाहें कोठों ही की तरफ लगी थी, गोया वह जमीन पर नही चल रहे है, हवा मे उड़ना चाहते है। हाँ, पढे-लिखे लोगो को मैने इतना बेधडक नहीं पाया। वह भी घूरते थे मगर कनखियो से। अधेड़ उम्र के लोग सबसे ज़्यादा बेधडक मालूम होते थे। शायद उनकी मशा जवानी के जोश को ज़ाहिर करना था। बाजार क्या था एक लम्बा-चौडा थियेटर था, लोग हँसी-दिल्लगी करते थे, लुत्फ उठाने के लिए नही, हसीनों को सुनाने के लिए। मुँह दूसरी तरफ था, निगाह किसी दूसरी तरफ। बस, भाँडों और नक़्क़ालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिटन नजर आयी। मैं उस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपडे पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बाँका जवान सारे शहर मे न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आँख एक बार मेरे कोठे की तरफ उठी और नीचे झुक गयी। उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी जैसे किसी जहरीले साँप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फिटन हवा हो गयी। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हकीक़त न थी। मैने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यह कटार कमचियो से कही ज़्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आँख मिला सके। नही, मैने उसे हरा दिया, उसे उम्र भर के लिए क़ैद मे डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना ग़ैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमण्ड था।

दूसरे दिन भोर मे खबर मिली कि किसी कातिल ने मिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसी बागीचे के गोल कमरे मे मिली। सीने मे गोली लग गयी थी। नौ बजे दूसरी ख़बर सुनायी दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक्त कत्ल कर डाला था। उसका सर तन से जुदा कर दिया गया था। बाद को जाँच-पडताल से मालूम हुआ कि यह दोनो वारदातें सईद के ही हाथों हुईं। उसने पहले जरीना को

उसके मकान पर कत्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने मे गोली मारी। इस मर्दाना गैरतमन्दी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल मे ताज़ा कर दी।

शाम के वक्त मैं अपने मकान पर पहुँच गयी। अभी मुझे यहाँ से गये हुए सिर्फ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षों के बाद आयी हूँ। दरोदीवार पर हसरत छायी हुई थी। मैंने घर में पाँव रक्खा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत आँखों के सामने आकर खड़ी हो गयी — वही मर्दाना हुस्न, वही बाँकपन, वही मनुहार की आँखे। बेअख्तियार मेरी आँखे भर आयीं और दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी। गम इसका न था कि सईद ने क्यो जान दे दी। नही, उसकी वह मुजरिमाना बेहिसी और रूप के पीछे भागना इन दोनो बातो को मै मरते दम तक माफ़ न करूँगी। ग़म यह था कि यह पागलपन उसके सर मे क्यों समाया? इस वक्त दिल की जो कैफ़ियत है उससे मै समझती हूँ कि कुछ दिनो मे सईद की बेवफाई और बेरहमी का घाव भर जायगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाय, मगर उसकी चन्दरोजा मुहब्बत का नक्श बाकी रहेगा और अब यही मेरी जिन्दगी का सहारा है।

— उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

# होली की छुट्टी

वर्नाक्युलर फ़ाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह मिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल मे आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खर्राटों से उन्हे पढ़ाया करते। जब लड़कों मे धौल-धप्पा शुरू हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नीद से चौक पड़ते और लड़कों को दो-चार तमाचे लगाकर फिर अपने सपनो के मजे लेने लगते। ग्यारह-बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहाँ तक कि लड़के नींद से बेक़रार होकर वही टाट पर सो जाते। अप्रैल में सालाना इम्तहान होनेवाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय-तोबा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासो में उन्हे न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियाँ बिलकुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आयी और निकल गयी, बसन्त आया और चला गया, शिवरात्रि आयी और गुजर गयी, और इतवारों का तो ज़िक्र ही क्या है। एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफर करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौक़ा न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पर जरूर घर जाऊँगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोने पड़ें। मैने एक हफ्ते पहले ही से हेडमास्टर साहब को अल्टीमेटम दे दिया कि २० मार्च को होली की छुट्टी शुरू होगी और बन्दा १९ की शाम को रुखसत हो जायगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लडके हो, तुम्हे क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किलो से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इम्तहान होनेवाला है, तीन-चार दिन स्कूल बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे? साल भर की सारी मेहनत पर पानी फिर जायगा कि नही? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इम्तहान के बाद जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मै एक दिन के लिए भी न रोकूँगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने-धमकाने और जवाब

तलब किये जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। १९ को ज्यों ही स्कूल बन्द हुआ, मैने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हे सलाम करने जाता तो वह एक न एक काम निकालकर मुझे रोक लेते — रजिस्टर मे फीस की मीजान लगाते जाओ, औसत हाज़िरी निकालते जाओ, लड़कों की कापियाँ जमा करके उन पर सशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफ़र है और मुझे ज़िन्दगी के सारे काम अभी खतम कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठायी, अपना हलका लिहाफ़ कधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी ५ बजकर ५ मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाज़िरी के वक़्त हमेशा आध घण्टा तेज और छुट्टी के वक़्त आधा घण्टा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बन्द हुआ था। मेरे खयाल मे स्टेशन पहुँचने के लिए काफी वक़्त था। फिर भी मुसाफ़िरों को गाड़ी की तरफ़ से आम तौर पर जो अन्देशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने पर भी और गाडी का वक़्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गडगड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज़ और दिल को परीशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कधे पर लिहाफ़, बार-बार हाथ बदलता और लपका चला जाता था। यहाँ तक कि स्टेशन कोई दो फ़र्लांग से नजर आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गयी, उम्र के तक़ाज़े से एक सौ कदम दौड़ा ज़रूर मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आयी, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गयी। स्कूल की घड़ी यक़ीनन आज और दिनो से भी ज़्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आयेगी, मेरे घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पहुँचेगी और वहाँ से मकान पर जाते-जाते एक बज जायगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमे हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूँ मगर जब्त किया और पैदल चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो है, अगर दो मिल फ़ी घटा भी चलूँ तो छः घण्टे मे घर पहुँच सकता हूँ। अभी पाँच बजे है, जरा क़दम बढ़ाता जाऊँ तो दस बजे यक़ीनन पहुँच जाऊँगा। अम्माँ और मुन्नू मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे, पहुँचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े मे गुड पक रहा होगा, वहाँ से गरम-गरम रस पीने को आ जायगा और

जब लोग सुनेंगे कि मैं इतनी दूर से पैदल चला आया हूँ तो उन्हे कितना अचरज होगा! मैने फ़ौरन गगा की तरफ पैर बढ़ाया। यह क़स्बा नदी के किनारे था और मेरे गाँव की सडक नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी सयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सडक सीधी चली जाती है, परीशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव उस पार पहुँच जायगी और बस फ़र्राटे भरता हुआ चल दूँगा। बारह मील कहने को तो होते है, है तो कुल छः कोस!

मगर घाट पर पहुँचा तो नाव मे आधे मुसाफ़िर भी न बैठे थे। मै कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिये लेकिन नाव है कि वही अचल ठहरी हुई है। मुसाफ़िरो की सख्या काफ़ी नही है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते जाते है और बैठते जाते है और मैं हूँ कि अन्दर ही अन्दर भुना जाता हूँ। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाये हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरू हुआ और देखते-देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिज पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुएँ पर लटक रहा है। हवा मे कुछ खुनकी भी आ गयी और भूख भी मालूम होने लगी। मैने आज घर जाने की ख़ुशी और हडबड़ी मे रोटियाँ न पकायी थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुँच जाऊँगा, लाओ एक पैसे के चने लेकर खा लूँ। उन दोनों ने इतनी देर तक तो साथ दिया, अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहाँ गुम हो गये। मगर क्या ग़म है, रास्ते मे क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयाँ लेकर खा लूँगा।

जब नाव उस किनारे पहुँची तो सूरज की सिर्फ आखिरी साँस बाक़ी थी, हालाँकि नदी का पाट बिलकुल पेंदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठायी और तेजी से चला। दोनों तरफ़ चने के खेत थे जिनके ऊदे फूलों पर ओस का हलका-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड लिये और टूँगता हुआ भागा।

## २

सामने बारह मील की मजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गयी है, मुझे पहली बार अपनी ग़लती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा कि क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ ही सकते है। बारह को मन मे १७६० से गुणा किया, बीस हजार गज ही तो होते हैं। बारह मील के मुक़ाबिले मे बीस हज़ार गज़ कुछ हलके और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जायगा

तब तो एक तरह से अपने गाँव ही में हूँगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बँध गयी। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे। और भी इत्मीनान हुआ।

अँधेरा हो गया है। मै लपका जा रहा हूँ। सडक के किनारे दूर से एक झोंपड़ी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। जरूर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड और चने तो मिल ही जायँगे। कदम और तेज़ करता हूँ। झोपडी आती है। उसके सामने एक क्षण के लिए खडा हो जाता हूँ। चार-पॉच आदमी उकडूँ बैठे हुए है, बीच मे एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हड। दीवार से मिली हुई ऊँचो गद्दी है, उस पर साहजी बैठे हुए है, उनके सामने कई बोतले रखी हुई है। ज़रा और पीछे हटकर एक आदमी कडाही मे सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोंधी खुशबू मेरे शरीर मे बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूँ और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूँ लेकिन पॉव आप ही आप रुक जाते है—यह कलवरिया है।

खोंचेवाला पूछता है—क्या लोगे?

मै कहता हूँ—कुछ नही।

और आगे बढ़ जाता हूँ। दुकान भी मिली तो शराब की, गोया दुनिया में इन्सान के लिए शराब ही सबसे ज़रूरी चीज़ है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोंधापन मेरा पीछा कर रहा है और मै भागा जा रहा हूँ।

किताबो की पोटली जी का जजाल हो गयी है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यही सडक पर पटक दूँ। उसका वजन मुश्किल से पॉच सेर होगा, मगर इस वक़्त वह मुझे मन भर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर मे कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चॉद पेड़ो के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झॉक रहा है। मै बिलकुल अकेला चला जा रहा हूँ मगर दर्द बिलकुल नही है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उन पर हावी हो गयी है।

आहा हा, यह गुड की खुशबू कहाँ से आयी! कही ताज़ा गुड पक रहा है। कोई गॉव क़रीब ही होगा। हाँ, वह आमो के झुरमुट मे रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहाँ पैसे-दो पैसे का गुड़ कौन बेचेगा और यो मुझसे माँगा न जायगा, मालूम नही लोग क्या समझे। आगे बढ़ता हूँ, मगर जबान से राल टपक रही है। गुड़ से मुझे बडा प्रेम है। जब कभी किसी चीज़ की दुकान खोलने की

सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयाँ तो खाने को मिलेगी। हलवाइयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नही सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते है, आरामतलबी के मारे तोद निकाल लेते है, मै कसरत करता रहूँगा। मगर गुड की वह धीरज की परीक्षा लेनेवाली, भूख को तेज़ करनेवाली ख़ुशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्माँ तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गयी थी और मैने तीन महीने में एक मन गुड का सफ़ाया कर दिया था। यही गुड के दिन थे। नाना बीमार थे, अम्माँ को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मै उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गयी। जाते वक़्त उन्होने एक मन गुड़ लेकर एक मटके मे रखा और उसके मुँह पर एक सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। मुझे सख़्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड एक हाँडी मे रख दिया था। वह हाँडी मैने एक हफ्ते मे सफाचट कर दी। सुबह को दूध के साथ गुड, दोपहर को रोटियो के साथ गुड, तीसरे पहर दानो के साथ गुड, रात को फिर दूध के साथ गुड। यहाँ तक जायज खर्च था जिस पर अम्माँ को भी कोई एतराज़ न हो सकता। मगर स्कूल से बार-बार पानी पीने के बहाने घर मे आता और दो-एक पिण्डियाँ निकालकर खा लेता। उसकी बजट में कहाँ गुंजाइश थी। और मुझे गुड का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक़्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर मे आना गुड के सिर शामत आना था। एक हफ़्ते में हाँडी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख़्त मनाही थी और अम्माँ के घर आने में अभी पौने तीन महीने बाकी थे। एक दिन तो मैने बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन एक आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके की एक मीठी चितवन के साथ होश रुख़सत हो गया। मैने महापाप की भावना के साथ मटके को खोला और हाँडी भर गुड निकालकर उसी तरह मटके को बन्द कर दिया और सकल्प कर लिया कि इस हाँडी को तीन महीने चलाऊँगा। चले या न चले, मैं चलाये जाऊँगा। मटके को वह सात मजिल समझूँगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैने मटके की पिंडियों को कुछ इस तरह क़ैंची लगाकर रखा कि जैसे बाज़ दुकानदार दियासलाई की डिबियाँ भर देते है। एक हाँडी गुड़ ख़ाली हो जाने पर भी मटका मुँहोमुँह भरा था। अम्माँ को पता ही न चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आयेगी। मगर दिल और ज़बान में वह खीच-तान शुरू हुई कि क्या कहूँ, और हर बार जीत ज़बान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की

जीभ दिल जैसे शहजोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाये — उसको, जो आकाश मे उडता है और सातवे आसमान के मसूबे बाँधता है और अपने जोम में फरऊन को भी कुछ नही समझता। बार-बार इरादा करता, दिन भर मे पाँच पिंडियों से ज्यादा न खाऊँ, लेकिन यह इरादा शराबियो की तोबा की तरह घटे-दो-घटे से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता — गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जायगा, गधक का मलहम लगाये घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसन्द करेगा! कसमें खाता, विद्या की, माँ की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की — मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हाँडी भी खत्म हो गयी। उस दिन मैंने बडे भक्ति-भाव से ईश्वर से प्रार्थना की — भगवान, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश मे रख सकूँ। मुझे अष्टधात की लगाम दो जो उसके मुँह मे डाल दूँ! यह अभागा मुझे अम्माँ से पिटवाने और घुड़कियाँ खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्ही मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। भक्ति की विह्वलता के मारे मेरी आँखों से दो-चार बूँदे आँसुओ की भी गिरी लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवायी न की और गुड की बुभुक्षा मुझ पर छायी रही, यहाँ तक कि दूसरी हाँडी का मर्सिया पढने की नौबत आ पहुँची।

सयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्माँ से मिलने ननिहाल गया। अम्माँ ने पूछा — गुड का मटका देखा है? चीटे तो नही लगे? सीलन तो नही पहुँची? मैने मटके को देखने की भी कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्माँ ने मुझे गर्व के नेत्रो से देखा और मेरे आज्ञा-पालन के पुरस्कार-स्वरूप मुझे एक हाँडी निकाल लेने की इजाज़त दे दी, हाँ, ताकीद भी कर दी कि मटके का मुँह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहाँ मुझे एक-एक दिन एक-एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हाँडी भर गुड निकालना था। एकबारगी पाँच पिंडियाँ उड़ा गया। फिर वही गुड़बाजी शुरू हुई। अब क्या गम है, अम्माँ की इजाजत मिल गयी थी। सैयाँ भये कोतवाल, और आठ दिन मे हाँडी गायब! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाज़े पर ताला डाल दिया और उसकी कुजी दीवार की एक मोटी सधि में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो। इस सधि में से कुजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाय और यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में

ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा और इन तीन दिनो मे भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड, की कोठरी की तरफ़ से बार-बार गुज़रता और अधीर नेत्रो से देखता और हाथ मलकर रह जाता। कई बार ताले को खटखटाया, खींचा, झटके दिये, मगर ज़ालिम जरा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस सधि की जाँच-पड़ताल की, उसमें झाँककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाजा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न मिली। तबीयत खोयी हुई-सी रहती, न खाने-पीने मे कुछ मज़ा था, न खेलने-कूदने मे। वासना बार-बार युक्तियों के ज़ोर से दिल को क़ायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मर्ज की दवा है! मै उसे फेक तो देता नही, खाता ही तो हूँ, क्या आज खाया और क्या एक महीने बाद खाया, इसमें क्या फर्क है! अम्माँ ने मनाही की है बेशक, लेकिन उन्हे मुझे एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहे खेलने मत जाओ या पेड़ पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या चिड़ियों के लिए कम्पा मत लगाओ, तितलियाँ मत पकड़ो, तो क्या मैं माने लेता हूँ? आखिर मेरे भी कुछ अधिकार है या नही! तो फिर इस एक मामले में क्यों अम्माँ की मनाही पर अपनी इच्छाओं का बलिदान कर दूँ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरू किया। सधि थी ही, खोदने में ज्यादा देर न लगी, आध घण्टे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज भर लम्बा और तीन इच मोटा चप्पड टूटकर नीचे गिर पड़ा और सधि की तह मे वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो! मैंने झटपट उसे निकाला और फ़ौरन दरवाज़ा खोला, मटके से गुड निकालकर हाँडी में भरा और दरवाजा बन्द कर दिया। मटके मे इस लूट-पाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गयी थी। हज़ार तरकीबे आज़माने पर भी उसका गढा न भरा। मगर अबकी बार मैंने इस चटोरेपन का अम्माँ की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुजी को कुएँ में डाल दिया। किस्सा लम्बा है, मैने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे उसे फोडा और उसके टुकड़े रात को कुएँ में फेके और अम्माँ आयीं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयान करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूँ, अधूरी रह जायगी।

चुनांचे इस वक़्त गुड की उस मीठी प्यारी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया मगर मैं सब्र करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुज़रती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहाँ तक कि पाँव काँपने लगे। कच्ची सडक पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गयी थी। जब कभी लीक में पाँव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े मे गिर पड़ा हूँ। बार-बार जी मे आता, यहीं सडक के किनारे लेट जाऊँ। किताबों की छोटी सी पोटली मन भर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबे लेकर क्यों चला। दूसरी ज़बान का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था मगर छुट्टियों मे एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आयगी, खामखाह् यह बोझा उठाये चला आता हूँ। ऐसा जी झुँझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूँ। आखिर टाँगों ने चलने से इनकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और सम्हलकर उठा तो पाँव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठाना दूभर था, मगर यहाँ क्या खाऊँ। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नज़र आया; अब मै अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पाँच ईख तोड लूँ और मज़े से रस चूसता हुआ चलूँ। रास्ता भी कट जायगा और पेट में कुछ पड़ भी जायगा। मगर मेड़ पर पॉव रखा ही था कि कॉटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेड़ पर कॉट बिखेर दिये थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब काँटों में फँसा हुआ, पीछे हटा तो काँटों की झाडी साथ-साथ चली, कपड़े छुड़ाने लगा तो हाथ में कॉटे चुभने लगे। ज़ोर से खीचा तो धोती फट गयी। भूख तो ग़ायब हो गयी, फ़िक्र हुई कि इस नयी मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। काँटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूँ तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक़्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया। कोई रेगिस्तानों की ख़ाक छाननेवाला आशिक़ भी इस तरह् काँटों में न फँसा होगा ! बड़ी मुश्किल से आध घण्टे में गला छूटा, मगर धोती और कुर्ते के माथे गयी, हाथ और पॉव छलनी हो गये वह घाते में। अब एक क़दम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई आदमी न आदमजाद, किससे पूछूँ। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बडा गाँव नजर आया। बड़ी खुशी हुई। कोई न कोई दुकान मिल ही जायगी। कुछ खा लूँगा और किसी के सायबान में पड रहूँगा, सुबह देखी जायगी।

मगर देहातों मे लोग सरे-शाम सोने के आदी होते है। एक आदमी कुएँ पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर

दिया — अब यहाँ कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते है। हलवाई की दुकान एक भी नहीं। कोई शहर थोडे ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे!

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा — कही सोने को जगह मिल जायगी?

उसने पूछा — कौन हो तुम? तुम्हारी जान-पहचान का यहाँ कोई है?

'जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यो पूछता?'

'तो भाई, अनजान आदमी को यहाँ नही ठहरने देंगे। इसी तरह कल एक मुसाफ़िर आकर ठहरा था, रात को एक घर मे सेंध पड गयी, सुबह को मुसाफिर का पता न था।'

'तो क्या तुम समझते हो, मै चोर हूँ।'

'किसी के माथे पर तो लिखा नही होता, अन्दर का हाल कौन जाने!'

'नही ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मै जानता यह इतना मनहूस गाँव है तो इधर आता ही क्यो?'

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सडक पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ ख़बर नहीं किस रास्ते से गाँव मे आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुँचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुज़रेगी, फिर इसका क्या गम कि कहाँ जा रहा हूँ। मालूम नही कितनी देर तक मेरे दिमाग़ की यह हालत रही। अचानक एक खेत में आग जलती हुई दिखायी पडी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहाँ कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाय। कदम तेज किये और करीब पहुँचा कि यकायक एक बडा-सा कुत्ता भूँकता हुआ मेरी तरफ़ दौडा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मै काँप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ़ लपक-लपककर भूँकने लगा। मेरे हाथों में किताबो की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकडी थी न पत्थर, कैसे भगाऊँ, कही बदमाश मेरी टाँग पकड़ ले तो क्या करूँ! अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही धत्-धत् करता था उतना ही वह गरजता था। मै ख़ामोश खड़ा हो गया और पोटली ज़मीन पर रखकर पाँव से जूते निकाल लिये, अपनी हिफ़ा-जत के लिए कोई हथियार तो हाथ मे हो! उसकी तरफ गौर से देख रहा था कि ख़तरनाक हद तक मेरे क़रीब आये तो उसके सिर पर इतने ज़ोर से नालदार जूता मार दूँ कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नियत ताड़ ली और इस तरह

मेरी तरफ झपटा कि मैं काँप गया और जूते हाथ से छूटकर जमीन पर गिर पडे। और उसी वक़्त मैने डरी हुई आवाज मे पुकारा — अरे खेत मे कोई है, देखो यह कुत्ता मुझे काट रहा है! ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है!

जवाब मिला, कौन है?

'मै हूँ राहगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।'

'नही, काटेगा नही, डरो मत। कहाँ जाना है?'

'महमूदनगर।'

'महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आये, आगे तो नदी है।'

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआँसा होकर बोला — महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है?

'यही कोई तीन मील।'

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ मे लालटेन लिये हुए आकर मेरे सामने खडा हो गया। सर पर हैट था, एक मोटा फौजी ओवरकोट पहने हुए, नीचे निकर, पॉव मे फुलबूट, बड़ा लबा-तडगा, बडी बड़ी मूँछे, गोरा रग, साकार पुरुष-सौन्दर्य। बोला — तुम तो कोई स्कूल के लड़के मालूम होते हो।

'लडका तो नही हूँ, लडकों का मुदर्रिस हूँ, घर जा रहा हूँ। आज से तीन दिन छुट्टी है।'

'तो रेल से क्यो नही गये?'

'रेल छूट गयी और दूसरी एक बजे छूटती है।'

'वह अभी तुम्हे मिल जायगी। बारह का अमल है। चलो मै स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ।'

'कौन-से स्टेशन का?'

'भगवन्तपुर का।'

'भगवन्तपुर ही से तो मै चला हूँ। वह बहुत पीछे छूट गया होगा।'

'बिलकुल नही, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अन्दर खडे हो। चलो मै तुम्हे स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ। अभी गाडी मिल जायगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे झोपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।'

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सर पीट लूँ। पाँच बजे से तेली के बैल की तरह घूम रहा हूँ और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूँ। रास्ता भूल गया।

यह घटना भी याद रहेगी कि चला छः घण्टे और तय किया एक मील। घर पहुँचने की धुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला — नही, कल तो होली है। मुझे रात को पहुँच जाना चाहिए।

'मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाय। अच्छा चलो, मैं तुम्हे पहुँचाये देता हूँ, मगर तुमने बड़ी ग़लती की, अनजान रास्ते में रात को पैदल चलना कितना ख़तरनाक है। अच्छा चलो मैं पहुँचाये देता हूँ। ख़ैर यहीं खड़े रहो, मै अभी आता हूँ।'

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पडा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाये क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण भर मे वह आदमी बन्दूक कधे पर रखे आ गया और बोला— चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, ख़ैरियत हुई कि मै तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुँच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड हो जाती।

मैंने पूछा — आप तो कोई अग्रेज मालूम होते है, मगर आपकी बोली बिलकुल हमारे जैसी है ?

उसने हँसकर कहा — हाँ, मेरा बाप अंग्रेज था, फ़ौजी अफ़सर। मेरी उम्र यहीं गुजरी है। मेरी माँ उसका खाना पकाती थी। मैं भी फ़ौज में रह चुका हूँ। योरोप की लडाई मे गया था, अब पेशन पाता हूँ। लड़ाई मे मैने जो दृश्य अपने आँखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिन्दगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इन्सानियत का जितना ख़ून करना पड़ा उनसे इस पेशे से मुझे नफ़रत हो गयी और मैं पेंशन लेकर यहाँ चला आया। मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यही रहता हूँ और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूँ। यह गंगा की घाटी है। चारों तरफ पहाड़ियाँ हैं। जगली जानवर बहुत लगते हैं। सुअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफ़ाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुज़र-बसर के लिए काफ़ी होता है। मेरी बुढ़िया माँ अभी ज़िन्दा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी, उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हे कसरत करना सिखा दूँगा, साल भर में पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा — आप अभी तक कसरत करते हैं ?

वह बोला — 'हाँ, दो घण्टे रोज़ाना कसरत करता हूँ। मुगदर और लेज़िम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवाँ साल है, मगर एक साँस में पाँच मील दौड़ सकता हूँ। कसरत न करूँ तो इस जगल में रहूँ कैसे। मैंने ख़ूब कुश्तियाँ लड़ी है। अपनी रेजीमेण्ट में खूब मजबूत आदमी था। मगर अब इस फौजी जिन्दगी की हालतों पर गौर करता हूँ तो शर्म और अफसोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी राइफ़ल के शिकार हुए। मेरा उन्होंने क्या नुक़सान किया था? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी? मुझे तो जर्मन और आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशमिज़ाज, वैसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ्रांस या इंगलैण्ड के। हमारी उनसे खूब दोस्ती हो गयी थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह ख़याल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नहीं है। मगर फिर भी हम एक दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए? इसीलिए कि बडे-बड़े अग्रेज सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोजगार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फ़ौजें उन्हीं के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतलियाँ है। जान हम गरीबों की गयी, जेबें गर्म हुई मोटे-मोटे सौदागरों की। उस वक़्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद है। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गार्डन पार्टियाँ दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियाँ रोज़ाना अखबारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजुकबदन लेडियाँ और शहज़ादियाँ हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बनाकर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गयी तो उन्हीं जाँबाजियों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग-भंग हो गये थे, कोई लूला हो गया था, कोई लँगड़ा, कोई अधा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देनेवाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख माँगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफरत हो गयी। मैंने यहाँ आकर यह काम अपने ज़िम्मे ले लिया और खुश हूँ। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जान-माल की हिफाज़त हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहाँ मेरी जान हमेशा खतरे मे रहती है। कई बार मरते-मरते बचा हूँ लेकिन इस काम में मर भी जाऊँ तो मुझे अफ़सोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगा कि मेरी ज़िन्दगी ग़रीबों के काम आयी। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूँ। अगर मैं बीमार पड़ जाऊँ और उन्हें मालूम हो जाय कि मैं उनके शरीर के ताज़े खून से अच्छा हो जाऊँगा तो बिना

झिझके अपना खून दे देंगे। पहले मै बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम जानते होगे। हममे बहुत ज्यादा लोग ऐसे है, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब ज़रूर चाहिए। मै भी एक बोतल शराब रोज पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किफ़ायत से रहना जानता तो जिन्दगी भर आराम से पडा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनो मै बडे ठाठ से रहता था। कालर-टाई लगाये, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरियो से आँखे लड़ाया करता था। घुडदौड मे जुआ खेलना, शराब पीना, क्लब मे ताश खेलना और औरतो से दिल बहलाना, यही मेरी जिन्दगी थी। तीन-चार साल में मैने पच्चीस-तीस हजार रुपये उडा दिये। कौडी कफन को न रखी। जब पैसे खतम हो गये तो रोजी की फिक्र हुई। फौज मे भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक्र है कि वहाँ से कुछ सीखकर लौटा। यह सच्चाई मुझ पर खुल गयी कि बहादुर का काम जान लेना नही, बल्कि जान की हिफाजत करना है।

'योरोप से आकर एक दिन मै शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खडे है। मैंने पूछा क्या बात है? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खडे हो? एक आदमी ने कहा — क्या करे साहब, जिन्दगी से तग है। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते है। किसके घर से लगान चुकाये, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दे और क्या खुद खायँ? कल इन्ही खेतों को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हे देखकर आँखों में आँसू आ जाते है। जानवरो ने सफाया कर दिया।

'मालूम नही उस वक़्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगम्बर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैंने कहा — आज से मै तुम्हारे खेतो की रखवाली करूँगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके। एक दाना जो जाय तो जुर्माना दूँ। बस उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस साल हो गये, मैने कभी नाग़ा नही किया। अपना गुज़र भी होता है और एहसान मुफ़्त मिलता है और सबसे बडी बात यह है कि इस काम से दिल को खुशी होती है।'

नदी आ गयी। मैंने देखा वही घाट है जहाँ शाम को किश्ती पर बैठा था। उस चाँदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा — आपका नाम क्या है? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूँगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला — मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। ज़रूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ मुडा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला — मगर तुम्हे यहाँ सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्माँ घबरा रही होंगी। तुम मेरे कधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हे उस पार पहुँचा दूँ। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूँ।

मैने एहसान से दबकर कहा — आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहाँ तक पहुँचा दिया, वर्ना शायद घर पहुँचना नसीब न होता। मैं यहाँ बैठा रहूँगा और सुबह को किश्ती से पार उतर जाऊँगा।

'वाह, और तुम्हारी अम्माँ रोती होगी कि मेरे लाड़ले पर जाने क्या गुजरी?'

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कधे पर बिठा लिया और इस तरह बेधड़क पानी में घुसे कि जैसे सूखी जमीन है। मैं दोनों हाथो से उनकी गर्दन पकडे हूँ और कुछ हँस भी रहा हूँ; फिर भी सीना धडक रहा है और रगों मे सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इत्मीनान से चले जा रहे है। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुँचा, ओफ्फोह सीने तक पहुँच गया। अब साहब को एक-एक कदम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरे उनके गले लिपट रही है। मेरे पाँव भी चूमने लगी। मेरा जी चाहता है उनसे कहूँ भगवान के लिए वापस चलिए, मगर ज़बान नही खुलती। चेतना ने जैसे इस सकट का सामना करने के लिए सब दरवाज़े बन्द कर लिये। डरता हूँ कही जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक है, निकल जायँगे, मैं लहरों की खूराक बन जाऊँगा। अफ़सोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यो न सीख लिया? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कधे के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार मे पहुँच गये थे। बहाव मे इतनी तेज़ी थी कि एक-एक कदम आगे रखने मे एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी मे कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार मे वह बहती हुई मौत मालूम होती थी। दस-बारह कदम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टँगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मै देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होने मुझे हाथो पर बिठा लिया था।

जब उनकी गर्दन बाहर निकल आयी तो जोर से हँसकर बोले — लो अब पहुँच गये।

मैंने कहा — आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कधे पर बिठाते हुए कहा — और मुझे आज जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को क़त्ल करके भी। अपनी माँ से कहना मुझे दुआ दें।

घाट पर पहुँचकर मैं साहब से रुखसत हुआ, उसकी सज्जनता, नि स्वार्थ सेवा, और अदम्य साहस का न मिटनेवाला असर दिल पर लिये हुए। मेरे जी में आया, काश मैं भी इसी तरह लोगों के काम आ सकता।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुँचा तो होली मे आग लग रही थी। मै स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया। मालूम नही भूखे शरीर में इतनी ताकत कहाँ से आ गयी थी।

अम्माँ मेरी आवाज सुनते ही आँगन में निकल आयीं और मुझे छाती से लगा लिया और बोली — इतनी रात कहाँ कर दी, मैं तो साँझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नही ?

वह अब स्वर्ग में है। लेकिन उनका वह मुहब्बत-भरा चेहरा मेरी आँखों के सामने है और वह प्यारभरी आवाज़ कानों में गूँज रही है।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूँ। उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया है। मै उसे इन्सान नही फ़रिश्ता समझता हूँ।

—'ज़ादे राह' से

# नादान दोस्त

केशव के घर में कार्निस के ऊपर एक चिडिया ने अण्डे दिये थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिडिया को वहाँ आते-जाते देखा करते। सबेरे दोनों आँखें मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और चिडा या चिड़िया दोनों को वहाँ बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बच्चो को न मालूम क्या मज़ा मिलता, दूध और जलेबी की सुध भी न रहती थी। दोनों के दिल मे तरह-तरह के सवाल उठते। अण्डे कितने बड़े होंगे? किस रंग के होंगे? कितने होगे? क्या खाते होंगे? उनमें बच्चे किस तरह निकल आयेंगे? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे? घोंसला कैसा है? लेकिन इन बातों का जवाब देनेवाला कोई नहीं। न अम्माँ को घर के काम-धंधों से फ़ुर्सत थी न बाबू जी को पढ़ने-लिखने से। दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती—क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर से उड़ जायेंगे?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता—नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेंगे?

श्यामा—बच्चों को क्या खिलायेगी बेचारी?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चार दिन गुजर गये। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थी। अण्डों को देखने के लिए वे अधीर हो उठते थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि अब ज़रूर बच्चे निकल आये होंगे। बच्चो के चारे का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़िया बेचारी इतना दाना कहाँ पायेगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। ग़रीब बच्चे भूख के मारे चूँ-चूँ करके मर जायेंगे।

इस मुसीबत का अन्दाज़ा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फ़ैसला किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाय। श्यामा खुश होकर बोली—तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न?

केशव—नही, तब क्यों जायँगी?

श्यामा—क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला — जरूर तकलीफ़ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे तडपते होगे। ऊपर छाया भी तो कोई नही।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोसले के ऊपर कपडे की छत बना देनी चाहिए। पानी की प्याली और थोडे से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगे। श्यामा माँ की आँख बचाकर मटके से चावल निकाल लायी। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और उसे खूब साफ करके उसमे पानी भरा।

अब चाँदनी के लिए कपडा कहाँ से आये? फिर ऊपर बगैर छड़ियो के कपडा ठहरेगा कैसे और छडियाँ खडी होंगी कैसे?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड-बुन मे रहा। आख़िरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला — जाकर कूडा फेकनेवाली टोकरी उठा लाओ। अम्माँ जी को मत दिखाना।

श्यामा — वह तो बीच से फटी हुई है। उसमे से धूप न जायगी?

केशव ने झुँझलाकर कहा — तू टोकरी तो ला, मैं उसका सूराख़ बन्द करने की कोई हिकमत निकालूँगा।

श्यामा दौडकर टोकरी उठा लायी। केशव ने उसके सूराख में थोडा-सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला — देख, ऐसे ही घोसले पर उसकी आड कर दूँगा। तब कैसे धूप जायगी?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक है!

## २

गर्मी के दिन थे। बाबू जी दफ़्तर गये हुए थे। अम्माँ दोनो बच्चो को कमरे में सुलाकर खुद सो गयी थी। लेकिन बच्चो की आँखो मे आज नीद कहाँ? अम्माँ जी को बहलाने के लिए दोनों दम रोके आँखे बन्द किये मौके का इन्तजार कर रहे थे। ज्योंही मालूम हुआ कि अम्माँ जी अच्छी तरह से सो गयी, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाज़े की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आये। अण्डों की हिफ़ाजत की तैयारियाँ होने लगी। केशव कमरे से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला तो नहाने की चौकी लाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथो से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टूल चारों टाँगें बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, ज़रा-सा हिल जाता था। उस वक़्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पडती थी यह उसी का दिल जानता था। दोनों हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डाँटता—अच्छी तरह पकड, वर्ना उतरकर बहुत मारूँगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रखा, दोनों चिड़ियाँ उड़ गयीं। केशव ने देखा, कार्निस पर थोडे तिनके बिछे हुए है, और उस पर तीन अण्डे पडे है। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसा कोई घोंसला नही है। श्यामा ने नीचे से पूछा—कै बच्चे है भइया?

केशव—तीन अण्डे है, अभी बच्चे नही निकले।

श्यामा—जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बडे है?

केशव—दिखा दूँगा, पहले जरा चिथडे ले आ, नीचे बिछा दूँ। बेचारे अडे तिनकों पर पड़े हैं।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लायी। केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनायी और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनो अण्डे धीरे से उस पर रख दिये।

श्यामा ने फिर कहा—हमको भी दिखा दो भइया।

केशव—दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी तो दे दो, ऊपर छाया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली—अब तुम उतर आओ, मैं भी तो देखूँ।

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा—जा, दाना और पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊँ तो तुझे दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लायी। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीज़ें रख दी और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ाकर कहा—अब हमको भी चढ़ा दो भइया।

केशव—तू गिर पड़ेगी।

श्यामा—न गिरूँगी भइया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव—न भइया, कहीं तू गिर-गिरा पड़े तो अम्माँ जी मेरी चटनी ही कर

डालेंगी। कहें कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर? अब अंडे बडे आराम से हैं। जब बच्चे निकलेंगे, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियाँ बार-बार कार्निस पर आती थी और बगैर बैठे ही उड़ जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर से नहीं बैठतीं। स्टूल उठाकर कमरे में रख आया, चौकी जहाँ की थी, वहाँ रख दी।

श्यामा ने आँखों मे आँसू भरकर कहा—तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्माँ जी से कह दूँगी।

केशव—अम्माँजी से कहेगी तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा—तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं?

केशव—और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते!

श्यामा—हो जाते, हो जाते। देख लेना मै कह दूँगी।

इतने में कोठरी का दरवाज़ा खुला और माँ ने धूप से आँखों को बचाते हुए कहा—तुम दोनों बाहर कब निकल आये? मैने कहा न था कि दोपहर को न निकलना? किसने किवाड़ खोला?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा ने माँ से यह बात नही कही। उसे डर लगा कि भइया पिट जायँगे। केशव दिल में काँप रहा था कि कही श्यामा कह न दे। अण्डे न दिखाये थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था। श्यामा सिर्फ़ मुहब्बत के मारे चुप थी या इस क़सूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नही किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माँ ने दोनों को डाँट-डपटकर फिर कमरे में बन्द कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पखा झलने लगी। अभी सिर्फ दो बजे थे। बाहर तेज़ लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नीद आ गयी थी।

३

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आयी और ऊपर की तरफ़ ताकने लगी। टोकरी का पता न था। सयोग से उसकी नजर नीचे गयी और वह उलटे पाँव दौड़ती हुई कमरे में जाकर जोर से बोली—भइया, अण्डे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गये!

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों

अण्डे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे कोई चूने की-सी चीज़ बाहर निकल आयी है। पानी की प्याली भी एक तरफ़ टूटी पड़ी है।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आँखों से ज़मीन की तरफ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा — बच्चे कहाँ उड़ गये भइया ?

केशव ने करुण स्वर मे कहा — अण्डे तो फूट गये।

'और बच्चे कहाँ गये ?'

केशव — तेरे सर में। देखती नहीं है अण्डों में से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही तो दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

माँ ने सोटी हाथ मे लिये हुए पूछा — तुम दोनों वहाँ धूप मे क्या कर रहे हो ?

श्यामा ने कहा — अम्माँ जी, चिड़िया के अण्डे टूटे पड़े है।

माँ ने आकर टूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोलीं — तुम लोगों ने अण्डों को छुआ होगा।

अब तो श्यामा को भइया पर ज़रा भी तरस न आया। उसी ने शायद अण्डों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सज़ा मिलनी चाहिए। बोली — इन्होने अण्डों को छेड़ा था अम्माँ जी।

माँ ने केशव से पूछा — क्यों रे ?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

माँ — तू वहाँ पहुँचा कैसे ?

श्यामा — चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्माँजी।

केशव — तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी ?

श्यामा — तुम्ही ने तो कहा था !

माँ — तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नही मालूम कि छूने से चिड़ियों के अण्डे गन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर उन्हे नहीं सेती।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा — तो क्या चिड़िया ने अण्डे गिरा दिये है, अम्माँ जी ?

माँ — और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, तीन जाने ले ली दुष्ट ने !

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला — मैने तो सिर्फ़ अण्डों को गद्दी पर रख दिया था, अम्माँ जी !

माँ को हँसी आ गयी। मगर केशव को कई दिनो तक अपनी गलती पर अफसोस होता रहा। अण्डो की हिफाजत करने के जोम में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पडता था।

दोनो चिड़ियाँ वहाँ फिर न दिखायी दी।

—'ख़ाके परवाना' से

# प्रतिशोध

माया अपने तिमंज़िले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उद्विग्न और अधीर आँखो से ताक रही थी और सोच रही थी, वह अब तक आये क्यों नही ? कहाँ देर लगायी ? इसी गाड़ी से आने को लिखा था। गाड़ी तो आ गयी होगी, स्टेशन से मुसाफिर चले आ रहे है। इस वक़्त तो कोई दूसरी गाड़ी नही आती। शायद असबाब वगैरह रखने मे देर हुई, यार-दोस्त स्टेशन पर बधाई देने के लिए पहुँच गये हों, उनसे फुर्सत मिलेगी तब घर की सुध आयेगी ! उनकी जगह मैं होती तो सीधे घर आती। दोस्तो से कह देती, जनाब इस वक़्त मुझे माफ कीजिए, फिर मिलिएगा। मगर दोस्तों में तो उनकी जान बसती है !

मिस्टर व्यास लखनऊ के नौजवान मगर अत्यन्त प्रतिष्ठित बैरिस्टरो में है। तीन महीने से वह एक राजनीतिक मुकदमे की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गये हुए हैं। उन्होने माया को लिखा था—जीत हो गयी। पहली तारीख को मैं शाम की मेल से ज़रूर पहुँचूँगा। आज वही शाम है। माया ने आज सारा दिन तैयारियो मे बिताया। सारा मकान धुलवाया। कमरों के सजावट के सामान साफ कराये, मोटर धुलवायी। यह तीन महीने उसने तपस्या के काटे थे। मगर अब तक मिस्टर व्यास नही आये।

उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों से चिमट गयी और बोली—अम्माँ, बाबू जी कब आएँगे ?

माया ने उसे गोद मे उठा लिया और चूमकर बोली—आते ही होगे बेटी, गाडी तो कब की आ गयी।

तिलोत्तमा—मेरे लिए अच्छी-अच्छी गुड़ियाँ लाते होगे।

माया ने कुछ जवाब न दिया। इतज़ार अब गुस्से मे बदलता जाता था। वह सोच रही थी, जिस तरह मुझे हज़रत परेशान कर रहे है, उसी तरह मैं भी उनको परेशान करूँगी। घण्टे भर तक बोलूँगी ही नही। आकर स्टेशन पर बैठे हुए है ! जलाने मे उन्हे मज़ा आता है। यह उनकी पुरानी आदत है। दिल को

क्या करूँ। नही, जी तो यही चाहता है कि जैसे वह मुझसे बेरुखी दिखलाते हैं, उसी तरह मैं भी उनकी बात न पूछूँ!

यकायक एक नौकर ने ऊपर आकर कहा — बहू जी, लाहौर से यह तार आया है।

माया अन्दर ही अन्दर जल उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बड़े जोर की हरारत हो गयी हो। बरबस खयाल आया — सिवाय इसके और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूँगा। तार दे देना कौन मुश्किल है। मै भी क्यों न तार दे दूँ कि मै एक महीने के लिए मैके जा रही हूँ। नौकर से कहा — तार ले जाकर कमरे में मेज़ पर रख दो। मगर फिर कुछ सोचकर उसने लिफ़ाफ़ा ले लिया और खोला ही था कि काग़ज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा। लिखा था — मिस्टर व्यास को आज दस बजे रात किसी बदमाश ने क़त्ल कर दिया।

## २

कई महीने बीत गये। मगर खूनी का अब तक पता नही चला। खुफ़िया पुलिस के अनुभवी लोग उसका सुराग़ लगाने की फिक्र में परेशान है। खूनी को गिरफ्तार करा देनेवाले को बीस हज़ार रुपये इनाम दिये जाने का ऐलान कर दिया गया है। मगर कोई नतीजा नहीं।

जिस होटल मे मिस्टर व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। उस कमरे से उसे प्यार-सा हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गयी है कि अब उसे पहचानना मुश्किल है। मगर उसके चेहरे पर बेकसी या दर्द का पीलापन नही क्रोध की गर्मी दिखायी पड़ती है। उसकी नशीली आँखो मे अब खून की प्यास है और प्रतिशोध की लपट। उसके शरीर का एक-एक कण प्रतिशोध की आग से जला जा रहा है। अब यही उसके जीवन का ध्येय, यही उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। उसके प्रेम की सारी निधि अब यही प्रतिशोध का आवेग है। जिस पापी ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आँखे ठण्डी होंगी। खुफ़िया पुलिस भय और लोभ, जाँच और पड़ताल से काम ले रही है, मगर माया ने अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए एक दूसरा ही रास्ता अपनाया है। मिस्टर व्यास को प्रेत-विद्या से लगाव था। उनकी सगति में माया ने भी कुछ आरम्भिक अभ्यास किया था। उस वक़्त उसके लिए यह एक मनोरजन था। मगर अब यही उसके जीवन का सम्बल था। वह रोज़ाना तिलो-

त्तमा पर अमल करती और रोज़-ब-रोज़ अभ्यास बढ़ाती जाती थी। वह उस दिन का इन्तज़ार कर रही थी जब वह अपने पति की आत्मा को बुलाकर उससे खूनी का सुराग लगा सकेगी। वह बड़ी लगन से, बड़ी एकाग्रचित्तता से अपने काम में व्यस्त थी। रात के दस बज गये थे। माया ने कमरे को अँधेरा कर दिया था और तिलोत्तमा पर अभ्यास कर रही थी। यकायक उसे ऐसा मालूम हुआ कि कमरे में कोई दिव्य व्यक्तित्व आया। बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक की तरह एक रोशनी नज़र आयी।

माया ने पूछा — आप कौन हैं?

तिलोत्तमा ने हँसकर कहा — तुम मुझे नही पहचानती? मै ही तुम्हारा मनमोहन हूँ जो दुनिया में मिस्टर व्यास के नाम से मशहूर था।

'आप खूब आये। मै आपसे खूनी का नाम पूछना चाहती हूँ।'

'उसका नाम है, ईश्वरदास।'

'कहाँ रहता है?'

'शाहजहाँपुर।'

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, सूरत-शकल, सब कुछ खूब विस्तार के साथ पूछा और एक काग़ज़ पर नोट कर लिया। तिलोत्तमा ज़रा देर में उठ बैठी। जब कमरे में फिर रोशनी हुई तो माया का मुरझाया हुआ पीला चेहरा विजय की प्रसन्नता से चमक रहा था। उसके शरीर मे एक नया जोश लहरे मार रहा था कि जैसे प्यास से मरते हुए मुसाफ़िर को पानी मिल गया हो।

उसी रात को माया ने लाहौर से शाहजहाँपुर जाने का इरादा किया।

३

रात का वक़्त, पजाब मेल बड़ी तेज़ी से अँधेरे को चीरती हुई चली जा रही थी। माया एक सेकेण्ड क्लास के कमरे मे बैठी सोच रही थी कि शाहजहाँपुर में वह कहाँ ठहरेगी, कैसे ईश्वरदास का मकान तलाश करेगी और कैसे उससे खून का बदला लेगी। उसके बगल मे तिलोत्तमा बेखबर सो रही थी। सामने ऊपर के बर्थ पर एक आदमी नींद में ग़ाफ़िल पड़ा हुआ था।

यकायक गाड़ी का कमरा खुला और दो आदमी कोट-पतलून पहने कमरे में दाखिल हुए। दोनो अंग्रेज़ थे। एक माया की तरफ बैठा और दूसरा दूसरी तरफ़। माया सिमटकर बैठ गयी। इन आदमियों का यो बैठना उसे बहुत बुरा मालूम

हुआ। वह कहना चाहती थी आप लोग दूसरी तरफ बैठे, पर वही औरत जो खून का बदला लेने जा रही थी, सामने यह खतरा देखकर कॉप उठी। वह दोनों शैतान उसे सिमटते देखकर और भी करीब आ गये। माया अब वहाँ न बैठी रह सकी। वह उठकर दूसरे बर्थ पर जाना चाहती थी कि उनमें से एक ने उसका हाथ पकड़ लिया। माया ने ज़ोर से हाथ छुड़ाने की कोशिश करके कहा — तुम्हारी शामत तो नहीं आयी है, छोड दो मेरा हाथ, सुअर ?

इस पर दूसरे आदमी ने उठकर माया को सीने से लिपटा लिया और लड़-खड़ाती हुई जबान से बोला — वेल, हम तुमको बहुत-सा रुपया देगा।

माया ने उसे सारी ताकत से ढकेलने की कोशिश करके कहा — हट जा हरामजादे, वर्ना अभी तेरा सर तोड़ दूँगी।

दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ और दोनो मिलकर माया को बर्थ पर लिटाने की कोशिश करने लगे। यकायक यह खटपट सुनकर ऊपर के बर्थ पर सोया हुआ आदमी चौका और उन बदमाशो की हरकत देखकर ऊपर से कूद पड़ा। दोनो गोरे उसे देखकर माया को छोड उसकी तरफ़ झपटे और उसे घूँसे मारने लगे। दोनो उस पर ताबड़तोड़ हमले कर रहे थे और वह हाथों से अपने को बचा रहा था। उसे वार करने का कोई मौका न मिलता था। यकायक उसने उचक-कर अपने बिस्तरे में से एक छुरा निकाल लिया और आस्तीनें समेटकर बोला— तुम दोनों अगर अभी बाहर न चले गये तो मैं एक को भी जीता न छोड़ूँगा।

दोनो गोरे छुरा देखकर डरे मगर वह भी निहत्थे न थे। एक ने जेब से रिवा-ल्वर निकाल लिया और उसकी नली उस आदमी की तरफ करके बोला — निकल जाओ, रैस्कल !

माया थरथर काँप रही थी कि न जाने क्या आफत आनेवाली है। मगर खतरा हमारी छिपी हुई हिम्मतो की कुजी है। खतरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते है और वह कुछ कर गुजरते है जिस पर हमे खुद हैरत होती है। वही माया जो अब तक थरथर कॉप रही थी, बिल्ली की तरह कूदकर उस गोरे की तरफ लपकी और उसके हाथ से रिवाल्वर खीचकर गाड़ी के नीचे फेंक दिया। गोरे ने खिसियाकर माया को दाँत काटना चाहा मगर माया ने जल्दी से हाथ खींच लिया और ख़तरे की ज़जीर के पास जाकर उसे ज़ोर से खीचा। दूसरा गोरा अब तक किनारे खड़ा था। उसके पास कोई हथियार न था इसलिए वह छुरी के सामने न आना चाहता था। जब उसने देखा कि माया ने जजीर खींच ली तो भीतर का

दरवाजा खोलकर भागा। उसका साथी भी उसके पीछे-पीछे भागा। चलते-चलते छुरीवाले आदमी ने उसे इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह मुँह के बल गिर पड़ा। फिर तो उसने इतनी ठोकरे, इतनी लाते और इतने घूँसे जमाये कि उसके मुँह से खून निकल पडा। इतने मे गाडी रुक गयी और गार्ड लालटेन लिये आता दिखायी दिया।

४

मगर वह दोनो शैतान गाडी को रुकते देखकर बेतहाशा नीचे कूद पड़े और उस अँधेरे मे न जाने कहाँ खो गये। गार्ड ने भी ज्यादा छानबीन न की और करता भी तो उस अँधेरे मे पता लगना मुश्किल था। दोनो तरफ खड्ड थे, शायद गाड़ी किसी नदी के पास थी। वहाँ दो क्या दो सौ आदमी उस वक़्त बडी आसानी से छिप सकते थे। दस मिनट तक गाडी खडी रही, फिर चल पडी।

माया ने मुक्ति की साँस लेकर कहा — आप आज न होते तो ईश्वर ही जाने मेरा क्या हाल होता। आपके कही चोट तो नही आयी?

उस आदमी ने छुरे को जेब मे रखते हुए कहा — बिलकुल नहीं। मै ऐसा बेसुध सोया हुआ था कि उन बदमाशो के आने की खबर ही न हुई। वर्ना मैंने उन्हे अन्दर पाँव ही न रखने दिया होता। अगले स्टेशन पर रिपोर्ट करूँगा।

माया — जी नही, खामखाह की बदनामी और परेशानी होगी। रिपोर्ट करने से कोई फायदा नहीं। ईश्वर ने आज मेरी आबरू रख ली। मेरा कलेजा अभी तक धड़-धड कर रहा है। आप कहाँ तक चलेंगे?

'मुझे शाहजहाँपुर जाना है।'

'वही तक तो मुझे भी जाना है। शुभ नाम क्या है? कम से कम अपने उपकारक के नाम से तो अपरिचित न रहूँ।'

'मुझे तो ईश्वरदास कहते है।'

माया का कलेजा धक् से हो गया। जरूर यह वही खूनी है, इसकी शक्ल-सूरत भी वही है जो उसे बतलायी गयी थी। उसने डरते-डरते पूछा — आपका मकान किस मुहल्ले मे है?

'. . . मे रहता हूँ।'

माया का दिल बैठ गया। उसने खिड़की से सिर बाहर निकालकर एक लम्बी साँस ली। हाय! खूनी मिला भी तो ऐसी हालत में जब वह उसके

एहसान के बोझ से दबी हुई है! क्या उस आदमी को वह खंजर का निशाना बना सकती है, जिसने बग़ैर किसी परिचय के सिर्फ हमदर्दी के जोश में ऐसे गाढ़े वक़्त में उसकी मदद की? जान पर खेल गया? वह एक अजीब उलझन में पड़ गयी। उसने उसके चेहरे की तरफ देखा, शराफत झलक रही थी। ऐसा आदमी खून कर सकता है, इसमे उसे संदेह था।

ईश्वरदास ने पूछा —आप लाहौर से आ रही है न? शाहजहाँपुर में कहाँ जाइएगा?

'अभी तो कही धर्मशाला मे ठहरूँगी, मकान का इन्तजाम करना है।'

ईश्वरदास ने ताज्जुब से पूछा — तो वहाँ आप किसी दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ नहीं जा रही है?

'कोई न कोई मिल ही जायगा।'

'यों आपका असली मकान कहाँ है?'

'असली मकान पहले लखनऊ था, अब कही नही है। मै बेवा हूँ।'

५

ईश्वरदास ने शाहजहाँपुर मे माया के लिए एक अच्छा मकान तय कर दिया। एक नौकर भी रख दिया। दिन मे कई बार हाल-चाल पूछने के लिए आता। माया कितना ही चाहती थी कि उसके एहसान न ले, उससे घनिष्ठता न पैदा करे, मगर वह इतना नेक, इतना बामुरौवत और शरीफ़ था कि माया मजबूर हो जाती थी।

एक दिन वह कई गमले और फ़र्नीचर लेकर आया। कई खूबसूरत तसवीरें भी थीं। माया ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा — मुझे साज-सामान की बिलकुल जरूरत नही, आप नाहक तकलीफ़ करते है।

ईश्वरदास ने इस तरह लज्जित होकर कि जैसे उससे कोई भूल हो गयी हो, कहा — मेरे घर में यह चीज़े बेकार पड़ी थी, लाकर रख दी।

'मैं इन टीम-टाम की चीजों की गुलाम नही बनना चाहती।'

ईश्वरदास ने डरते-डरते कहा – अगर आपको नागवार हो तो उठवा ले जाऊँ?

माया ने देखा कि उसकी आँखे भर आयी है, मजबूर होकर बोली — अब आप ले आये है तो रहने दीजिए। मगर आगे से कोई ऐसी चीज़ न लाइएगा।

एक दिन माया का नौकर न आया। माया ने आठ-नौ बजे तक उसकी राह देखी। जब अब भी वह न आया तो उसने जूठे बर्तन माँजना शुरू किया। उसे

कभी अपने हाथ से चौका-बर्तन करने का संयोग न हुआ था। बार-बार अपनी हालत पर रोना आता था। एक दिन वह था कि उसके घर में नौकरों की एक पलटन थी, आज उसे अपने हाथों बर्तन माँजने पड़ रहे हैं। तिलोत्तमा दौड़-दौड़ कर बड़े जोश से काम कर रही थी। उसे कोई फ़िक्र न थी। आपने हाथों से काम करने का, अपने को उपयोगी साबित करने का ऐसा अच्छा मौका पाकर उसकी खुशी की कोई सीमा न रही। इतने में ईश्वरदास आकर खड़ा हो गया और माया को बर्तन माँजते देखकर बोला — यह आप क्या कर रही है ? रहने दीजिए, मैं अभी एक आदमी को बुलाये लाता हूँ। आपने मुझे क्यों न ख़बर दी, राम राम, उठ आइए वहाँ से।

माया ने लापरवाही से कहा — कोई ज़रूरत नही। आप तकलीफ न कीजिए। मैं अभी माँजे लेती हूँ।

'इसकी ज़रूरत भी क्या, मैं एक मिनट में आता हूँ।'

'नही, आप किसी को न लाइए, मैं इतने बर्तन बड़ी आसानी से धो लूँगी।'

'अच्छा तो लाइए मैं भी आपकी कुछ मदद करूँ।'

यह कहकर उसने डोल उठा लिया और बाहर से पानी लेने दौड़ा। पानी लाकर उसने मँजे हुए बर्तनों को धोना शुरू किया।

माया ने उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करके कहा — आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते है ? रहने दीजिए, मैं अभी साफ किये डालती हूँ।

'आप मुझे शर्मिन्दा करती है या मैं आपको शर्मिन्दा कर रहा हूँ ? आप यहाँ मुसाफिर है, मैं यहाँ का रहनेवाला हूँ, मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ। आपने एक ज़्यादती तो यह की कि मुझे जरा भी ख़बर न दी, अब दूसरी ज़्यादती यह कर रही हैं। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

ईश्वरदास ने जरा देर में सारे बर्तन साफ़ करके रख दिये। ऐसा मालूम होता था कि वह ऐसे कामों का आदी है। बर्तन धोकर उसने सारे बर्तन पानी से भर दिये और तब माथे से पसीना पोंछता हुआ बोला — बाज़ार से कोई चीज़ लानी हो तो बतला दीजिए, अभी ला दूँ।

माया — जी नहीं, माफ कीजिए, आप अपने घर का रास्ता लीजिए।

ईश्वरदास — तिलोत्तमा, आओ आज तुम्हें सैर करा लायें।

माया — जी नही, रहने दीजिए। वह इस वक़्त सैर करने नही जाती।

माया ने यह शब्द इतने रूखेपन से कहे कि ईश्वरदास का मुँह उतर गया।

उसने दुबारा कुछ न कहा। चुपके से चला गया। उसके जाने के बाद माया ने सोचा मैंने उसके साथ कितनी बेमुरौवती की। रेलगाड़ी की उस दुखद घटना के बाद उसके दिल मे बराबर प्रतिशोध और मनुष्यता में लडाई छिडी हुई थी। अगर ईश्वरदास उस मौके पर स्वर्ग के एक दूत की तरह न आ जाता तो आज उसकी क्या हालत होती, यह खयाल करके उसके रोएँ खड़े हो जाते थे और ईश्वरदास के लिए उसके दिल की गहराइयों से कृतज्ञता के शब्द निकलते। क्या अपने ऊपर इतना बडा एहसान करनेवाले के खून से वह अपने हाथ रँगेगी? लेकिन उसी के हाथो उसे यह मनहूस दिन भी तो देखना पड़ा! उसी के कारण तो उसने रेल का वह सफर किया था वर्ना वह अकेले बिना किसी दोस्त या मददगार के सफर ही क्यों करती? उसी के कारण तो आज वह वैधव्य की विपत्तियाँ झेल रही है और सारी उम्र झेलेगी। इन बातों का ख़याल करके उसकी आँखे लाल हो जाती, मुँह से एक गर्म आह निकल जाती और जी चाहता इसी वक्त कटार लेकर चल पडे और उसका काम तमाम कर दे।

६

आज माया ने अन्तिम निश्चय कर लिया। उसने ईश्वरदास की दावत की थी। यही उसकी आख़िरी दावत होगी। ईश्वरदास ने उस पर एहसान जरूर किये है लेकिन दुनिया मे कोई एहसान कोई नेकी उस शोक के दाग को मिटा सकती है? रात के नौ बजे ईश्वरदास आया तो माया ने अपनी वाणी मे प्रेम का आवेग भरकर कहा — बैठिए, आपके लिए गर्म-गर्म पूडियाँ निकालूँ!

ईश्वरदास — क्या अभी तक आप मेरे इन्तजार मे बैठी हुई है? नाहक़ गर्मी में परीशान हुईं।

माया ने थाली परसकर उसके सामने रखते हुए कहा — मैं खाना पकाना नहीं जानती। अगर कोई चीज़ अच्छी न लगे तो माफ कीजिएगा।

ईश्वरदास ने खूब तारीफ कर करके एक-एक चीज खायी। ऐसी स्वादिष्ट चीजें उसने अपनी उम्र में कभी नहीं खायी थी।

'आप तो कहती थीं मैं खाना पकाना नही जानती?'

'तो क्या मैं ग़लत कहती थी?'

'बिलकुल ग़लत। आपने खुद अपनी गलती साबित कर दी। ऐसे ख़स्ते मैंने जिन्दगी में कभी नही खाये थे।'

'आप मुझे बनाते है, अच्छा साहब बना लीजिए!'

'नही मै बनाता नही, बिलकुल सच कहता हूँ। किस किस चीज की तारीफ़ करूँ? चाहता हूँ कि कोई ऐब निकालूँ लेकिन सूझता ही नही। अबकी मै अपने दोस्तो की दावत करूँगा तो आपको एक दिन तकलीफ दूँगा।'

'हाँ शौक से कीजिए, मै हाजिर हूँ।'

खाते-खाते दस बज गये। तिलोत्तमा सो गयी। गली में भी सन्नाटा हो गया। ईश्वरदास चलने को तैयार हुआ, तो माया बोली — क्या आप चले जायगे? क्यो न आज यही सो रहिए? मुझे कुछ डर लग रहा है। आप बाहर के कमरे मे सो रहिएगा, मै अन्दर आँगन मे सो रहूँगी।

ईश्वरदास ने क्षण भर सोचकर कहा — अच्छी बात है। आपने पहले कभी न कहा कि आपको इस घर मे डर लगता है वर्ना मै किसी भरोसे की बुड्ढी औरत को रात को सोने के लिए ठीक कर देता।

ईश्वरदास ने तो कमरे में आसन जमाया, माया अन्दर खाना खाने गयी। लेकिन आज उसके गले के नीचे एक कौर भी न उतर सका। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था। दिल पर एक डर-सा छाया हुआ था। ईश्वरदास कहीं जाग पडा तो? उसे उस वक़्त कितनी शर्मिन्दगी होगी!

माया ने कटार को खूब तेज़ कर रखा था। आज दिन भर उसने उसे हाथ मे लेकर अभ्यास किया। वह इस तरह वार करेगी कि खाली ही न जाय। अगर ईश्वरदास जाग ही पडा तो भी जानलेवा घाव लगेगा।

जब आधी रात हो गयी और ईश्वरदास के खर्राटो की आवाजे कानो मे आने लगी तो माया कटार लेकर उठी पर उसका सारा शरीर काँप रहा था। भय और सकल्प, आकर्षण और घृणा एक साथ कभी उसे एक कदम आगे बढा देती कभी पीछे हटा देती। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारा मकान, सारा आसमान चक्कर खा रहा है। कमरे की हर एक चीज़ घूमती हुई नजर आ रही थी। मगर एक क्षण मे यह बेचैनी दूर हो गयी और दिल पर डर छा गया। वह दबे पाँव ईश्वरदास के कमरे तक आयी, फिर उसके कदम वही जम गये। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। आह, मै कितनी कमजोर हूँ। जिस आदमी ने मेरा सर्वनाश कर दिया, मेरी हरी-भरी खेती उजाड़ दी, मेरे लहलहाते हुए उपवन को वीरान कर दिया, मुझे हमेशा के लिए आग के जलते हुए कुडो मे डाल दिया, उससे मै खून का बदला भी नही ले सकती! वह मेरी ही बहने थी, जो तलवार और बन्दूक

लेकर मैदान मे लडती थी, दहकती हुई चिता में हँसते-हँसते बैठ जाती थी। उसे उस वक़्त ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर व्यास सामने खडे है और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहे हैं। कह रहे है, क्या तुम मेरे खून का बदला न लोगी ? मेरी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही है। क्या उसे हमेशा-हमेशा यों ही तडपाती रहोगी ? क्या यही वफा की शर्त थी ? इन विचारो ने माया की भावनाओं को भडका दिया। उसकी आँखे खून की तरह लाल हो गयी, होंठ दाँतों के नीचे दब गये और कटार के हत्थे पर मुट्ठी बँध गयी। एक उन्माद-सा छा गया। उसने कमरे के अन्दर पैर रखा मगर ईश्वरदास की आँखे खुल गयी थीं। कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी थी। माया की आहट पाकर वह चौका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया — माया प्रलय की मूर्ति बनी हाथ में नंगी कटार लिये उसकी तरफ चली आ रही थी!

वह चारपाई से उठकर खडा हो गया और घबडाकर बोला — क्या है बहन ? यह कटार क्यों लिये हुए हो ?

माया ने कहा — यह कटार तुम्हारे खून की प्यासी है क्योकि तुमने मेरे पति का खून किया है।

ईश्वरदास का चेहरा पीला पड गया। बोला — मैंने !

"हाँ तुमने, तुम्ही ने लाहौर मे मेरे पति की हत्या की, जब वे एक मुकदमे की पैरवी करने गये थे। क्या तुम इससे इनकार कर सकते हो ? मेरे पति की आत्मा ने खुद तुम्हारा पता बतलाया है।'

'तो तुम मिस्टर व्यास की बीवी हो ?'

'हाँ, मैं उनकी बदनसीब बीवी हूँ और तुम मेरा सोहाग लूटनेवाले हो! गो तुमने मेरे ऊपर एहसान किये हैं लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। वह तुम्हारे खून ही से बुझेगी।'

ईश्वरदास ने माया की ओर याचना-भरी आँखों से देखकर कहा — अगर आपका यही फ़ैसला है तो लीजिए यह सर हाजिर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं खुद उसे आपके कदमों पर गिरा दूँगा। लेकिन जिस तरह आप मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना अपना धर्म समझती है उसी तरह मैने भी मिस्टर व्यास को कत्ल करना अपना धर्म समझा। आपको मालूम है, वह एक राजनीतिक मुकदमे की पैरवी करने लाहौर गये थे। लेकिन मिस्टर व्यास ने जिस तरह अपनी ऊँची कानूनी लियाकत का इस्तेमाल किया, पुलिस को झूठी शहादतों के तैयार करने मे जिस तरह मदद दी, जिस बेरहमी और बेदर्दी से

बेकस और ज्यादातर बेगुनाह नौजवानो को तबाह किया, उसे मैं सह न सकता था। उन दिनों अदालत में तमाशाइयों की बेइन्तहा भीड़ रहती थी। सभी अदालत से मिस्टर व्यास को कोसते हुए जाते थे। मैं तो मुकदमे की हकीक़त को जानता था, इसलिए मेरी अन्तरात्मा सिर्फ़ कोसने और गालियाँ देने से शान्त न हो सकती थी। मैं आपसे क्या कहूँ। मिस्टर व्यास ने आँख खोलकर समझ-बूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानो को बेचिराग़ कर दिया। आज कितनी माँएँ अपने बेटों के लिए खून के आँसू रो रही हैं, कितनी ही औरते रँडापे की आग में जल रही है। पुलिस कितनी ही ज्यादतियाँ करे, हम परवाह नहीं करते। पुलिस से हम इसके सिवा और कोई उम्मीद भी नहीं रखते। उसमें ज्यादातर जाहिल, शोहदे, लुच्चे भरे हुए है। सरकार ने इस महकमे को क़ायम ही इसलिए किया है कि वह रिआया को तंग करे। मगर वकीलों से हम इन्साफ़ की उम्मीद रखते है। हम उनकी इज़्ज़त करते हैं। वे उच्चकोटि के पढ़े-लिखे, सजग लोग होते है। जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस के हाथों की कठपुतली बना हुआ देखते हैं तो हमारे क्रोध की सीमा नहीं रहती। मैं मिस्टर व्यास का प्रशसक था, मगर जब मैने उन्हें बेगुनाह मुलजिमों से जबरन् जुर्म का इकबाल कराते देखा तो मुझे उनसे नफ़रत हो गयी। गरीब मुलज़िम रात-रात भर उल्टे लटकाये जाते थे! सिर्फ़ इसलिए कि वह अपना जुर्म, जो उन्होने कभी नही किया, इकबाल कर लें! उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआँ डाला जाता था! मिस्टर व्यास यह सारी ज्यादतियाँ सिर्फ अपनी आँखो से देखते ही नहीं थे, बल्कि उन्हीं के इशारे पर वह की जाती थीं।

माया के चेहरे की कठोरता जाती रही। उसकी जगह जायज़ गुस्से की गर्मी पैदा हुई। बोली — इसका आपके पास कोई सबूत है कि उन्होंने मुलज़िमों पर ऐसी सख्तियाँ कीं?

'यह सारी बातें आम तौर पर मशहूर थी। लाहौर का बच्चा-बच्चा जानता है। मैंने खुद आँखों से देखी, इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ। उन बेचारों का बस इतना कसूर था कि वह हिन्दुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक़्त प्रजा की शिक्षा और सेवा मे खर्च करते थे। खुद भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस और हुक्काम की सख्तियाँ न होने देते थे, यही उनका गुनाह था और इसी गुनाह की सज़ा दिलाने में मिस्टर व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे!'

माया के हाथ से खंजर गिर पड़ा। उसकी आँखों में आँसू भर आये, बोली—मुझे न मालूम था कि वे ऐसी हरकतें भी कर सकते है।

ईश्वरदास ने कहा —— यह न समझिए कि मै आपकी तलवार से डरकर वकील साहब पर झूठे इल्ज़ाम लगा रहा हूँ। मैंने कभी जिन्दगी की परवाह नही की। मेरे लिए कौन रोनेवाला बैठा हुआ है जिसके लिए जिन्दगी की परवाह करूँ। अगर आप समझती है कि मैने अनुचित हत्या की है तो आप इस तलवार को उठाकर इस ज़िन्दगी का ख़ात्मा कर दीजिए, मै ज़रा भी न झिझकूँगा। अगर आप तलवार न उठा सके तो पुलिस को खबर कर दीजिए वह बडी आसानी से मुझे दुनिया से रुख़सत कर सकती है। सबूत मिल जाना मुश्किल न होगा। मैं खुद पुलिस के सामने अपने जुर्म का इकबाल कर लेता मगर मैं इसे जुर्म नही समझता। अगर एक जान के जाने से सैकडों जाने बच जायँ तो वह खून नहीं है। मैं सिर्फ इसलिए ज़िन्दा रहना चाहता हूँ कि शायद किसी ऐसे ही मौके पर मेरी फिर ज़रूरत पड़े।

माया ने रोते हुए कहा —— अगर तुम्हारा बयान सही है तो मैं अपना खून माफ करती हूँ। तुमने जा किया या बेजा किया इसका फैसला ईश्वर करेंगे। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे पति के हाथो जो घर तबाह हुए है उनका मुझे पता बतला दो, शायद मै उनकी कुछ सेवा कर सकूँ।

—'प्रेमचालीसी' से

# देवी

रात भीग चुकी थी। मै बरामदे में खड़ा था। सामने अमीनुद्दौला पार्क नीद मे डूबा खडा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादार बेंच पर बैठी हुई थी। पार्क के बाहर सडक के किनारे एक फ़कीर खड़ा राहगीरों को दुआएँ दे रहा था—खुदा और रसूल का वास्ता......राम और भगवान का वास्ता......इस अंधे पर रहम करो।

सड़क पर मोटरों और सवारियों का ताँता बन्द हो चुका था। इक्के-दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फकीर की आवाज़ जो पहले नक्कारखाने मे तूती की आवाज़ थी, अब खुले मैदानों की बुलद पुकार हो रही थी! एकाएक वह औरत उठी और इधर-उधर चौकन्नी आँखो से देखकर फ़कीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ़ चली गयी। फकीर के हाथ में कागज़ का एक टुकड़ा नजर आया जिसे वह बार-बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह काग़ज दिया है?

यह क्या रहस्य है? उसको जानने के कुतूहल से अधीर होकर मै नीचे आया और फ़कीर के पास खड़ा हो गया।

मेरी आहट पाते ही फ़कीर ने उस कागज़ के पुर्जे को दो उँगलियो से दबाकर मुझे दिखाया और पूछा — बाबा, देखो यह क्या चीज है?

मैंने देखा — दस रुपये का नोट था! बोला — दस रुपये का नोट है, कहाँ पाया?

फ़कीर ने नोट को अपनी झोली में रखते हुए कहा—कोई खुदा की बंदी दे गयी है।

मैंने और कुछ न कहा। उस औरत की तरफ दौड़ा जो अब अँधेरे में बस एक सपना बनकर रह गयी थी।

वह कई गलियों में होती हुई एक टूटे फूटे गिरे-पड़े मकान के दरवाज़े पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गयी।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मैं लौट आया।

रात भर मेरा जी उसी तरफ़ लगा रहा। एकदम तड़के मैं फिर उस गली में जा पहुँचा। मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा — देवी, मै तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ।

औरत बाहर निकल आयी — गरीबी और बेकसी की ज़िन्दा तस्वीर।

मैंने हिचकते हुए कहा — रात आपने फकीर को......

देवी ने बात काटते हुए कहा — अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैंने उस देवी के क़दमो पर सिर झुका दिया।

—'प्रेमचालीसी' से

# ख़ुदी

मुन्नी जिस वक़्त दिलदारनगर मे आयी, उसकी उम्र पाँच साल से ज़्यादा न थी। वह बिलकुल अकेली थी, माँ-बाप दोनो न मालूम मर गये या कही परदेस चले गये थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातो का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तेरे माँ-बाप कहाँ गये? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवालो को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती — ऊपर। कभी आसमान की तरफ़ देखकर कहती — वहाँ। इस ऊपर और वहाँ से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था। बस एक दिन लोगों ने उसे एक पेड के नीचे खेलते देखा और इससे ज़्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था।

लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे खाने-पीने की कुछ फ़िक्र न रहती थी। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शक्ल-सूरत से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। ग़रीब से ग़रीब घर मे भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। मुन्नी अब कुछ काम करने के क़ाबिल हो गयी। कोई कहता, ज़रा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-सुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटी कुएँ से दो घड़े पानी तो खीच ला, तो वह कपड़े वही रखकर घड़े लेकर कुएँ की तरफ़ चल देती। कुएँ पर कोई कह देता, ज़रा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ और मुन्नी घड़े वही रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इन्तज़ार मे बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती। कुएँ पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए है। वह मुन्नी को गालियाँ देती हुई कहती, आज से इस कलमुँही

को कुछ खाने को न दूँगी। कपडे के इन्तजार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती और गुस्से मे तालाब की तरफ जाती तो रास्ते में कपड़े पडे हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियाँ देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूँगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम न करूँ, जिसे जवाब दूँ वही नाराज़ हो जायगा। मेरा अपना कौन है, मै तो सब की हूँ। उस गरीब को यह न मालूम था कि जो सब का होता है वह किसी का नही होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गयी। अब तक वह औरतो की थी, अब मर्दो की हो गयी। वह सारे गाँव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे —— मै तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे वियोग मे तारे गिनता हूँ, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे ख़बर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे ; पर कोई उसकी बाँह पकड़नेवाला, उसकी लाज रखनेवाला न था। वह सब की थी, उसकी मुहब्बत के दरवाज़े सब पर खुले हुए थे ; पर कोई उस पर अपना ताला न डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नही।

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहाँ से भटककर आ गयी थी, अब गाँव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षो को उभारकर रूप-गर्व से गर्दन उठाये, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थामकर रह जाते, उसके पैरो तले आँखे बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियाँ खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी, किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी, किसी से रूठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल मे उसे क़त्ल और खून का-सा मजा मिलता था। अब पाँसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिस चीज़ की तलाश थी, वह कही न मिलती थी।

किसी मे वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस पर दिल न्यौछावर करनेवाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल मे उन सरफिरो को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के क़ाबिल नही था। ऐसे पस्त-हिम्मतो को वह खिलौनो से ज्यादा महत्व न देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरजन से अधिक कुछ नही।

जिस वक़्त कोई नौजवान मिठाइयो के थाल और फूलो के हार लिये उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता, मुँह नोच लूँ। उसे वह चीजे काल-कूट हलाहल जैसी लगती। उनकी जगह वह रूखी रोटियाँ चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनो और अशर्फ़ियो के ढेर उसे बिच्छू के डक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमे प्रेम की गध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यजन, पर उसे इन चीज़ों की आकाक्षा न थी। उसे आकांक्षा थी, फूस के झोपड़े, मोटे-झोटे गाढ़े और रूखे-सूखे खाने की। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बंद पिंजरा कही ज्यादा चहेता!

एक दिन एक परदेसी गाँव में आ निकला। बहुत ही कमज़ोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा हुआ था। एकाएक मुन्नी उधर से जा निकली। मुसाफिर को देखकर बोली — कहाँ जाओगे?

मुसाफ़िर ने बेरुखी से जवाब दिया — जहन्नुम!

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा — क्यो, क्या दुनिया में जगह नही?

'औरों के लिए होगी, मेरे लिए नही।'

'दिल पर कोई चोट लगी है?'

मुसाफिर ने ज़हरीली हँसी हँसकर कहा — बदनसीबों की तकदीर मे और क्या है! रोना-धोना और डूब मरना, यही उनकी ज़िन्दगी का खुलासा है। पहली दो मजिले तो तय कर चुका, अब तीसरी मजिल और बाक़ी है, कोई दिन वह भी पूरी हो जायगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाये हुए दिल के शब्द थे। जरूर उसके पहलू में दिल है। वर्ना यह दर्द कहाँ से आता? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी। बोली — कही और वफ़ा की तलाश क्यों नहीं करते?

मुसाफिर ने निराशा के भाव से उत्तर दिया —— मेरी तकदीर मे नहीं, वर्ना मेरा क्या बना-बनाया घोसला उजड जाता। दौलत मेरे पास नही। रूप-रग मेरे पास नही, फिर वफा की देवी मुझ पर क्यो मेहरबान होने लगी ? पहले समझता था वफा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चाँदी से ख़रीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ, मेरी नजरो ने धोखा खाया था। मुसाफ़िर बहुत काला नही, सिर्फ साँवला था। उसका नाक-नक्शा भी उसे आकर्षक जान पडा। बोली—— नही, यह बात नही, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गयी। उसके हृदय के भाव उसके सयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल मे डूब गया। वह इस सुन्दरी की बातो पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहाँ वफ़ा मिलेगी ? क्या यहाँ भी तकदीर धोखा न देगी ?

मुसाफिर ने रात उसी गाँव मे काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फूस का झोंपडा खडा किया। मुन्नी ने पूछा —— यह झोपड़ा किसके लिए बनाते हो ?

मुसाफिर ने कहा —— जिससे वफा की उम्मीद है।

‘चले तो न जाओगे ?’

‘झोंपडा तो रहेगा।’

‘खाली घर में भूत रहते है।’

‘अपने प्यारे का भूत भी प्यारा होता है।’

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपड़े में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोपडे मे नही रह सकती। वह उस भोले मुसाफिर को जरूर दगा देगी, यह आम ख़याल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुन्दर दिखायी पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू मे दिल था।

## ३

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिन्ता हुई कि कही यहाँ भी वही अभागा दिन न देखना पडे। रूप में वफा कहाँ ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बाते हुई थी, ऐसी ही क़समें खायी गयी थी, एक दूसरे से वादे किये गये थे।

मगर उन कच्चे धागो को टूटते कितनी देर लगी? वह धागे क्या फिर न टूट जायँगे? उसके क्षणिक आनन्द का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गयी। इस मरहम से भी उसके जिगर का ज़ख्म न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिन्तित बैठा रहा और चौथे रोज़ लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की झोपडी रह गयी।

मुन्नी दिन भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह ज़रूर आयेगे। लेकिन महीनो गुजर गये, और मुसाफिर न लौटा। कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह जरूर आयेगे।

साल बीत गया। पेडों मे नयी-नयी कोपले निकली, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएँ आयी, बिजली चमकी, यहाँ तक कि जाडा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी, वह ज़रा भी चिन्तित न थी, भयभीत न थी। वह दिन भर मजदूरी करती और शाम को झोपड़े में पड रहती। लेकिन वह झोंपडा अब एक सुरक्षित किला था, जहाँ सिरफिरों के निगाह के पाँव भी लँगडे हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकडी का गट्ठा लिये चली आती थी। एक रसिया ने छेडखानी की — मुन्नी, क्यो अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो? तुम्हारी एक कृपा-दृष्टि पर इस लकडी के बराबर सोना न्योछावर कर सकता हूँ।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा — तुम्हारा सोना तुम्हे मुबारक हो, यहाँ अपनी मेहनत का भरोसा है।

'क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आयेगा।'

मुन्नी ने अपने झोपडे की तरफ इशारा करके कहा — वह गया कहाँ जो लौटकर आयेगा? मेरा होकर वह फिर कहाँ जा सकता है? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है!

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा — तुम्हारे लिए मेरा महल हाज़िर है। इस टूटे-फूटे झोंपड़े मे क्या पड़ी हो।

मुन्नी ने अभिमान से कहा — इस झोपडे पर एक लाख महल न्योछावर है। यहाँ मैंने वह चीज पायी है, जो और कही नही मिली थी और न मिल सकती है। यह झोंपड़ा नही है, मेरे प्यारे का दिल है!

इस झोपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफ़िर के लौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहे दरवाज़े की तरफ लगी हुई थी।

उसके ख़रीदारों में कुछ तो मर गये, कुछ ज़िन्दा है, मगर जिस दिन से वह एक की हो गयी, उसी दिन से उसके चेहरे पर वह दीप्ति दिखायी पड़ी जिसकी तरफ़ ताकते ही वासना की आँखें अन्धी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमज़ोरियाँ उसके पास आते डरती हैं।

—'ख़ाके परवाना' से

## बड़े बाबू

तीन सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट की लगातार और अनथक दौड़-धूप के बाद आखिर मैं अपनी मंजिल पर धड़ से पहुँच गया। बड़े बाबू के दर्शन हो गये। मिट्टी के गोले ने आग के गोले का चक्कर पूरा कर लिया। अब तो आप भी मेरी भूगोल की लियाकत के कायल हो गये होंगे। इसे रूपक न समझिएगा। बड़े बाबू में दोपहर के सूरज की गर्मी और रोशनी थी और मैं क्या और मेरी बिसात क्या, एक मुट्ठी खाक। बड़े बाबू मुझे देखकर मुस्कराये। हाय, वह बड़े लोगों की मुस्कराहट, मेरा अधमरा-सा शरीर काँपने लगा। जी मे आया बड़े बाबू के क़दमों पर बिछ जाऊँ। मैं काफ़िर नहीं, गालिब का मुरीद नही, जन्नत के होने पर मुझे पूरा यकीन है, उतना ही पूरा जितना अपने अँधेरे घर पर। लेकिन फरिश्ते मुझे जन्नत ले जाने के लिए आते तो भी यकीनन मुझे वह ज़बर्दस्त खुशी न होती जो इस चमकती हुई मुस्कराहट से हुई। आँखों में सरसों फूल गयी। सारा दिल और दिमाग़ एक बागीचा बन गया। कल्पना ने मिस्र के ऊँचे-ऊँचे महल बनाने शुरू कर दिये। सामने कुर्सियों, पर्दों और ख़स की टट्टियो से सजा-सजाया कमरा था। दरवाज़े पर उम्मीदवारों की भीड़ लगी थी और ईजानिब एक कुर्सी पर शान से बैठे हुए सबको उसका हिस्सा देनेवाले ख़ुदा के दुनियावी फ़र्ज़ अदा कर रहे थे। नज़र-नियाज़ का तूफान बरपा था और मैं किसी तरफ़ आँख उठाकर न देखता था कि जैसे मुझे किसी से कुछ लेना-देना नही।

अचानक एक शेर जैसी गरज ने मेरे बनते हुए महल में एक भूचाल-सा ला दिया — क्या काम है? हाय रे, ये भोलापन! इस पर सारी दुनिया के हसीनों का भोलापन और बेपर्वाही निसार है। इस ड्योढी पर माथा रगड़ते-रगड़ते तीन सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट गुज़र गये। चौखट का पत्थर घिसकर ज़मीन से मिल गया। ईदू बिसाती की दुकान के आधे खिलौने और गोवर्द्धन हल-वाई की आधी दुकान इसी ड्योढ़ी की भेंट चढ़ गयी और मुझसे आज सवाल होता है, क्या काम है!

मगर नहीं, यह मेरी ज्यादती है। सरासर जुल्म। जो दिमाग़ बड़े-बड़े

मुल्की और माली और तमद्दुनी मसलो मे दिन-रात लगा रहता हो, जो दिमाग डाकिटों, सरकुलरो, परवानो, हुक्मनामो, नक्शो वगैरह के बोझ से दबा जा रहा हो, उसके नजदीक मुझ-जैसे खाक के पुतले की हस्ती ही क्या। मच्छर अपने को चाहे हाथी समझ ले पर बैल के सीग को उसकी क्या खबर। मैने दबी जबान से कहा —— हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बडे बाबू फिर गरजे —— क्या काम है ?

अबकी बार मेरे रोएँ खडे हो गये। खुदा के फजल से लहीम-शहीम आदमी हूँ, जिन दिनो कालेज मे था, मेरे डील-डौल और मेरी बहादुरी और दिलेरी की धूम थी। हाकी टीम का कप्तान, फुटबाल टीम का नायब कप्तान और क्रिकेट का जनरल था। कितने ही गोरो के जिस्म पर अब भी मेरी बहादुरी के दाग बाकी होंगे। मुमकिन है, दो चार अब भी बैसाखियाँ लिये चलते या रेगते हो। बम्बई क्रानिकल और टाइम्स मे मेरे गेदो की धूम थी। मगर इस वक्त बाबू साहब की गरज सुनकर मेरा शरीर कॉपने लगा। कॉपते हुए बोला —— हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बडे बाबू ने अपना स्लीपरदार पैर मेरी तरफ बढाकर कहा —— शौक से। लीजिए यह कदम हाजिर है, जितने बोसे चाहे लीजिए, बेहिसाब मामला है, मुझसे कसम ले लीजिए जो मै गिनूँ, जब तक आपका मुँह न थक जाय, लिये जाइए ! मेरे लिए इससे बढकर खुशनसीबी का क्या मौका होगा ? औरो को जो बात बडे जप-तप, बड़े सयम-व्रत से मिलती है, वह मुझे बैठे-बिठाये बगैर हड़-फिटकरी लगाये हासिल हो गयी। वल्लाह, हूँ मै भी खुशनसीब। आप अपने दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन जो हो, उन सबको लाये तो और भी अच्छा, मेरे यहाँ सबको छूट है !

हँसी के पर्दे मे यह जो जुल्म बड़े बाबू कर रहे थे उस पर शायद अपने दिल में उनको नाज हो। इस मनहूस तकदीर का बुरा हो, जो इस दरवाज़े का भिखारी बनाये हुए है। जी मे तो आया कि हजरत के बढ़े हुए पैर को खीच लूँ और आपको जिन्दगी भर के लिए सबक़ दे दूँ कि बदनसीबों से दिल्लगी करने का यह मजा है। मगर बदनसीबी अगर दिल पर जब्र न कराये, जिल्लत का एहसास न पैदा करे तो वह बदनसीबी क्यों कहलाये। मै भी एक जमाने मे इसी तरह लोगों को तकलीफ़ पहुँचाकर हँसता था। उस वक्त इन बडे बाबुओं की मेरी निगाह मे कोई हस्ती न थी। कितने ही बड़े बाबुओं को रुलाकर छोड़ दिया। कोई ऐसा प्रोफ़ेसर

न था, जिसका चेहरा मेरी सूरत देखते ही पीला न पड जाता हो। हजार-हजार रुपया पानेवाले प्रोफेसरों की मुझसे कोर दबती थी। ऐसे क्लर्कों को मै समझता ही क्या था। लेकिन अब वह जमाना कहाँ। दिल मे पछताया कि नाहक कदम-बोसी का लफ़्ज ज़बान पर लाया। मगर अपनी बात कहना ज़रूरी था। मै पक्का इरादा करके आया था कि उस ड्योढी से आज कुछ लेकर ही उठूँगा। मेरे धीरज और बड़े बाबू के इस तरह जानबूझकर अनजान बनने मे रस्साकशी थी। दबी ज़बान से बोला —— हुजूर, ग्रेजुएट हूँ।

शुक्र है, हजार शुक्र है, बडे बाबू हँसे। जैसे हॉडी उबल पडी हो। वह गरज और वह करख्त आवाज़ न थी। मेरा माथा रगडना आखिर कहाँ तक असर न करता। शायद असर को मेरी दुआ से दुश्मनी नही। मेरे कान बडी बेकरारी से वे लफ़्ज सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे जिनसे मेरी रूह को खुशी होगी। मगर आह, जितनी मायूसी इन कानो को हुई है, उतनी शायद पहाड खोदनेवाले फरहाद को भी न हुई होगी। वह मुस्कराहट न थी, मेरी तकदीर की हँसी थी। हुजूर ने फरमाया —— बडी खुशी की बात है, मुल्क और कौम के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है। मेरी दिली तमन्ना है, मुल्क का हर एक नौजवान ग्रेजुएट हो जाय। ग्रेजुएट जिन्दगी के जिस मैदान मे जाय, उस मैदान को तरक़्की ही देगा —— मुल्की, माली, तमद्दुनी, मजहबी, गरज कि हर एक किस्म की तहरीक का जन्म और तरक़्की ग्रेजुएटो ही पर मुनहसर है। अगर मुल्क मे ग्रेजुएटों का यह अफसोसनाक अकाल न होता तो असहयोग की तहरीक क्यों इतनी जल्दी मुर्दा हो जाती! क्यो बने हुए, रँगे सियार, दगाबाज, जरपरस्त लीडरों को डाकेजनी के ऐसे मौके मिलते! तबलीग़ क्यों मुबल्लिगे अलेहुस्सलाम की इल्लत बनती! ग्रेजुएट में सच और झूठ की परख, निगाह का फैलाव और जॉचने-तौलने की काबलियत होना जरूरी बात है। मेरी आँखे तो ग्रेजुएटो को देखकर नशे के दर्जे तक खुशी से भर उठती है। आप भी खुदा के फ़जल से अपनी किस्म की बहुत अच्छी मिसाल है, बिलकुल अप-टू-डेट। यह शेरवानी तो बरकत एण्ड को० की दुकान की सिली हुई होगी। जूते भी डासन के है। क्यो न हो। आप लोगों ने क़ौम की ज़िन्दगी के मेयार को बहुत ऊँचा बना दिया है और अब वह बहुत जल्द अपनी मंज़िल पर पहुँचेगी। ब्लैकबर्ड भी है, वेस्ट एण्ड की रिस्टवाच भी है। बेशक अब कौमी बेड़े को ख्वाजा खिजर की जरूरत भी नही। वह उनकी मिन्नत न करेगा।

हाय तक़दीर और वाय तकदीर! अगर जानता कि यह शेरवानी और फ़ाउण्टेनपेन और रिस्टवाच यो मज़ाक का निशाना बनेगी, तो दोस्तो का एहसान क्यो लेता। नमाज बख्शवाने आया था, रोज़े गले पड़े। किताबो मे पढा था गरीबी की हुलिया ऐलान है अपनी नाकामी का, न्योता देना है अपनी ज़िल्लत को। तजुर्बा भी यही कहता था। चीथड़े लगाये हुए भिखमगो को कितनी बेदर्दी से दुतकारता हूँ। लेकिन जब कोई हज़रत सूफी-साफी बने हुए, लम्बे-लम्बे बाल कधों पर बिखेरे, सुनहरा अमामा सर पर बाँका-तिरछा शान से बाँधे, संदली रग का नीचा कुर्ता पहने, कमरे में आ पहुँचते है तो मजबूर होकर उनकी इज्जत करनी पड़ती है और उनकी पाकीजगी के बारे में हज़ारों शुबहे पैदा होने पर भी छोटी से छोटी रक़म जो उनकी नज़र की जाती है, वह एक दर्जन भिखारियो को अच्छा खाना खिलाने के सामान इकट्ठा कर देती। पुरानी मसल है — भेस से ही भीख मिलती है। पर आज यह बात गलत साबित हो गयी। अब बीवी साहिबा की वह तम्बीह याद आयी जो उसने चलते वक़्त दी थी — क्यों बेकार अपनी बेइज्जती कराने जा रहे हो। वह साफ समझेंगे कि यह माँगे-जाँचे का ठाठ है। ऐसे रईस होते तो मेरे दरवाजे पर आते ही क्यों। उस वक़्त मैने इस तम्बीह को बीवी की कम-निगाही और उसका गँवारपन समझा था। पर अब मालूम हुआ कि गँवारिनें भी कभी-कभी सूझ की बाते कहती है। मगर अब पछताना बेकार है। मैंने आजिज़ी से कहा — हुजूर कही मेरी भी परवरिश फरमाये।

बडे बाबू ने मेरी तरफ़ इस अन्दाज़ से देखा कि जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया का कोई जानवर हूँ और बहुत दिलासा देने के लहजे मे बोले — आपकी परवरिश खुदा करेगा। वही सब का रज्ज़ाक है। दुनिया जब से शुरू हुई तब से तमाम शायर, हकीम और औलिया यही सिखाते आये हैं कि खुदा पर भरोसा रख और हम है कि उनकी हिदायत को भूल जाते हैं। लेकिन खैर, मै आपको नेक सलाह देने मे कजूसी न करूँगा। आप एक अखबार निकाल लीजिए। यकीन मानिए इसके लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होने की ज़रूरत नही और आप तो खुदा के फजल से ग्रेजुएट है। स्वादिष्ट तिलाओं और स्तम्भन-बटियों के नुस्खे लिखिए। तिब्बे अकबर में आपको हजारों नुस्खे मिलेंगे। लाइब्रेरी जाकर नक़ल कर लाइए और अखबार में नये नाम से छापिए। कोकशास्त्र तो आपने पढ़ा ही होगा। अगर न पढ़ा हो तो एक बार पढ़ जाइए और अपने अखबार में शादी के मज़ों के तरीक़े लिखिए। कामेन्द्रिय के नाम जितने ज्यादा आ सकें, बेहतर है। फिर देखिए

कैसे डाक्टर और प्रोफ़ेसर और डिप्टी कलेक्टर आपके भक्त हो जाते है। इसका खयाल रहे कि यह काम हकीमाना अन्दाज़ से किया जाय। ब्योपारी और हकीमाना अन्दाज में थोडा फ़र्क है। ब्योपारी सिर्फ अपनी दवाओ की तारीफ़ करता है, हकीम परिभाषाओ और सूक्तियो को खोलकर अपने लेखों को इल्मी रंग देता है। ब्योपारी की तारीफ़ से लोग चिढ़ते है, हकीम की तारीफ़ भरोसा दिलानेवाली होती है। अगर इस मामले मे कुछ समझने-बूझने की ज़रूरत हो तो रिसाला दरवेश हाजिर है। अगर इस काम मे आपको कुछ दिक़्क़त मालूम होती हो, तो स्वामी श्रद्धानन्द की खिदमत मे जाकर शुद्धि पर आमादगी ज़ाहिर कीजिए। फिर देखिए आपकी कितनी खातिर-तवाजो होती है। इतना समझाये देता हूँ कि शुद्धि के लिए फ़ौरन तैयार न हो जाइयेगा। पहले दिन तो दो-चार हिन्दू धर्म की किताबें माँग लाइएगा। एक हफ़्ते के बाद जाकर कुछ एतराज कीजिएगा। मगर एतराज ऐसे हों जिनका जवाब आसानी से दिया जा सके। इससे स्वामीजी को आपकी छान-बीन और जानने की ख्वाहिश का यकीन हो जायगा। बस आपकी चाँदी है। आप इसके बाद इसलाम की मुख़ालिफत पर दो-एक मज़मून या मज़मूनों का सिलसिला किसी हिन्दू रिसाले मे लिख देगे तो आपकी जिन्दगी और रोटी का मसला हल हो जायगा। इससे भी एक सहल नुस्खा है। तबलीगी मिशन में शरीक हो जाइए, किसी हिन्दू औरत, खासकर नौजवान बेवा, पर डोरे डालिए। आपको यह देखकर हैरत होगी कि वह कितनी आसानी से आपसे मुहब्बत करने लग जाती है। आप उसकी अँधेरी जिन्दगी के लिए एक मशाल साबित होगे। वह उज्र नही करती, शौक से इसलाम कबूल कर लेगी। बस, अब आप शहीदों में दाखिल हो गये। अगर आप जरा एहतियात से काम करते रहें तो आपकी जिन्दगी बड़े चैन से गुज़रेगी। एक ही खेवे में दीनो-दुनिया दोनों ही पार है। जनाब लीडर बन जायेंगे। वल्लाह, एक हफ़्ते मे आपका शुमार नामी-गरामी लोगों में होने लगेगा, दीन के सच्चे पैरो। हज़ारों सीधे-सादे मुसलमान आपको दीन की डूबती हुई किश्ती का मल्लाह समझेंगे। फिर खुदा के सिवा और किसी को खबर न होगी कि आपके हाथ क्या आता है और वह कहाँ जाता है और खुदा कभी राज़ नहीं खोला करता, यह आप जानते ही है। ताज्जुब है, कि इन मौकों पर आपकी निगाह क्यों नही जाती। मैं तो बुड्ढा हो गया और अब कोई नया काम नही सीख सकता, वर्ना इस वक़्त लीडरों का लीडर होता।

इस आग की लपट जैसे मज़ाक ने जिस्म में शोले पैदा कर दिये। आँखों से

चिनगारियाँ निकलने लगी। धीरज हाथ से छूटा जा रहा था। मगर कहरे दरवेश बर जाने दरवेश (भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर) के मुताबिक सर झुकाकर खडा रहा। जितनी दलीले दिमाग मे कई दिनो से चुन-चुनकर रखी थी, सब धरी रह गयी। बहुत सोचने पर भी कोई नया पहलू ध्यान मे न आया। यो खुदा के फ़जल से बेवकूफ या कुन्दजेहन नही हूँ, अच्छा दिमाग पाया है। इतने सोच-विचार से कोई अच्छी-सी गजल हो जाती। पर तबीयत ही तो है, न लडी। इत्तफाक से जेब मे हाथ डाला तो अचानक याद आ गया कि सिफारिशी खतो का एक पोथा भी साथ लाया हूँ। रोब का दिमाग पर क्या असर पडता है इसका आज तजुर्बा हो गया। उम्मीद्द से चेहरा फूल की तरह खिल उठा। खतो का पुलिन्दा हाथ में लेकर बोला -- हुजूर, यह चन्द खत है, इन्हे मुलाहिजा फरमा ले।

बडे बाबू ने बण्डल लेकर मेज़ पर रख दिया और उस पर एक उड़ती हुई नजर डालकर बोले -- आपने अब तक इन मोतियों को क्यो छिपा रक्खा था ?

मेरे दिल मे उम्मीद की खुशी का एक हंगामा बरपा हो गया। जबान जो बन्द थी, खुल गयी। उमग से बोला -- हुजूर की शान-शौकत ने मुझ पर इतना रोब डाल दिया और कुछ ऐसा जादू कर दिया कि मुझे इन खतो की याद न रही। हुजूर से मैं बिना नमक-मिर्च लगाये सच-सच कहता हूँ कि मैने इनके लिए किसी तरह की कोशिश या सिफारिश नही पहुँचायी। किसी तरह की दौड-भाग नही की।

बडे बाबू ने मुस्कराकर कहा -- अगर आप इनके लिए ज्यादा से ज्यादा दौड-भाग करने मे भी अपनी ताक़त खर्च करते तो भी मै आपको इसके लिए बुरा-भला न कहता। आप बेशक बडे खुशनसीब है कि यह नायाब चीज आपको बेमाँगे मिल गयी, इसे जिन्दगी के सफर का पासपोर्ट समझिए। वाह, आपको खुदा के फजल से एक से एक कद्रदान नसीब हुए। आप जहीन है, सीधे-सच्चे है, बेलौस है, फ़र्माबरदार है। ओफ्फ़ोह आपके गुणो की तो कोई इन्तहा ही नहीं है। कसम खुदा की, आपमे तो तमाम भीतरी और बाहरी कमाल भरे हुए है। आपमे सूझ-बूझ, गम्भीरता, सच्चाई, चौकसी, कुलीनता, शराफत, बहादुरी सभी गुण मौजूद है। आप तो नुमाइश मे रखे जाने क़ाबिल मालूम होते है कि दुनिया आपको हैरत की निगाह से देखे और दाँतो तले उँगली दबाये। आज किसी भले का मुँह देखकर उठा था कि आप जैसे पाकीजा आदमी के दर्शन हुए। यह वे गुण है जो जिन्दगी के हर एक मैदान मे आपको शोहरत की चोटी तक पहुँचा सकते है। सरकारी नौकरी आप जैसे गुणियों की शान के काबिल नही। आपको यह कब गवारा होगा। इस दायरे में

आते ही आदमी बिलकुल जानवर बन जाता है। बोलिए, आप इसे मंजूर कर सकते हैं? हरगिज़ नहीं।

मैने डरते-डरते कहा — जनाब, ज़रा इन लफ्ज़ो को खोलकर समझा दीजिए। आदमी के जानवर बन जाने से आपका क्या मशा है?

बडे बाबू ने त्योरी चढाते हुए कहा — यह तो कोई पेचीदा बात न थी जिसका मतलब खोलकर बतलाने की जरूरत हो। तब तो मुझे बात करने के अपने ढग मे कुछ तरमीम करनी पडेगी। इस दायरे के उम्मीदवारों के लिए सबसे ज़रूरी और लाजिमी सिफत, सूझ-बूझ है। मैं नही कह सकता कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह इस लफ्ज से अदा होता है या नही। इसका अग्रेज़ी लफ्ज़ है इनट्इशन—इशारे के असली मतलब को समझना। मसलन अगर सरकार बहादुर यानी हाकिम जिला को शिकायत हो कि आपके इलाके में इनकमटैक्स कम वसूल होता है तो आपका फर्ज है कि उसमे अधाधुन्ध इज़ाफा करे। आमदनी की परवाह न करे। आमदनी का बढाना आपकी सूझ-बूझ पर मुनहसर है। एक हल्की-सी धमकी काम कर जायगी और इनकमटैक्स दुगुना-तिगुना हो जायगा। यकीनन आपको इस तरह अपना जमीर (अन्त करण) बेचना गवारा न होगा।

मैंने समझ लिया कि मेरा इम्तहान हो रहा है, आशिको जैसे जोश और सरगर्मी से बोला — मै तो इसे जमीर बेचना नहीं समझता, यह तो नमक का हक है। मेरा जमीर इतना नाजुक नही है।

बडे बाबू ने मेरी तरफ कद्रदानी की निगाह से देखकर कहा — शाबाश! मुझे तुमसे ऐसे ही जवाब की उम्मीद थी। आप मुझे होनहार मालूम होते है। लेकिन शायद यह दूसरी शर्त आपको मजूर न हो। इस दायरे के मुरीदों के लिए दूसरी शर्त यह है कि वह अपने को भूल जायँ। कुछ आया आपकी समझ मे?

मैंने दबी जबान मे कहा — जनाब को तकलीफ़ तो होगी मगर जरा फिर इसको खोलकर बतला दीजिए।

बडे बाबू ने त्योरियो पर बल देते हुए कहा — जनाब, यह बार-बार का समझाना मुझे बुरा मालूम होता है। मैं इससे ज्यादा आसान तरीक़े पर अपने ख़यालो को ज़ाहिर नही कर सकता। अपने को भूल जाना बहुत ही आम मुहावरा है। अपनी खुदी को मिटा देना, अपनी शख़्सियत को फ़ना कर देना, अपनी पर्सनालिटी को ख़त्म कर देना। आपकी वजा-कता से, आपके बोलने बात करने के ढग से, आपके तौर-तरीकों से आपकी हिन्दियत मिट जानी चाहिए। आपके मजहबी, अख़लाकी और

तमद्दुनी असरो का बिलकुल गायब हो जाना जरूरी है। मुझे आपके चेहरे से मालूम हो रहा है कि इस समझाने पर भी आप मेरा मतलब नही समझ सके। सुनिए, आप गालिबन मुसलमान है। शायद आप अपने अकीदों मे बहुत पक्के भी हों। आप नमाज और रोजे के पाबन्द है ?

मैने फख्र से कहा — मै इन चीजो का उतना ही पाबन्द हूँ जितना कोई मौलवी हो सकता है। मेरी कोई नमाज़ कजा नहीं हुई। सिवाय उन वक्तो के जब मै बीमार था।

बडे बाबू ने मुस्कराकर कहा — यह तो आपके अच्छे अखलाक ही कहे देते हैं। मगर इस दायरे मे आकर आपको अपने अकीदे और अमल मे बहुत कुछ काट-छॉट करनी पड़ेगी। यहाॅ आपका मज़हब मजहबियत का जामा अख्तियार करेगा। आप भूलकर भी अपनी पेशानी को किसी के सामने सिजदे मे न झुकाये, कोई बात नही। आप भूलकर भी जकात के झगड़े मे न फँसे, कोई बात नही। लेकिन आपको अपने मजहब के नाम पर फरियाद करने के लिए हमेशा आगे-आगे रहना और दूसरो को आमादा करना होगा। अगर आपके जिले मे दो डिप्टी कलक्टर हिन्दू है और मुसलमान सिर्फ़ एक, तो आपका फ़र्ज होगा कि हिज़ एक्सेलेंसी गवर्नर की खिदमत मे एक डेपुटेशन भेजने के लिए क़ौम के रईसों को आमादा करे। अगर आपको मालूम हो कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने क़साइयों को शहर से बाहर दुकान रखने की तजवीज़ पास कर दी है तो आपका फर्ज होगा कि क़ौम के चौधरियों को उस म्युनिसिपैलिटी का सिर तोड़ने के लिए तहरीक करे। आपको सोते-जागते, उठते-बैठते जाति-प्रेम का राग अलापना चाहिए। मसलन इम्तहान के नतीजो में अगर आपको मुसलमान विद्यार्थियों की सख्या मुनासिब से कम नजर आये तो आपको फ़ौरन चांसलर के पास एक गुमनाम खत लिख भेजना होगा कि इस मामले मे जरूर ही सख्ती से काम लिया गया है। यह सारी बाते उसी इनटुइशन-वाली शर्त के भीतर आ जाती है। आपको साफ़-साफ शब्दो मे या इशारों से यह काम करने के लिए हिदायत न की जायगी। सब कुछ आपकी सूझ-बूझ पर मुनहसर होगा। आपमें यह जौहर होगा तो आप एक दिन ज़रूर ऊँचे ओहदे पर पहुँचेंगे। आपको जहाँ तक मुमकिन हो, अंग्रेज़ी में लिखना और बोलना पड़ेगा। इसके बगैर हुक्काम आपसे खुश न होंगे। लेकिन क़ौमी ज़बान की हिमायत और प्रचार की सदा आपकी ज़बान से बराबर निकलती रहनी चाहिए। आप शौक से अखबारों का चन्दा हज़म करे, मँगनी की किताबे पढ़े, चाहे वापसी के वक्त किताब के फट-चिँथ जाने

के कारण आपको माफ़ी ही क्यों न माँगनी पड़े, लेकिन ज़बान की हिमायत बराबर ज़ोरदार तरीक़े से करते रहिए। खुलासा यह कि आपको जिसका खाना उसी का गाना होगा। आपको बातों से, काम से और दिल से अपने मालिक की भलाई मे और मजबूती से उसको जमाये रखने में लगे रहना पड़ेगा। अगर आप यह खयाल करते हों कि मालिक की ख़िदमत के ज़रिये कौम की ख़िदमत भी करूँगा तो यह झूठ बात है, पागलपन है, हिमाकत है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे। फ़रमाइए, आप इस हद तक अपने को भूल सकते है?

मुझे जवाब देने मे जरा देर हुई। सच यह है कि मैं भी आदमी हूँ और बीसवी सदी का आदमी हूँ। मैं बहुत जागा हुआ न सही, मगर बिलकुल सोया हुआ भी नहीं हूँ। मै भी अपने मुल्क और कौम को बलन्दी पर देखना चाहता हूँ। मैंने तारीख पढ़ी है और उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मज़हब दुनिया में सिर्फ़ एक है और उसका नाम है, दर्द। मज़हब की मौजूदा सूरत धड़ेबंदी के सिवाय और कोई हैसियत नही रखती। ख़तने या चोटी से कोई बदल नहीं जाता। पूजा के लिए कलीसा, मसजिद, मन्दिर की मैं बिलकुल ज़रूरत नहीं समझता। हाँ, यह मानता हूँ कि घमण्ड और खुदगरज़ी को दबाये रखने के लिए कुछ करना ज़रूरी है। इसलिए नहीं कि उससे मुझे जन्नत मिलेगी या मेरी मुक्ति होगी, बल्कि सिर्फ़ इसलिए कि मुझे दूसरों के हक़ छीनने से नफरत होगी। मुझमें खुदी का ख़ासा जुज़ मौजूद है। यों अपनी खुशी से कहिए तो आपकी जूतियाँ सीधी करूँ लेकिन हुकूमत की बरदाश्त नही। महकूम बनना शर्मनाक समझता हूँ। किसी ग़रीब को ज़ुल्म का शिकार होते देखकर मेरे खून में गर्मी पैदा हो जाती है। किसी से दबकर रहने से मर जाना बेहतर समझता हूँ। लेकिन खयाल हालतों पर तो फ़तह नहीं पा सकता। रोज़ी की फ़िक्र तो सबसे बड़ी है। इतने दिनों के बाद बड़े बाबू की निगाहे करम को अपनी ओर मुड़ते देखकर मै इसके सिवा कि अपना सिर झुका दूँ, दूसरा कर ही क्या सकता था। बोला — जनाब, मेरी तरफ़ से भरोसा रक्खे। मालिक की ख़िदमत में अपनी तरफ से कुछ उठा न रक्खूँगा।

'ग़ैरत को फ़ना कर देना होगा?'

'मजूर।'

'शराफ़त के जज़्बों को उठाकर ताक़ पर रख देना होगा?'

'मजूर।'

'मुख़बिरी करनी पड़ेगी?'

'मजूर।'

'तो बिस्मिल्लाह, कल से आपका नाम उम्मीदवारो की फेहरिस्त मे लिख दिया जायगा।'

मैने सोचा था कल से कोई जगह मिल जायगी। इतनी जिल्लत कबूल करने के बाद रोजी की फिक्र से तो आजाद हो जाऊँगा। अब यह हकीकत खुली। बरबस मुँह से निकला — और जगह कब तक मिलेगी?

बड़े बाबू हँसे, वही दिल दुखानेवाली हँसी जिसमे तौहीन का पहलू खास था — जनाब, मै कोई ज्योतिषी नही, कोई फकीर-दरवेश नही, बेहतर है इस सवाल का जवाब आप किसी औलिया से पूछे। दस्तरखान बिछा देना मेरा काम है। खाना आयेगा और वह आपके हलक मे जायगा, यह पेशीनगोई मैं नही कर सकता।

मैंने मायूसी के साथ कहा — मै तो इससे बडी इनायत का मुन्तजिर था।

बडे बाबू कुर्सी से उठकर बोले — कसम खुदा की, आप परले दर्जे के कूडमग्ज़ आदमी है। आपके दिमाग मे भुस भरा है। दस्तरखान का सामने आ जाना आप कोई छोटी बात समझते है? इन्तजार का मज़ा आपकी निगाह मे कोई चीज ही नही? हालॉकि इन्तज़ार मे इन्सान उमरे गुज़ार सकता है। आप रोज़ाना कचहरी मे आयेंगे, गरज़मन्दो से आपका साबका होगा। अमलो से आपका परिचय हो जायगा। मामले बिठाने, सौदे पटाने के सुनहरे मौके हाथ आयेंगे। हुक्काम के लड़के पढ़ाइए। अगर गडे-ताबीज का फ़न सीख लीजिए तो आपके हक मे बहुत मुफीद हो। कुछ हकीमी भी सीख लीजिए। अच्छे होशियार सुनारो से दोस्ती पैदा कीजिए, क्योंकि आपको उनसे अक्सर काम पड़ेगा। हुक्काम की औरते आप ही के मार्फ़त अपनी जरूरतें पूरी करायेगी। मगर इन सब लटको से ज्यादा कारगर एक और लटका है। अगर वह हुनर आप मे है, तो यकीनन आपके इन्तजार की मुद्दत बहुत कुछ कम हो सकती है। आप बडे-बड़े हाकिमो के लिए तफ़रीह का सामान जुटा सकते है?

बडे बाबू मेरी तरफ़ कनखियो से देखकर मुस्कराये। तफरीह के सामान से उनका क्या मतलब है, यह मै न समझ सका। मगर पूछते हुए भी डर लगता था कि कहीं बड़े बाबू बिगड़ न जायें और फिर मामला खराब हो जाय। एक बेचैनी की-सी हालत मे जमीन की तरफ ताकने लगा।

बड़े बाबू ताड़ तो गये कि इसकी समझ मे मेरी बात न आयी लेकिन अब की

उनकी त्योरियो पर बल नही पड़े। नहीं, उनके लहजे में हमदर्दी की झलक थी। फ़रमाया — यह तो गैर-मुमकिन है कि आपने बाज़ार की सैर न की हो।

मैने शर्माते हुए कहा — नही हुज़ूर, बन्दा इस कूचे को बिलकुल नही जानता।

बडे बाबू — तो आपको इस कूचे की ख़ाक छाननी पडेगी। हाकिम भी आँख-कान रखते है। दिन भर की दिमागी थकन के बाद स्वभावत. रात को उनकी तबीयत तफरीह की तरफ झुकती है। अगर आप उनके लिए आँखो को अच्छा लगनेवाले रूप और कानों को भानेवाले सगीत का इन्तजाम सस्ते दामो कर सकते है या कर सके तो .

मैने किसी कदर तेज होकर कहा — आपका कहने का मतलब यह है कि मुझे रूप की मडी की दलाली करनी पडेगी ?

बडे बाबू — तो आप तेज क्यो होते है, अगर अब तक इतनी मोटी-सी बात आप नही समझे तो यह मेरा कसूर है या आपकी अक्ल का !

मेरे जिस्म मे आग लग गयी। जी मे आया कि बडे बाबू को जुजुत्सू के दो-चार हाथ दिखाऊँ, मगर घर की बेपरोसामानी का ख़याल आ गया। बीवी की इन्तजार करती हुई आँखे और बच्चों की भूखी सूरते याद आ गयी। ज़िल्लत का एक दरिया हलक से नीचे ढकेलते हुए बोला — जी नही, मैं तेज़ नही हुआ था। ऐसी बेअदबी मुझसे नही हो सकती। (आँखों मे आँसू भरकर) जरूरत ने मेरी ग़ैरत को मिटा दिया है। आप मेरा नाम उम्मीदवारो मे दर्ज कर दे। हालात मुझसे जो कुछ करायेंगे वह सब करूँगा और मरते दम तक आपका एहसानमन्द रहूँगा।

— 'खाके परवाना' से

# राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा — देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचो के साथ भाईचारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई है, कोई नीचा नही, कोई ऊँचा नही।

दुनिया ने जयजयकार की — कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय !

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर मे डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा — यह फरिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मदिर मे ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा — हमारा देवता गरीबी मे है, जिल्लत में है, पस्ती मे है।

दुनिया ने कहा — कैसे शुद्ध अन्त:करण का आदमी है ! कैसा ज्ञानी !

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली — श्रद्धेय पिता जी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा — मोहन कौन है ?

इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर मे कहा — मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर में ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आँखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

— 'प्रेम चालीसी' से

# आखिरी तोहफ़ा

सारे शहर मे सिर्फ एक ऐसी दूकान थी, जहाँ विलायती रेशमी साडी मिल सकती थी। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर काँग्रेस की मुहर लगवायी थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फरमाइश थी, उसको पूरा करना ज़रूरी था। वह कई दिन तक शहर की दूकानों का चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कही सफल-मनोरथ न हुए और उसके तकाजे बराबर बढते जाते थे। होली आ रही थी। आखिर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आखिर जब कही मकसद पूरा न हुआ, तो उन्होने उसी ख़ास दुकान पर जाने का इरादा किया। उन्हे यह मालूम था कि उस दुकान पर धरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयसेवक तैनात रहते है और तमाशाइयो की भी हरदम खासी भीड रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक साहस की जरूरत थी और यह साहस अमरनाथ में ज़रूरत से कम था। पढ़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओ से भी अपरिचित न थे, यथाशक्ति स्वदेशी चीजे ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले मे बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाय तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही—इस उसूल के माननेवाले थे। और खासकर जब उसकी फ़रमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी ज़रूरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फ़रमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहाँ! तय कर लिया कि आज साडी ज़रूर लायेंगे। कोई क्यों रोके? किसी को रोकने का क्या अधिकार है? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को ज़बर्दस्ती करने का क्या हक? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमे व्यक्ति की आज़ादी का इतनी बेदर्दी से खून हो!

यों दिल को मज़बूत करके वह शाम को दुकान पर पहुँचे। देखा तो पांच वालण्टियर पिकेटिंग कर रहे है और दुकान के सामने सड़क पर हजारों तमाशाई

खड़े है। सोचने लगे, दुकान में कैसे जायँ। कई बार कलेजा मज़बूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

सयोग से एक जान-पहचान के पण्डितजी मिल गये। उनसे पूछा — क्यों भाई, यह धरना कब तक रहेगा? शाम तो हो गयी।

पण्डितजी ने कहा — इन सिरफिरो को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बन्द न हो जायगी, यहाँ से न टलेगे। कहिए, कुछ ख़रीदने का इरादा है? आप तो रेशमी कपड़ा नही ख़रीदते?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा — मै तो नही खरीदता। मगर औरतो की फरमाइश को कैसे टालूँ।

पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा — वाह, इससे ज़्यादा आसान तो कोई बात नही। औरतों को भी चकमा नही दे सकते? सौ हीले और हजार बहाने है।

अमरनाथ — आप ही कोई हीला सोचिए।

पण्डितजी — सोचना क्या है, यहाँ रात-दिन यही किया करते है। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों मे पडे रहते है। औरत ने कहा हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज के बाद कहा, सुनार माल लेकर चम्पत हो गया। यह तो रोज का धन्धा है भाई। औरतो का काम फरमाइश करना है और मर्दो का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ — आप तो इस कला के पण्डित मालूम होते है!

पण्डितजी — क्या करे भाई, आबरू तो बचानी ही पडती है। सूखा जवाब दे तो शर्मिन्दगी अलग हो, बिगडे वह अलग से, समझे, हमारी परवाह ही नही करते। आबरू का मामला है। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटिग है?

अमरनाथ — हाँ, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नही, कहती है क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गये। मुझसे चले हो उड़ने!

पण्डितजी — तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊँ। एक ख़ाली कार्ड का बकस ले लो, उसमे पुराने कपडे जलाकर भर लो। जाकर कह देना, मै कपड़े लिये आता था, वाल्ण्टियरों ने छीनकर जला दिये। क्यों, कैसी रहेगी?

अमरनाथ — कुछ जँचती नही। अजी, बीस एतराज करेगी, कही पर्दा फ़ाश हो जाय तो मुफ़्त को शर्मिन्दगी उठानी पड़े।

पण्डितजी — तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी है और है भी आप कुछ ऐसे ही। यहाँ तो कुछ इस शान से हीले करते है कि सच्चाई भी उसके आगे धूल हो जाय। जिन्दगी भर यही बहाने करते गुजरी और कभी पकड़े न गये। एक तरकीब और है। इसी नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ — देशी और विलायती की पहचान उन्हे मुझसे और आपसे कही ज्यादा है। विलायती पर तो जल्द विलायती का यक़ीन आयेगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है!

एक खद्दरपोश महाशय पास ही खडे यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे — ए साहब, सीधी-सी तो बात है, जाकर साफ कह दीजिए कि मै विदेशी कपड़े न लाऊँगा। अगर जिद करे तो दिन भर खाना न खाइये, आप सीधे रास्ते पर आ जायेंगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहो से देखा जो कह रही थीं आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले — यह आप ही कर सकते है, मै नही कर सकता।

खद्दरपोश — कर तो आप भी सकते है लेकिन करना नहीं चाहते। यहाँ तो उन लोगों मे से है कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दे।

अमरनाथ — तो शायद आप घर मे पिकेटिंग करते होगे?

खद्दरपोश — पहले घर मे करके तब बाहर करते है भाई साहब।

खद्दरपोश साहब चले गये तो पण्डितजी बोले — यह महाशय तो तीसमारखाँ से भी तेज निकले। अच्छा तो आप एक काम कीजिए। इस दुकान के पिछवाड़े एक दूसरा दरवाज़ा है, ज़रा अँधेरा हो जाय तो उधर से चले जाइएगा, दाये-बाये किसी तरफ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पण्डितजी को धन्यवाद दिया और जब अँधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की तरफ जा पहुँचे। डर रहे थे, कहीं यहाँ भी घेरा न पडा हो। लेकिन मैदान ख़ाली था। लपककर अन्दर गये, एक ऊँचे दामो की साडी ख़रीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साडी पहने खड़ी थी। उनको देखकर इनकी रूह फना हो गयी, दरवाजे से बाहर पाँव रखने की हिम्मत नही हुई। एक मिनट तक तो किवाड़ की आड़ मे छिपे खडे रहे फिर देवीजी का मुँह दूसरी तरफ़ देखकर तेजी से निकल पडे और कोई सौ क़दम भागते हुए चले गये। कर्म का लिखा, सामने से एक बुढिया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़

गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने — अरे अभागे, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आँखों में चर्बी छा गयी है, धक्के देता चलता है!

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे — भाई माफ़ करो, मुझे रात को कुछ कम सुझाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिजाज ठण्डा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आयी, 'बाबू साहब जरा ठहरिएगा' और वही केसरिया कपड़ोंवाली देवीजी आती हुई दिखायी दीं।

अमरनाथ के पाँव बँध गये। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गये जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेत के सामने खडा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा — आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊँगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुख होता है। देश की क्या हालत है, लोगो को खद्दर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियाँ खरीद रहे हैं!

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं सच कहता हूँ देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फ़रमाइश थी।

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी निकालकर उनकी तरफ बढाते हुए कहा — ऐसे हीले रोज़ ही सुना करती हूँ। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ में आपको चूड़ी पहना दूँ।

अमरनाथ — शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पहनूँगा। चूडी उस बलिदान का एक चिह्न है जो देवियों के जीवन की विशेषता है। चूड़ियाँ उन देवियों के हाथ मे भी थीं जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते है। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की नहीं। अगर स्त्री, जो क़ौम को पैदा करती है, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दो के लिए चूड़ी पहनना क्यो शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य तो हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोडनेवाली न थी। बोली — आप बातों के शेर मालूम होते है। अगर आप हृदय से स्त्री को पूजा की वस्तु मानते है, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ — इसलिए कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फ़रमाइश है।

देवी — अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूँगी, ज़रा देखूँ आपकी देवीजी किस स्वभाव की स्त्री है।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिन-ब्याहा था, इसलिए नही कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह एक आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे, शादी से अलग रहकर भी शादी के मजों से अपरिचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की ज़रूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सके, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिन्दगी को तरो-ताज़ा कर सके, जिसके प्रेम की छाया में वह जरा देर के लिए ठण्डक पा सकें, जिसके दिल मे वह अपनी उमडी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सके। उनकी नज़र ने मालती को चुना था जिसकी शहर मे धूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोडी देर के लिए उलझन में डाल दिया। ऐसी शर्मिन्दगी उन्हें ज़िन्दगी में कभी न हुई थी। बोले — आज तो वह एक न्योते मे गयी है, घर मे न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हँसकर कहा — तो मैं समझ गयी यह आपकी देवीजी का कुसूर नहीं, आपका कसूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा — मैं आपसे सच कहता हूँ आज वह घर पर नही।

देवी ने पूछा — कल आ जायेगी?

अमरनाथ बोले — हाँ, कल आ जायेगी।

देवी — तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यही आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूँगी। मेरे साथ दो-चार बहने भी होंगी।

अमरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले— बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊँगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की ज़मानत जरूरी है?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा — सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा — अच्छी बात है, आप इसे ले जायँ।

देवी ने क्षण भर बाद कहा — शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाय। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए जरूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिये, देवीजी 'लेते जाइए लेते जाइए' करती रह गयी।

२

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्दर की दुकान पर गये और दो सूटों का खद्दर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले — खलीफ़ा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुँहमाँगी सिलाई दूँगा।

दर्जी ने कहा — बाबू साहब, आजकल तो होली की भीड है। होली से पहले तैयार न हो सकेंगे।

अमरनाथ ने आग्रह करते हुए कहा — मैं मुँहमाँगी सिलाई दूँगा, मगर कल दोपहर तक मिल जायँ। मुझे कल एक जगह जाना है। अगर दोपहर तक न मिले तो फिर मेरे किसी काम के न होंगे।

दर्जी ने आधी सिलाई पेशगी ले ली और कल तैयार कर देने का वादा किया।

अमरनाथ यहाँ से आश्वस्त होकर मालती की तरफ चले। क़दम आगे बढते थे लेकिन दिल पीछे रहा जाता था। काश वह उनकी इतनी विनती स्वीकार कर ले कि कल दो घण्टे के लिए उनके वीरान घर को रौशन करे! लेकिन यकीनन वह उन्हें खाली हाथ देखकर मुँह फेर लेगी, सीधे मुँह बात नही करेगी, आने का ज़िक्र ही क्या। एक ही बेमुरौवत है। तो कल आकर देवीजी से अपनी सारी शर्मनाक कहानी बयान कर दूँ? उस भोले चेहरे की निस्स्वार्थ उमग उनके दिल में एक हलचल पैदा कर रही थी। उन आँखों में कितनी गम्भीरता थी, कितनी सच्ची सहानुभूति, कितनी पवित्रता! उसके सीधे-सादे शब्दों मे कर्म की ऐसी प्रेरणा थी, कि अमरनाथ को अपने इन्द्रिय-परायण जीवन पर शर्म आ रही थी। अब तक काँच के एक टुकडे को हीरा समझकर सीने से लगाये हुए थे। आज उन्हें मालूम हुआ हीरा किसे कहते है। उसके सामने वह टुकडा तुच्छ मालूम हो रहा था। मालती की वह जादूभरी चितवन, उसकी वह मीठी अदाएँ, उसकी शोखियाँ और नखरे सब जैसे मुलम्मा उड़ जाने के बाद अपनी असली सूरत में नजर आ रहे थे और अमरनाथ के दिल में नफरत पैदा कर रहे थे। वह मालती की तरफ़ जा रहे थे, उसके दर्शन के लिए नही, बल्कि उसके हाथों से अपना दिल छीन लेने के लिए। प्रेम का भिखारी आज अपने भीतर एक विचित्र अनिच्छा का अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब तक वह क्यों इतना बेखबर था। वह

तिलिस्म जो मालती ने वर्षों के नाज-नखरे, हाव-भाव से बाँधा था, आज किसी छू-मन्तर से तार-तार हो गया था।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर त्योरियाँ चढाते हुए कहा — साड़ी लाये या नही ?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढग से जवाब दिया —नही।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ़ देखा — नही ! वह उनके मुँह से यह शब्द सुनने की आदी न थी। यहाँ उसने पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि के समान था। बोली — क्यों ?

अमरनाथ — क्यों क्या, नही लाये।

मालती — बाजार में मिली न होगी। तुम्हे क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए !

अमरनाथ — नही साहब, मिली मगर लाया नही।

मालती — आखिर कोई वजह ? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ — तुम खामखाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाज़िर रहा।

मालती — तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी प्यारे हों ?

अमरनाथ — तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं ? अगर मेरी सूरत से नफ़रत हो तो चला जाऊँ !

मालती — तुम्हे आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज़ मिज़ाज के न थे ?

अमरनाथ — तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती — तो आख़िर मेरी चीज क्यो नही लाये ?

अमरनाथ ने उसकी तरफ़ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा—दुकान पर गया, जिल्लत उठायी और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन ली। मैने कहा, मेरी बीबी की फ़रमाइश है तो बोली — मै उन्हीं को दूँगी, कल तुम्हारे घर आऊँगी।

मालती ने शरारतभरी नजरों से देखते हुए कहा — तो यह कहिए आप दिल हथेली पर लिये फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके क़दमों पर चढ़ा दिया !

अमरनाथ — वह उन औरतों मे नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती — तो कोई देवी होगी ?

अमरनाथ — मैं उसे देवी ही समझता हूँ।

मालती — तो आप इस देवी की पूजा कीजिएगा ?

अमरनाथ — मुझ जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मन्दिर के दरवाज़े बन्द है।

मालती — बहुत सुन्दर होगी।

अमरनाथ — न सुन्दर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएँ कुछ, न मधुरभाषिणी, न तन्वंगी। बिलकुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता था। मेरी ग़ैरत ने तो गवारा न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूँ। तुम्ही इन्साफ करो, वह दिल मे क्या कहती?

मालती — तो तुम्हें इसकी ज्यादा परवाह है कि वह अपने दिल मे क्या कहेगी। मैं क्या कहूँगी, इसकी जरा भी परवाह न थी! मेरे हाथ से कोई मर्द मेरी कोई चीज छीन ले तो देखूँ, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ — अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी, चाहे शराफ़त, मै उसके हाथ से न छीन सका।

मालती — तो कल वह साड़ी लेकर आयेगी, क्यों?

अमरनाथ — जरूर आयेगी।

मालती — तो जाकर मुँह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आये, अब कल वह आपको देने आयेगी! कुछ भंग तो नहीं खा गये!

अमरनाथ — ख़ैर, इसका इम्तहान कल हो ही जायगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को ज़रा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती — जिससे आप कहें कि यह मेरी बीवी है!

अमरनाथ — मुझे क्या ख़बर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जायगी, नहीं तो कोई और बहाना कर देता।

मालती — तो आपकी साडी आपको मुबारक हो, मै नही जाती।

अमरनाथ — मैं तो रोज़ तुम्हारे घर आता हूँ, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?

मालती ने निष्ठुरता से कहा — अगर मौक़ा आ जाय तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसन्द करोगे? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गये, बात बनाते हुए बोले — मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एक-दूसरे की हालत

को समझते थे और इस पर्दे को हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्दा हमारे सबंधों की अनिवार्य शर्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो गया। हम दोनों उसकी गहराई मे जाते हुए डरते थे। नही, बल्कि मै डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थी। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मै वह सब कुछ पा जाऊँगा जिसका मै अपने को अधिकारी समझता हूँ तो मै अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता। लेकिन तुमने कभी मेरे दिल मे यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे मे भी तुम्हे यह शक है। मै नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैने कोई मौका नही दिया और मैं कह सकता हूँ कि मै उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूँ जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ एतबार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज़्यादा वजनी और ज़्यादा भौतिक चीजों की। मेरी स्थायी आमदनी पॉच सौ से ज़्यादा नही, तुमको इतने से सतोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ इस इत्मीनान की ज़रूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ मेरी हो। बोलो मजूर है?

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों मे जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इनकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफ़ा के पैर डगमगायेगे नही। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि वह उसे रस्सी से मज़बूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकडे जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिन्दगी मुहब्बत की बाजीगरी मे, प्रेम के प्रदर्शन मे गुज़री थी। वह कभी इस, कभी उस शाख पर चहकती फिरती थी, बेकैद, आजाद, बेबन्द। क्या वह चिड़िया पिंजरे में खुश रह सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मज़ों की आदी हो गयी हो? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली —आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो?

अमरनाथ —मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती —अच्छा मै कल चलूँगी, मगर एक घण्टे से ज़्यादा वहाँ न रहूँगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिये से भर उठा। बोला —मै तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ मालती। अब मेरी आबरू बच जायगी। नही तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती —उसकी तरफ़ से तुम इत्मीनान रखो। ब्याह नही किया मगर

बराते देखी है। मगर मै डरती हूँ कही तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार!

अमरनाथ ने निश्छल भाव से कहा — नही मालती, तुम्हारा सन्देह निराधार है। अगर यह जजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ जैसे वासना के बदों का वहाँ गुजर ही कहाँ।

३

दूसरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्ज़ी की दुकान पर जा पहुँचे और सिर पर सवार होकर कपड़े तैयार कराये। फिर घर आकर नये कपडे पहने और मालती को बुलाने चले। वहाँ देर हो गयी। उसने ऐसा बनाव-सिंगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जीतना है।

अमरनाथ ने कहा — वह ऐसी सुन्दरी नही है जो तुम इतनी तैयारियाँ कर रही हो।

मालती ने बालों मे कंघी करते हुए कहा — तुम इन बातो को नही समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ — लेकिन देर जो हो रही है।

मालती — कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सतर्क कर दिया था। अब तक उसने कभी अमरनाथ की ओर विशेषरूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफ़ी उदासीनता का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला करना चाहती थी । शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों के लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते देखकर वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह उसकी चीज़े एक-एक करके निकल गयी तो फिर वह अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाये रख सकेगी? जिस चीज़ पर उसका कब्जा है, उसकी तरफ़ कोई आँख ही क्यो उठाये? राजा भी तो एक-एक अगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी, उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी।

शाम को वह परी-जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली। अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग

देने में ख़र्च किया था। ऐसी तैयारियाँ कर रखी थी कि जैसे कोई अफसर मुआइना करनेवाला हो। मालती ने घर मे पैर रखा तो उसकी सफाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से मे कई कुर्सियाँ रखी थी। बोली — अब लाओ अपनी देवीजी को। मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊँगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती कपडे की दुकान पर गये। आज भी धरना था। तमाशाइयो की वही भीड। वहाँ देवीजी न थी। पीछे की तरफ गये तो देवीजी एक लड़की के साथ उसी भेस में खडी थी।

अमरनाथ ने कहा — माफ कीजिएगा, मुझे देर हो गयी। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूँ।

देवीजी ने कहा — मैं तो आपका इन्तजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आये। कितनी दूर है?

अमरनाथ — बहुत पास है। एक ताँगा कर लूँगा।

पन्द्रह मिनट मे अमरनाथ दोनों को लिये घर जा पहुँचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फकीर की कुटिया थी, छोटी-सी, तुच्छ। रईस के महल में आडम्बर और प्रदर्शन था, फ़कीर की कुटिया मे सादगी और सफाई। मालती ने देखा, भोली लडकी है जिसे किसी तरह सुन्दर नही कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी मे जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-सँवरी, बेधड़क और घमण्डी औरत है जो किसी न किसी वजह से उस घर मे अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जगली जानवर पिँजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाये मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा रह जाये।

देवी ने आते ही कहा — बहन, आप अब भी सिर से पाँव तक विदेशी कपड़े पहने हुई है?

मालती ने अमरनाथ की तरफ देखकर कहा — मै विदेशी और देशी के फेर में नही पड़ती। जो यह लाकर देते है वह पहनती हूँ। लानेवाले है ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूँ।

देवी ने शिकायतभरी आँखों से अमरनाथ की तरफ देखकर कहा — आप तो कहते थे यह इनकी फ़रमाइश है, मगर आप ही का क़सूर निकल आया।

मालती — मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाज़ार में भी दूसरे मर्दों से बाते कर सकती हो, जब वह बाहर चले जायँ तो जितना जी चाहे कह-सुन लेना। मैं अपने कानों से नही सुनना चाहती।

देवीजी — मैं कुछ कहती नहीं और बहनजी, मै कह ही क्या सकती हूँ कोई ज़बर्दस्ती तो है नही, बस विनती कर सकती हूँ।

मालती — इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का ज़रा भी ख़याल नही, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढे-लिखे आदमी है, दस आदमी इज़्ज़त करते है, अपना नफ़ा-नुकसान समझ सकते है। तुम्हारी क्या हिम्मत कि इन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज़्यादा अक़्लमन्द तुम्हीं हो ?

देवीजी — आप मेरा मतलब गलत समझ रही है बहन।

मालती—हाॅ गलत तो समझूँगी ही, इतनी अक़्ल कहाॅ से लाऊँ कि आपकी बातो का मतलब समझूं ! खद्दर की साड़ी पहन ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अख़्तियार है जहाॅ चाहे आये-जाये, जिससे चाहे हॅसे-बोले, घर मे कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर ! मै इसे हुड़दगापन समझती हूँ, जो शरीफ़ों की बहू-बेटियों को शोभा नही देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूँढ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था। लेकिन आँखे डबडबा रही थी।

अमरनाथ ने मालती से ज़रा तेज़ स्वर में कहा—क्यों ख़ामख़ाह किसी का दिल दुखाती हो ? यह देवियाँ अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही है, क्या तुम्हे इसकी बिलकुल ख़बर नही ?

मालती — रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। ज़माने का रग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूँगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दो ने औरतों को घर मे इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आयी है और कुछ दिनो मे तुम लोगों की हुकूमत का ख़ातमा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखाने के लिए है, असल में यह आज़ादी की ख़्वाहिश है जो तुम्हे हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियाँ कर सकते हो तो औरत क्यों न करे ! सच्ची बात यह है, अगर आॅखे है तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी न चाहिए। यहाॅ तो लाज ढोते है और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूँ।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ़ फ़रियाद की आँखों से देखकर कहा — बहन ने

औरतों को जलील करने की क़सम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आयी थी, मगर शायद यहाँ से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा — नहीं, बिलकुल नाकाम तो आप नहीं जायेंगी, हाँ जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा — वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते!

अमरनाथ ने शर्मिन्दा होते हुए कहा — अच्छी बात है, न दूँगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ करेंगी।

देवीजी चली गयीं तो अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर कहा — यह तुमने आज मेरे मुँह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज़ और बदज़बान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा — तो अपनी साडी उसे दे देती? मैं ऐसी कच्ची गोलियाँ नही खेली। अब तो बदतमीज भी हूँ, बदज़बान भी, उस दिन इन बुराइयो मे से एक भी न थी जब मेरी जूतियाँ सीधी करते थे! इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था ज़बान चलाकर और रूप की ताकत से वह उस लड़की को उखाड़ फेकेंगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से काबू मे आनेवाला नहीं तो उसने फटकार बतायी। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। इससे ज़्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाज़े तक आये। जब वह ताँगे पर बैठी तो विनती करते हुए बोले — यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे कहीं अच्छी साड़ी ला दूँगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा—यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती!

अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर जवाब दिया—अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो कि यह मेरा आखिरी तोहफ़ा है।

मालती ने होंठ चबाकर कहा—इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बगैर मैं मर न जाऊँगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूँ!

— 'आख़िरी तोहफा' से

# क़ातिल

जाडो की रात थी। दस बजे ही सडकें बन्द हो गयी थी और गलियों मे सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा माँ ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा — तुम इतनी रात तक कहाँ रहते हो बेटा ? रखे-रखे खाना ठडा हो जाता है। चारो तरफ़ सोता पड़ गया। आग भी तो इतनी नही रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूँ।

धर्मवीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर नवयुवक था। थाली खीचता हुआ बोला — अभी तो दस भी नही बजे अम्माँ। यहाँ के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जायें तो कोई क्या करे। योरोप मे लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते है। जिन्दगी के मज़े उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नही।

माँ ने पूछा — तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा — नही, वह छः बजे ही उठ बैठते है। हम लोग बहुत सोने के आदी है। दस से छः बजे तक, आठ घण्टे होते है। चौबीस घटों मे आठ घटे आदमी सोये तो काम क्या करेगा ? यह बिलकुल गलत है कि आदमी को आठ घण्टे सोना चाहिए। इन्सान जितना कम सोये, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों मे दाखिल कर लिया है कि उसके मेम्बरो को तीन घण्टे से ज़्यादा न सोना चाहिए।

माँ इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तग आ गयी थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो। न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को संन्यासी बनाकर छोड़ेगी ? इतना त्याग तो सन्यासी ही कर सकता है। त्यागी सन्यासी भी तो नही मिलते। उनमें भी ज़्यादातर इन्द्रियो के गुलाम, नाम के त्यागी है। आज सोने की कैद भी लगा दी। अभी तीन महीने का घूमना ख़त्म हुआ। जाने कहाँ-कहाँ मारे-मारे फिरते है। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही उड़ा दे। आपत्ति के स्वर में बोली — तभी तो यह सूरत निकल आयी है कि चाहो तो एक-एक हड्डी

गिन लो। आखिर सभावाले कोई काम भी करते है या सिर्फ आदमियो पर कैदें ही लगाया करते है?

धर्मवीर बोला—जो काम तुम करती हो वही हम करते है। तुम्हारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढी विधवा आजादी की लडाई मे दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध मे सज़ा पायी थी। जेल मे उसका स्वास्थ्य बिगड गया और जेल ही मे उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बडी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा मे लगी हुई थी। शुरू मे उसका नौजवान बेटा भी स्वयसेवको मे शामिल हो गया था। मगर इधर पाँच महीनो से वह इस नयी सभा मे शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं मे समझा जाता था।

माँ ने सदेह के स्वर मे पूछा—तो तुम्हारी सभा का भी कोई दफ़्तर है?

'हाँ है।'

'उसमें कितने मेम्बर है?'

'अभी तो सिर्फ पचीस मेम्बर है? लेकिन वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते है, वह तुम्हारे पचीस हजार भी नही कर सकते। देखो अम्माँ, किसी से कहना मत वर्ना सबसे पहले मेरी जान पर आफत आयेगी। मुझे उम्मीद नही कि पिकेटिग और जुलूसो से हमे आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमजोरी और बेबसी का साफ़ एलान है। झडियाँ निकालकर और गीत गाकर कौमे नही आजाद हुआ करती। यहाँ के लोग अपनी अकल से काम नही लेते। एक आदमी ने कहा—यो स्वराज्य मिल जायगा। बस आँखे बन्द करके उसके पीछे हो लिये। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल मे इस खयाल से खुश हो ले कि हम आज़ादी के करीब आते-जाते है। मगर मुझे तो काम करने का यह ढग बिलकुल बच्चो का खेल-सा मालूम होता है। लड़को के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयाँ मिला करती है। वही इन लोगो को मिल जायगा। असली चीज तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होगे।'

माँ ने कहा—उसकी कीमत क्या हम नही दे रहे है? हमारे लाखों आदमी जेल नहीं गये? हमने डडे नही खाये? हमने अपनी जायदादे नही ज़ब्त करायीं?

धर्मवीर—इससे अंग्रेजो का क्या नुकसान हुआ? वे हिन्दुस्तान उसी वक़्त छोडेंगे, जब उन्हें यक़ीन हो जायगा कि अब वे एक पल भर भी नहीं रह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिये जायँ तो आज ही स्वराज्य मिल जाय। रूस इसी तरह आज़ाद हुआ, आयरलैण्ड भी इसी तरह आजाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आजाद होगा, और कोई तरीका नही। हमें उनका ख़ातमा कर देना है। एक गोरे अफ़सर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जुलूसों से मुमकिन नही।

मॉं सर से पॉव तक कॉंप उठी। उसे विधवा हुए दस साल हो गये थे। यही लड़का उसकी जिन्दगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए, मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस ख़याल से खुश थी कि यह चार पैसे कमायेगा, घर में बहू आयेगी, एक टुकडा खाऊँगी और पडी रहूँगी। आरजुओं के पतले-पतले तिनकों से उसने एक किश्ती बनायी थी और उसी पर बैठकर जिन्दगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किश्ती अब उसे लहरो मे झकोले खाती मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किश्ती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा—बेटा, तुम कैसी बाते कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अग्रेजो को कत्ल कर देने से हम आजाद हो जायेगे? हम अग्रेजो के दुश्मन नही। हम इस राज्य-प्रणाली के दुश्मन है। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बन्दो ही के हाथों में हो—और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी—तो हम उसका भी इसी तरह विरोध करेगे। रूस मे तो कोई दूसरी कौम राज न करती थी, फिर भी रूसवालो ने उस हुकूमत को उखाड फेका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मजे उडाते थे, ग़रीबों को पीसा जाता था। यह बाते तुम मुझसे ज़्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। यहॉ एक-एक ओहदेदार, एक हजार गरीबो का हिस्सा खा जाता है। देश की सम्पत्ति एक न एक बहाने निकलती चली जाती है और हम ग़रीब होते जाते है। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मै तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इस सभा से अपना नाम कटवा लो। ख़ामख़ाह आग मे न कूदो। मैं अपनी ऑखो से यह दृश्य नही देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाये जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नही हुआ। बोला—इसका कोई डर नही। हमने इसके बारे में काफ़ी एहतियात कर ली है। गिरफ़्तार होना तो

बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ़्तार न हो।

माँ के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिन्दगी की झलक नज़र आयी। बोली —यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सजा पायें और कातिल चैन से बैठे रहे! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूँ। किसी को छिपकर कत्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले अपने बेगुनाह भाइयों को फँसा देना देशद्रोह हैं। इन बेगुनाहों का खून भी कातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी माँ की परेशानी का मज़ा लेते हुए कहा — अम्माँ, तुम इन बातों को नही समझती। तुम अपने धरने दिये जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते है, हमे करने दो। गुनाह और सवाब, पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म, यह निरर्थक शब्द हैं। जिस काम को तुम पाप समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूँ। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि यह सापेक्ष शब्द है। तुमने भगवतगीता तो पढी है। कृष्ण भगवान ने साफ कहा है — मारनेवाला मैं हूँ, जिलानेवाला मै हूँ, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहाँ रहा तुम्हारा पाप ? मुझे इस बात की क्यो शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम क़रार दिया गया। यह व्यक्तिगत लडाई नही, इग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूँ या मेरे बदले कोई दूसरा मरे, इसमे कोई अन्तर नही। जो आदमी राष्ट्र की ज़्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज़्यादा अधिकार है।

माँ आश्चर्य से लड़के का मुँह देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे उसे लकवा मार गया हो। उसने सोचा — कही ऐसा तो नहीं कि वह किसी को कत्ल कर आया हो या कत्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर मे कँपकँपी आ गयी। आम लोगो की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कण-कण मे भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज़्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो सकती थी। वह राष्ट्र सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफदिली का वरदान है। उसकी आँखों मे राष्ट्र का सेवक वह था जो नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाये, बल्कि ज़रूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना

बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर । उसे गहरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती। मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता। लेकिन वह किसी का खून कर आये यह एक भयानक पाप था, कलक था। लडके को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था। वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म मे पकड़ा जाय। न उसे यही बरदाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले। उसे ताज्जुब हो रहा था, लडके में यह पागलपन आया क्योकर? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले के नीचे न जा सका। कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उसकी गोद से छीने लेता है। वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी। अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी। छाया की तरह उसके पीछ-पीछे रहेगी। किसकी मजाल है, जो उसके लडके को उसकी गोद से छीने!

धर्मवीर बाहर के कमरे मे सोया करता था। उसे ऐसा लगा कि कही वह चला न गया हो। फ़ौरन उसके कमरे में आयी। धर्मवीर के सामने दीवट पर दिया जल रहा था। वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था। किताब उसके सीने पर पड़ी थी। माँ ने वहीं बैठकर अनाथ की तरह बडी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लडके का हृदय-परिवर्तन कर दे। उसके चेहरे पर अब भी वही भोलापन, वही मासूमियत थी जो पन्द्रह-बीस साल पहले नजर आती थी। कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था। माँ की सिद्धांत-परता एक क्षण के लिए ममता के आँचल मे छिप गयी। माँ ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा। इस नौजवान के दिल मे सेवा की कितनी उमग है, क़ौम का कितना दर्द है, पीडितों से कितनी सहानुभूति है। अगर इसमें बूढो की-सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है। जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तडप और जलन का कौन अन्दाज़ा कर सकता है। काश यह जोश, यह दर्द हिंसा के पजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती!

माँ की आहट पाकर धर्मवीर चौक पड़ा और किताब सम्हालता हुआ बोला—तुम कब आ गयीं अम्माँ? मुझे तो न जाने कब नीद आ गयी।

माँ ने दीवट को दूर हटाकर कहा—चारपाई के पास दिया रखकर न सोया करो। इससे कभी-कभी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। और क्या सारी रात

पढते ही रहोगे ? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यही लेटी जाती हूँ। मुझे अन्दर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर—तो मै एक चारपाई लाकर डाले देता हूँ।

'नही, मै यहीं जमीन पर लेटी जाती हूँ।'

'वाह, मैं चारपाई पर लेटूँ और तुम ज़मीन पर पडी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।'

'चल, मै चारपाई पर लेटूँ और तू ज़मीन पर पड़ा रहे, यह तो नही हो सकता।'

'मै चारपाई लिये आता हूँ। नही तो मैं भी अन्दर ही लेटता हूँ। आज आप डरी क्यों?'

'तुम्हारी बातो ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नही शरीक कर लेता?'

धर्मवीर ने कोई जवाब न दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अन्दर-वाले कमरे मे चला। माँ आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे मे चार-पाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला—अगर तुम मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियाँ खाकर बीमार हो रहे है। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बाते है जिन्हे एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज नहीं कर सकते। मसलन किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारो का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो!

माँ ने गम्भीरता से कहा—नहीं बेटा, दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूँ। माँ का दिल कितना नाज़ुक होता है, इसका अन्दाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हे इतने बडे ख़तरे में अकेला छोड़कर मै घर में नही बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ न मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बाते जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नही रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बगल मे रहूँगी और अगर कोई ऐसा मौक़ा आया तो तुमसे पहले मैं अपने को क़ुर्बान करूँगी। मरते वक़्त तुम मेरे सामने होगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाज़ुक मौक़ों पर डर जाऊँगी, चीखूँगी, चिल्लाऊँगी। हरगिज नहीं। सख़्त से सख़्त ख़तरो के सामने भी तुम मेरी ज़बान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफ़ाजत के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर माँ के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

२

दूसरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढिया ने रिवाल्वर चलाने के अभ्यास मे खर्च किये। पटाखे की अवाज़ पर कानों पर हाथ रखनेवाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बडे अफसर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुँचे तो माॅ ने पूछा—क्यों बेटा, इस अफसर ने तो कोई ऐसा काम नही किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना?

धर्मवीर माँ की सरलता पर मुस्कराकर बोला—तुम समझती हो, हमारे कानिस्टिबिल और सब-इन्सपेक्टर और सुपरिण्टेण्डेण्ट जो कुछ करते है, अपनी खुशी से करते है? वे लोग जितने अत्याचार करते है, उनके लिए यही आदमी ज़िम्मेदार है। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफी है कि वह उस मशीन का एक ख़ास पुर्ज़ा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहाँ तो विरोधी पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

माँ चुप हो गयी। क्षण भर बाद डरते-डरते बोली—बेटा, मैंने तुमसे कभी कुछ नही माॅगा। अब एक सवाल करती हूँ, उसे पूरा करोगे?

धर्मवीर ने कहा—यह पूछने की कोई ज़रूरत नहीं अम्माॅ, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इनकार नहीं कर सकता।

माॅ—हाँ बेटा, यह जानती हूँ। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी माॅ हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख माँग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गयी। धर्मवीर ने कहकहा मारकर कहा—यह तो तुमने बेढब सवाल किया, अम्माॅ! तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा? ज़िन्दा लौटकर न आऊँगा। अगर

यहाँ से कही भाग जाऊँ तो भी जान नही बच सकती। सभा के सब मेम्बर ही मेरे खून के प्यासे हो जायेगे और मुझे उनकी गोलियो का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक़ सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौका हाथ आ जाय कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हे क़त्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्तव्य से भी मुँह न मोड़ सकूँगा। आँखों से आँसू जारी होगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म मे राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज़ नही ठहर सकती। इसलिए सभा को छोडने का तो सवाल ही नहीं है। हाँ, तुम्हे डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूँगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूँगा। अगर तुम्हारे दिल मे कमज़ोरी हो, तो मुझे फौरन बतला दो।

माँ ने कलेजा मज़बूत करके कहा—मैंने तुम्हारे खयाल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अँधेरी रात के पर्दे मे इस काम को पूरा करने का फैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक्त लौटे वहीं उसकी ज़िन्दगी का चिराग़ बुझा दिया जाय। धर्मवीर ने दोपहर ही को मौक़े का मुआइना कर लिया और उस खास जगह को चुन लिया जहाँ से वह निशाना मारेगा। साहब के बँगले के पास करील और करौदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बायीं तरफ़ नीची जमीन थी। उसमे बेर और अमरूद के बाग़ थे। भाग निकलने का अच्छा मौका था।

साहब के क्लब जाने का वक़्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक़्त ग्यारह या बारह बजे था। इन दोनों वक़्तो की बात पक्की तरह मालूम कर ली गयी थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौदेवाली झाड़ी मे छिपकर बैठ जायँ। वही एक मोड भी था। मोड़ पर मोटर की चाल कुछ धीमी पड़ जायगी। ठीक इसी वक़्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यो-ज्यों दिन गुजरता जाता था, बूढ़ी माँ का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण मे तनिक भी अन्तर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, सन्ध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढता रहा। दो-चार मित्र आ गये। उनके साथ दो-तीन बाज़ियाँ शतरंज की खेली। इत्मीनान से खाना खाया और अन्य दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम

से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिन्ता नही है। माँ का दिल उचाट था। खाने-पीने का तो जिक्र ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पडोस की औरते हमेशा की तरह आयी। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती थी कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से कोई सूराख ढूँढती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उससे कही मुक्ति नही। कही भाग जाय, ऐसी कोई जगह नही। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सान्त्वना मिलती थी — भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान् की मर्जी — वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे। जिरहबख्तर और लोहे की टोपी तीर-तुपक से रक्षा कर सकते है लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शान्ति-सी छा गयी। उसके अन्दर एक ताक़त पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताकत कह सकते है। चिडिया उस वक़्त तक फडफडाती रही, जब तक उड निकलने की उम्मीद थी। उसके बाद वह बहेलिये के पंजे और कसाई के छुरे के लिए तैयार हो गयी। भय की चरम सीमा साहस है।

उसने धर्मवीर को पुकारा — बेटा, कुछ आकर खा लो।

धर्मवीर अन्दर आया। आज दिन भर माँ-बेटे में एक बात भी न हुई थी। इस वक़्त माँ ने धर्मवीर को देखा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह सयम जिससे आज उसने दिन भर अपने भीतर की बेचैनी को छिपा रखा था, जो अब तक उड़े-उड़े-से दिमाग़ की शकल मे दिखायी दे रही थी, ख़तरे के पास आ जाने पर पिघल गया था — जैसे कोई बच्चा भालू को दूर से देखकर तो खुशी से तालियाँ बजाये लेकिन उसके पास आने पर चीख़ उठे।

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों रोने लगे।

माँ का दिल खुशी से खिल उठा। उसने आँचल से धर्मवीर के आँसू पोछते हुए कहा — चलो बेटा, यहाँ से कहीं भाग चलें।

धर्मवीर चिन्ता-मग्न खड़ा था। माँ ने फिर कहा — किसी से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। यहाँ से बाहर निकल जायँ जिसमें किसी को ख़बर भी न हो। राष्ट्र की सेवा करने के और भी बहुत-से रास्ते है।

धर्मवीर जैसे नीद से जागा, बोला — यह नहीं हो सकता अम्माँ। कर्तव्य तो कर्तव्य है, उसे पूरा करना पड़ेगा। चाहे रोकर पूरा करो, चाहे हँसकर।

हाँ, इस खयाल से डर लगता है कि नतीजा न जाने क्या हो। मुमकिन है निशाना चूक जाये और गिरफ़्तार हो जाऊँ या उसकी गोली का निशाना बनूँ। लेकिन ख़ैर जो हो, सो हो। मर भी जायेंगे तो नाम तो छोड़ जायेंगे।

क्षण भर बाद उसने फिर कहा—इस समय तो कुछ खाने को जी नही चाहता, माँ। अब तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारा जी न चाहता हो तो न चलो, मैं अकेला चला जाऊँगा।

माँ ने शिकायत के स्वर मे कहा — मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नही है बेटा, मेरी जान तो तुम हो। तुम्हे देखकर जीती थी। तुम्हें छोड़कर मेरी ज़िन्दगी और मौत दोनों बराबर है, बल्कि मौत ज़िन्दगी से अच्छी है।

धर्मवीर ने कुछ जवाब न दिया। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों मे लग गये। माँ की तैयारी ही क्या थी। एक बार ईश्वर का ध्यान किया, रिवाल्वर लिया और चलने को तैयार हो गयी।

धर्मवीर को अपनी डायरी लिखनी थी। वह डायरी लिखने बैठा तो भावनाओं का एक सागर-सा उमड पडा। यह प्रवाह, विचारों की यह स्वतः स्फूर्ति उसके लिए नयी चीज़ थी। जैसे दिल में कहीं सोता खुल गया हो। इन्सान लाफ़ानी है, अमर है, यही उस विचार-प्रवाह का विषय था। आरम्भ एक दर्दनाक अलविदा से हुआ —

'रुख़सत! ऐ दुनिया की दिलचस्पियो, रुख़सत! ऐ जिन्दगी की बहारो, रुख़सत! ऐ मीठे जख़्मो रुख़सत! देशभाइयो, अपने इस आहत और अभागे सेवक के लिए भगवान से प्रार्थना करना! जिन्दगी बहुत प्यारी चीज़ है, इसका तजुर्बा हुआ। आह! वही दुख-दर्द के नश्तर, वही हसरतें और मायूसियाँ जिन्होने जिन्दगी को कड़ुवा बना रखा था, इस समय जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। यह प्रभात की सुनहरी किरनो की वर्षा, यह शाम की रंगीन हवाएँ, यह गली-कूचे, यह दरो-दीवार फिर देखने को न मिलेंगे। ज़िन्दगी बन्दिशों का नाम है। बन्दिशे एक-एक करके टूट रही है। ज़िन्दगी का शीराजा बिखरा जा रहा है। ऐ दिल की आजादी! आओ तुम्हें नाउम्मीदी की कब्र में दफ़न कर दूँ। भगवान से यही प्रार्थना है कि मेरे देशवासी फले-फूले, मेरा देश लहलहाये। कोई बात नहीं, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या, मगर गुलशन बुलबुलों से खाली न रहेगा। मेरी अपने भाइयों से इतनी ही विनती है कि जिस समय आप आजादी के गीत गायें तो इस गरीब की भलाई के लिए दुआ करके उसे याद कर लें।'

डायरी बन्द करके उसने एक लम्बी साँस खीची और उठ खडा हुआ। कपड़े पहने, रिवाल्वर जेब में रखा और बोला — अब तो वक़्त हो गया अम्माँ!

माँ ने कुछ जवाब न दिया। घर सम्हालने की किसे परवाह थी, जो चीज जहाँ पडी थी, वहीं पड़ी रही। यहाँ तक कि दिया भी न बुझाया गया। दोनों खामोश घर से निकले—एक मर्दानगी के साथ कदम उठाता, दूसरी चिन्तित और शोक-मग्न और बेबसी के बोझ से झुकी हुई। रास्ते में भी शब्दो का विनिमय न हुआ। दोनों भाग्य-लिपि की तरह अटल, मौन और तत्पर थे — गद्यांश तेजस्वी, बलवान्, पुनीत कर्म की प्रेरणा; पद्यांश दर्द, आवेश और विनती से काँपता हुआ।

झाडी में पहुँचकर दोनो चुपचाप बैठ गये। कोई आध घण्टे के बाद साहब की मोटर निकली। धर्मवीर ने ग़ौर से देखा। मोटर की चाल धीमी थी। साहब और लेडी दोनों बैठे थे। निशाना अचूक था। धर्मवीर ने जेब से रिवाल्वर निकाला। माँ ने उसका हाथ पकड़ लिया और मोटर आगे निकल गयी।

धर्मवीर ने कहा — यह तुमने क्या किया अम्माँ! ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा।

माँ ने कहा — मोटर मे मेम भी थी। कही मेम को गोली लग जाती तो?

'तो क्या बात थी। हमारे धर्म मे नाग, नागिन और सँपोले में कोई भी अन्तर नहीं।'

माँ ने घृणा के स्वर में कहा—तो तुम्हारा धर्म जंगली जानवरो और वहशियों का है, जो लड़ाई के बुनियादी उसूलों की भी परवाह नहीं करता। स्त्री हर एक धर्म में निर्दोष समझी गयी है। यहाँ तक कि वहशी भी उसका आदर करते है।

'मैं वापसी के समय हरगिज़ न छोड़ूँगा।'

'मेरे जीते-जी तुम स्त्री पर हाथ नही उठा सकते।'

'मैं इस मामले में तुम्हारी पाबन्दियों का गुलाम नहीं हो सकता।'

माँ ने कुछ जवाब न दिया। इस नामर्दो जैसी बात से उसकी ममता टुकड़े-टुकड़े हो गयी। मुश्किल से बीस मिनट बीते होगे कि वही मोटर दूसरी तरफ से आती दिखायी पड़ी। धर्मवीर ने मोटर को ग़ौर से देखा और उछलकर बोला — लो अम्माँ, अबकी बार साहब अकेला है। तुम भी मेरे साथ निशाना लगाना।

माँ ने लपककर धर्मवीर का हाथ पकड़ लिया और पागलों की तरह जोर लगाकर उसका रिवाल्वर छीनने लगी। धर्मवीर ने उसको धक्का देकर गिरा

दिया और एक कदम हटकर रिवाल्वर साधा। एक सेकेण्ड में माँ उठी। उसी वक़्त गोली चली। मोटर आगे निकल गयी, मगर माँ जमीन पर पडी तड़प रही थी।

धर्मवीर रिवाल्वर फेंककर माँ के पास गया और घबराकर बोला — अम्माँ, क्या हुआ? फिर यकायक इस शोकभरी घटना की प्रतीति उसके अन्दर चमक उठी —— वह अपनी प्यारी माँ का कातिल है! उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गयी। आँसुओ की बढती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और माँ के चेहरे की तरफ़ आँसुओ मे लिपटी हुई शर्मिन्दगी से देखकर बोला — यह क्या हो गया, अम्माँ! हाय, तुम कुछ बोलती क्यो नही! यह कैसे हो गया। अँधेरे मे कुछ नजर भी तो नही आता। कहाँ गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह! इस बदनसीब के हाथो तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद मे पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊँ, कोई नजर भी तो नही आता!

माँ ने डूबती हुई आवाज़ मे कहा —— मेरा जन्म सुफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथो मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद मे मर रही हूँ। छाती में घाव लगा है। ज्योंही तुमने गोली चलायी, मै तुम्हारे सामने खडी हो गयी। अब नही बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यह दुआ है। मै और क्या करती बेटा। माँ की आबरू तुम्हारे हाथ मे है। मै तो चली!

क्षण भर बाद उस अँधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी माँ के नीमजान शरीर को गोद में लिये घर चला तो उसके ठडे तलुओं से अपनी आँसू-भरी आँखे रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

—'आखिरी तोहफा' से

# बोहनी

उस दिन जब मेरे मकान के सामने सड़क की दूसरी तरफ एक पान की दुकान खुली तो मैं बाग-बाग़ हो उठा। इधर एक फर्लांग तक पान की कोई दुकान न थी और मुझे सड़क के मोड़ तक कई चक्कर करने पड़ते थे। कभी वहाँ कई-कई मिनट तक दुकान के सामने खडा रहना पड़ता था। चौराहा है, गाहकों की हरदम भीड रहती है। यह इन्तजार मुझको बहुत बुरा लगता था। पान की लत मुझे कब पड़ी और कैसे पड़ी, यह तो अब याद नही आता लेकिन अगर कोई बना-बनाकर गिलौरियाँ देता जाय तो शायद मैं कभी इनकार न करूँ। आमदनी का बड़ा हिस्सा नहीं तो छोटा हिस्सा जरूर पान की भेंट चढ जाता है। कई बार इरादा किया कि एक पानदान खरीद लूँ लेकिन पानदान खरीदना कोई खाला जी का घर नही है और फिर मेरे लिए तो हाथी खरीदने से किसी तरह कम नहीं। और मान लो जान पर खेलकर एक बार खरीद भी लूँ तो पानदान कोई परी की थैली तो नही कि इधर इच्छा हुई और गिलौरियाँ निकल पडी! बाजार से पान लाना, दिन में पाँच बार फेरना, पानी से तर करना, सड़े हुए टुकडों को तराशकर अलग करना क्या कोई आसान काम है। मैंने बडे घरों की औरतों को हमेशा पानदान की देखभाल और प्रबन्ध मे ही व्यस्त पाया है। इतना सरदर्द उठाने की क्षमता होती तो आज मै भी आदमी होता। और अगर किसी तरह यह मुश्किल भी हल हो जाय तो सुपाड़ी कौन काटे ? यहाँ तो सरौते की सूरत देखते ही कँपकँपी छूटने लगती है। जब कभी ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़ी, जिसे टाला नहीं जा सकता, तो सिल पर बट्टे से तोड लिया करता हूँ लेकिन सरौते से काम लूँ यह गैर-मुमकिन। मुझे तो किसी को सुपाड़ी काटते देखकर उतना ही आश्चर्य होता है जितना किसी को तलवार की धार पर नाचते देखकर। और मान लो यह मामला भी किसी तरह हल हो जाय, तो आखिरी मजिल कौन फ़तह करे। कत्था और चूना बराबर लगाना क्या कोई आसान काम है ? कम से कम मुझे तो उसका ढग नही आता। जब इस मामले में वे लोग रोज़ ग़लतियाँ करते है जो इस कला में दक्ष

है तो मैं भला किस खेत की मूली हूँ। तमोली ने अगर चूना ज्यादा कर दिया तो कत्था और ले लिया, उस पर उसे एक डाँट भी बतायी, आँसू पुँछ गये। मुसीबत का सामना तो उस वक़्त होता है, जब किसी दोस्त के घर जाय। पान अन्दर से आया तो इसके सिवाय कि जान-बूझकर मक्खी निगले, समझ-बूझकर जहर का घूँट गले के नीचे उतारे और चारा ही क्या है। शिकायत नहीं कर सकते, सभ्यता बाधक होती है। कभी-कभी पान मुँह मे डालते ही ऐसा मालूम होता है, कि जीभ पर कोई चिनगारी पड गयी, गले से लेकर छाती तक किसी ने पारा गरम करके उँड़ेल दिया, मगर घुटकर रह जाना पड़ता है। अन्दाज़े में इस हद तक ग़लती हो जाय यह तो समझ मे आनेवाली बात नही। मै लाख अनाडी हूँ लेकिन कभी इतना ज्यादा चूना नही डालता, हाँ दो-चार छाले पड़ जाते है। मैं तो समझता हूँ, यही अन्त:पुर के कोप की अभिव्यक्ति है। आख़िर वह आपकी ज्यादतियों का प्रोटेस्ट क्योंकर करे। ख़ामोश बायकाट से आप राज़ी नहीं होते, दूसरा कोई हथियार उनके हाथ मे है नहीं। भवों की कमान और बरौनियो का नेजा और मुस्कराहट का तीर उस वक़्त बिलकुल कोई असर नहीं करते। जब आप आँखे लाल किये, आस्तीने समेटे इसलिए आसमान सर पर उठा लेते है कि नाश्ता और पहले क्यों नहीं तैयार हुआ, तब सालन मे नमक और पान में चूना ज्यादा कर देने के सिवाय बदला लेने का उनके हाथ मे और क्या साधन रह जाता है।

ख़ैर, तीन-चार दिन के बाद एक दिन मै सुबह के वक़्त तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने मेरी फ़रमाइश पूरी करने मे ज्यादा मुस्तैदी न दिखलायी। एक मिनट तक तो पान फेरती रही, फिर अन्दर चली गयी और कोई मसाला लिये हुए निकली। मै दिल में खुश हुआ कि आज बडे विधिपूर्वक गिलौरियाँ बना रही है। मगर अब भी वह सड़क की ओर प्रतीक्षा की आँखों से ताक रही थी कि जैसे दुकान के सामने कोई ग्राहक ही नही और ग्राहक भी कैसा, जो उसका पड़ोसी है और दिन में बीसियों ही बार आता है! तब तो मैंने ज़रा झुँझलाकर कहा — मै कितनी देर से खड़ा हूँ, कुछ इसकी भी ख़बर है?

तम्बोलिन ने क्षमा-याचना के स्वर मे कहा — हाँ बाबू जी, आपको देर तो बहुत हुई लेकिन एक मिनट और ठहर जाइए। बुरा न मानिएगा बाबू जी, आपके हाथ की बोहनी अच्छी नही है। कल आपकी बोहनी हुई थी, दिन में कुल छः आने की बिक्री हुई। परसों भी आप ही की बोहनी थी, आठ आने के

पैसे दुकान में आये थे। इसके पहले दो दिन पडितजी की बोहनी हुई थी, दोपहर तक ढाई रुपये आ गये थे। कभी किसी का हाथ अच्छा नही होता बाबू जी!

मुझे गोली-सी लगी। मुझे अपने भाग्यशाली होने का कोई दावा नही है, मुझसे ज्यादा अभागे दुनिया मे कम होगे। इस साम्राज्य का अगर मै बादशाह नही, तो कोई ऊँचा मसबदार जरूर हूँ। लेकिन यह मैं कभी गवारा नही कर सकता कि नहूसत का दाग बर्दाश्त कर लू। कोई मुझसे बोहनी न कराये, लोग सुबह को मेरा मुँह देखना अपशकुन समझे, यह तो घोर कलक की बात है।

मैंने पान तो ले लिया लेकिन दिल में पक्का इरादा कर लिया कि इस नहूसत के दाग को मिटाकर ही छोड़ूँगा। अभी अपने कमरे मे आकर बैठा ही था कि मेरे एक दोस्त आ गये। बाज़ार साग-भाजी लेने जा रहे थे। मैने उनसे अपनी तम्बोलिन की खूब तारीफ की। वह महाशय ज़रा सौन्दर्य-प्रेमी थे और मज़ाकिया भी। मेरी ओर शरारत-भरी नजरों से देखकर बोले — इस वक्त तो भाई, मेरे पास पैसे नहीं है और न अभी पानो की ज़रूरत ही है। मैंने कहा — पैसे मुझसे ले लो।

'हाँ यह मजूर है, मगर कभी तकाजा मत करना।'

'यह तो टेढ़ी खीर है।'

'तो क्या मुफ्त मे किसी की आँख में चढना चाहते हो?'

मजबूर होकर उन हजरत को एक ढोली पान के दाम दिये। इसी तरह जो मुझसे मिलने आया, उससे मैंने अपनी तम्बोलिन का बखान किया। दोस्तों ने मेरी खूब हँसी उड़ायी, मुझ पर खूब फबतियाँ कसीं, मुझे 'छिपे रुस्तम' 'भगत जी' और न जाने क्या-क्या नाम दिये गये लेकिन मैंने सारी आफतें हँसकर टाली। यह दाग़ मिटाने की मुझे धुन सवार हो गयी।

दूसरे दिन जब मैं तम्बोलिन की दुकान पर गया तो उसने फ़ौरन पान बनाये और मुझे देती हुई बोली — बाबू जी, कल तो आपकी बोहनी बहुत अच्छी हुई, कोई साढ़े तीन रुपये आये। अब रोज बोहनी करा दिया करो।

## २

तीन चार दिन लगातार मैने दोस्तों से सिफारिशें की, तम्बोलिन की स्तुति गायी और अपनी गिरह से पैसे खर्च करके सुर्खरूई हासिल की। लेकिन इतने ही दिनों में मेरे खजाने मे इतनी कमी हो गयी कि खटकने लगी। यह स्वाँग अब ज्यादा दिनों तक न चल सकता था, इसलिए मैंने इरादा किया कि कुछ दिनो उसकी

दूकान से पान लेना छोड़ दूँ। जब मेरी बोहनी ही न होगी, तो मुझे उसकी बिक्री की क्या फिक्र होगी? दूसरे दिन हाथ-मुँह धोकर मैंने एक इलायची खा ली और अपने काम में लग गया। लेकिन मुश्किल से आध घण्टा बीता होगा, कि किसी की आहट मिली। आँख ऊपर को उठाता हूँ तो तम्बोलिन गिलौरियाँ लिये सामने खड़ी मुस्करा रही है। मुझे इस वक्त उसका आना जी पर बहुत भारी गुज़रा लेकिन इतनी बेमुरौवती भी तो न हो सकती थी कि दुतकार दूँ। बोला — तुमने नाहक तकलीफ की, मैं तो आ ही रहा था।

तम्बोलिन ने मेरे हाथ मे गिलौरियाँ रखकर कहा — आपको देर हुई तो मैंने कहा मै ही चलकर बोहनी कर आऊँ। दुकान पर गाहक खड़े है, मगर किसी की बोहनी नही की।

क्या करता, गिलौरियाँ खायी और बोहनी करायी। जिस चिन्ता से मुक्ति पाना चाहता था, वह फिर फन्दे की तरह गर्दन पर चिमटी हुई थी। मैंने सोचा था, मेरे दोस्त दो-चार दिन तक उसके यहाँ पान खायेगे तो आप ही उससे हिल जायेगे और मेरी सिफ़ारिश की जरूरत न रहेगी। मगर तम्बोलिन शायद पान के साथ अपने रूप का भी कुछ मोल करती थी इसलिए एक बार जो उसकी दुकान पर गया, दुबारा न गया। दो-एक रसिक नौजवान अभी तक आते थे, वह लोग एक ही हँसी में पान और रूप-दर्शन दोनो का आनन्द उठाकर चलते बने थे। आज मुझे अपनी साख बनाये रखने के लिए फिर पूरे डेढ़ रुपये खर्च करने पड़े, बधिया बैठ गयी।

दूसरे दिन मैंने दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया, मगर जब तम्बोलिन ने नीचे से चीखना, चिल्लाना और खटखटाना शुरू किया तो मजबूरन दरवाज़ा खोलना पड़ा। आँखे मलता हुआ नीचे गया, जिससे मालूम हो कि आज नींद आ गयी थी। फिर बोहनी करानी पड़ी। और फिर वही बला सर पर सवार हुई। शाम तक दो रुपये का सफाया हो गया। आख़िर इस विपत्ति से छुटकारा पाने का यही एक उपाय रह गया कि वह घर छोड़ दूँ।

## ३

मैंने वहाँ से दो मील पर एक अनजान मुहल्ले में एक मकान ठीक किया और रातों-रात असबाब उठवाकर वहाँ जा पहुँचा। वह घर छोड़कर मैं जितना खुश हुआ शायद कैदी जेलखाने से भी निकलकर उतना खुश न होता होगा। रात को

खूब गहरी नींद सोया, सबेरा हुआ तो मुझे उस पंछी की आज़ादी का अनुभव हो रहा था जिसके पर खुल गये है। बड़े इत्मीनान से सिगरेट पिया, मुँह-हाथ धोया, फिर अपना सामान ढग से रखने लगा। खाने के लिए किसी होटल की भी फिक्र थी, मगर उस हिम्मत तोडनेवाली बला पर फ़तेह पाकर मुझे जो खुशी हो रही थी, उसके मुकाबले मे इन चिन्ताओं की कोई गिनती न थी। मुँह-हाथ धोकर नीचे उतरा। आज की हवा में भी आज़ादी का नशा था। हर एक चीज मुस्कराती हुई मालूम होती थी। खुश-खुश एक दुकान पर जाकर पान खाये और जीने पर चढ़ ही रहा था कि देखा वह तम्बोलिन लपकी चली आ रही है। कुछ न पूछो, उस वक़्त दिल पर क्या गुज़री। बस यही जी चाहता था कि अपना और उसका दोनो का सिर फोड़ लूँ। मुझे देखकर वह ऐसी खुश हुई जैसे कोई धोबी अपना खोया हुआ गधा पा गया हो। और मेरी घबराहट का अन्दाज़ा बस उस गधे की दिमागी हालत से कर लो! उसने दूर ही से कहा —वाह बाबू जी, वाह, आप ऐसा भागे कि किसी को पता भी न लगा। उसी मुहल्ले में एक से एक अच्छे घर ख़ाली है। मुझे क्या मालूम था कि आपको उस घर मे तकलीफ़ थी। नहीं तो मेरे पिछवाडे ही एक बडे आराम का मकान था। अब मैं आपको यहाँ न रहने दूँगी। जिस तरह हो सकेगा, आपको उठा ले जाऊँगी। आप इस घर का क्या किराया देते है?

मैंने रोनी सूरत बना कर कहा — दस रुपये।

मैने सोचा था कि किराया इतना कम बताऊँ जिसमें यह दलील उसके हाथ से निकल जाय। इस घर का किराया बीस रुपये है, दस रुपये में तो शायद मरने को भी जगह न मिलेगी। मगर तम्बोलिन पर इस चकमे का कोई असर न हुआ। बोली — इस ज़रा-से घर के दस रुपये! आप आठ ही दीजियेगा और घर इससे अच्छा न हो तो जब भी जी चाहे छोड़ दीजिएगा। चलिए, मै उस घर की कुजी लेती आयी हूँ। इसी वक्त आपको दिखा दूँ।

मैने त्योरी चढ़ाते हुए कहा —आज ही तो इस घर में आया हूँ, आज ही छोड़ कैसे सकता हूँ। पेशगी किराया दे चुका हूँ।

तम्बोलिन ने बड़ी लुभावनी मुस्कराहट के साथ कहा —दस ही रुपये तो दिये हैं, आपके लिए दस रुपये कौन बड़ी बात है। यही समझ लीजिए कि आप न चले तो मैं उजड़ जाऊँगी। ऐसी अच्छी बोहनी वहाँ और किसी की नही है। आप नही चलेंगे तो मैं ही अपनी दुकान यहाँ उठा लाऊँगी।

मेरा दिल बैठ गया। यह अच्छी मुसीबत गले पड़ी। कहीं सचमुच चुड़ैल

अपनी दुकान न उठा लाये। मेरे जी मे तो आया कि एक फटकार बताऊँ पर ज़बान इतनी बेमुरौवत न हो सकी। बोला—मेरा कुछ ठीक नहीं है, कब तक रहूँ, कब तक न रहूँ। आज ही तबादला हो जाय तो भागना पड़े। तुम न इधर की रहो, न उधर की।

उसने हसरत-भरे लहजे मे कहा—आप चले जायेगे तो मै भी चली जाऊँगी। अभी आज तो आप जाते नहीं।

'मेरा कुछ ठीक नही है।'

'तो मै रोज यहाँ आकर बोहनी करा लिया करूँगी।'

'इतनी दूर रोज आओगी?'

'हाँ चली आऊँगी। दो मील ही तो है। आपके हाथ की बोहनी हो जायगी। यह लीजिए गिलौरियाँ लायी हूँ। बोहनी तो करा दीजिए।'

मैने गिलौरियाँ ली, पैसे दिये और कुछ गश की-सी हालत मे ऊपर जाकर चारपाई पर लेट गया।

अब मेरी अक्ल कुछ काम नही करती कि इस मुसीबत से क्योकर गला छुड़ाऊँ। तब से इसी फिक्र मे पड़ा हुआ हूँ। कोई भागने की राह नज़र नही आती। सुर्ख़रू भी रहना चाहता हूँ, बेमुरौवती भी नही करना चाहता और इस मुसीबत से छुटकारा भी पाना चाहता हूँ। अगर कोई साहब मेरी इस करुण स्थिति पर मुझे ऐसा कोई उपाय बतला दें तो जीवन भर उनका कृतज्ञ रहूँगा।

—'प्रेमचालीसी' से

# बन्द दरवाज़ा

सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से — वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी।

मै बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाजे से झाँका। मैंने मुस्कराकर पुकारा। वह मेरी गोद मे आकर बैठ गया।

उसकी शरारते शुरू हो गयीं। कभी कलम पर हाथ बढ़ाया, कभी काग़ज़ पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज का पाया पकड़े खडा रहा। घर मे न गया। दरवाजा खुला हुआ था।

एक चिडिया फुदकती हुई आयी और सामने के सहन मे बैठ गयी। बच्चे के लिए मनोरजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ लपका। चिडिया जरा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब यह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठ-कर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड गयी, निराश बच्चा रोने लगा। मगर अन्दर के दरवाजे की तरफ ताका भी नही। दरवाजा खुला हुआ था।

गरम हलवे की मीठी पुकार आयी। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा। खोंचेवाला सामने से गुजरा। बच्चे ने मेरी तरफ याचना की आँखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोंचेवाला दूर होता गया, याचना की आँखे रोष मे परिवर्तित होती गयीं। यहाँ तक कि जब मोड आ गया और खोंचेवाला आँख से ओझल हो गया तो रोष ने पुरशोर फरियाद की सूरत अख़्तियार की। मगर मैं बाज़ार की चीज़े बच्चों को नही खाने देता। बच्चे की फ़रियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नही सकता बच्चे ने अपनी माँ की अदा-लत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आम तौर पर बच्चे ऐसी हालतों में माँ से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तवी कर दी हो। उसने दरवाजे की तरफ रुख़ न किया। दरवाजा खुला हुआ था।

मैने आँसू पोछने के ख़याल से अपना फाउण्टेनपेन उसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे जमाने की दौलत मिल गयी। उसकी सारी इन्द्रियाँ इस नयी

समस्या को हल करने मे लग गयी। एकाएक दरवाजा हवा से खुद-ब-खुद बन्द हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आयी। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी वह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गयी। उसने फाउण्टेनपेन को फेक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ़ चला क्योंकि दरवाजा बन्द हो गया था।

—'प्रेमचालीसी' से

# तिरसूल

अँधेरी रात है, मूसलाधार पानी बरस रहा है। खिड़कियों पर पानी के थप्पड़ लग रहे है। कमरे की रोशनी खिड़की से बाहर जाती है तो पानी की बड़ी-बड़ी बूंदें तीरों की तरह नोकदार, लम्बी, मोटी, गिरती हुई नज़र आ जाती है। इस वक़्त अगर घर में आग भी लग जाय तो शायद मै बाहर निकलने की हिम्मत न करूँ। लेकिन एक दिन था जब ऐसी ही अँधेरी भयानक रात के वक़्त मैं मैदान में बन्दूक लिये पहरा दे रहा था। उसे आज तीस साल गुजर गये। उन दिनों मैं फ़ौज में नौकर था। आह! वह फौजी ज़िन्दगी कितने मजे से गुज़रती थी। मेरी ज़िन्दगी की सबसे मीठी, सबसे सुहानी यादगारे उसी जमाने से जुड़ी हुई है। आज मुझे इस अँधेरी कोठरी में अखबारों के लिए लेख लिखते देखकर कौन समझेगा कि इस नीम-जान, झुकी हुई कमरवाले खस्ताहाल आदमी मे भी कभी हौसला और हिम्मत और जोश का दरिया लहरे मारता था। क्या-क्या दोस्त थे जिनके चेहरों पर हमेशा मुस्कराहट नाचती रहती थी। शेरदिल रामसिंह और मीठे गलेवाले देवीदास की याद क्या कभी दिल से मिट सकती है? वह अदन, वह बसरा, वह मिस्र; सब आज मेरे लिए सपने है। यथार्थ है तो यह तंग कमरा और अखबार का दफ़्तर।

हाँ, ऐसी ही अँधेरी डरावनी सुनसान रात थी। मैं बारक के सामने बरसाती पहने हुए खडा मैग्ज़ीन का पहरा दे रहा था। कंधे पर भरा हुआ राइफ़ल था। बारक मे से दो-चार सिपाहियों के गाने की आवाजे आ रही थी। रह-रहकर जब बिजली चमक जाती थी तो सामने के ऊँचे पहाड और दरख्त और नीचे का हरा-भरा मैदान इस तरह नजर आ जाते थे जैसे किसी बच्चे की बड़ी-बड़ी काली भोली पुतलियो मे खुशी की झलक नज़र आ जाती है।

धीरे-धीरे बारिश ने तूफानी सूरत अख्तियार की। अधकार और भी अँधेरा, बादल की गरज और भी डरावनी और बिजली की चमक और भी तेज़ हो गयी। मालूम होता था प्रकृति अपनी सारी शक्ति से ज़मीन को तबाह कर देगी।

यकायक मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सामने से किसी चीज़ की परछाईं-सी निकल गयी। पहले तो मुझे खयाल हुआ कि कोई जगली जानवर होगा लेकिन

बिजली की एक चमक ने यह ख़याल दूर कर दिया। वह कोई आदमी था, जो बदन को चुराये पानी में भीगता हुआ एक तरफ़ जा रहा था। मुझे हैरत हुई कि इस मूसलाधार वर्षा मे कौन आदमी बारक से निकल सकता है और क्यों? मुझे अब उसके आदमी होने मे कोई सन्देह न था। मैंने बन्दूक़ सम्हाल ली और फौजी कायदे के मुताबिक पुकारा — हाल्ट, हू कम्स देअर? फिर भी कोई जवाब नहीं। कायदे के मुताबिक तीसरी बार ललकारने पर अगर जवाब न मिले तो मुझे बन्दूक दाग देनी चाहिए थी। इसलिए मैंने बन्दूक हाथ मे लेकर खूब जोर से कडककर कहा — हाल्ट, हू कम्स देअर? जवाब तो अबकी भी न मिला मगर वह परछाई मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। अब मुझे मालूम हुआ कि वह मर्द नही औरत है। इसके पहले कि मैं कोई सवाल करूँ उसने कहा — सन्तरी, खुदा के लिए चुप रहो। मैं हूँ लुईसा।

मेरी हैरत की कोई हद न रही। अब मैंने उसे पहचान लिया। वह हमारे कमाण्डिग अफ़सर की बेटी लुईसा ही थी। मगर इस वक़्त इस मूसलाधार मेंह और इस घटाटोप अँधेरे मे वह कहाँ जा रही है? बारक मे एक हजार जवान मौजूद थे जो उसका हुक्म पूरा कर सकते थे। फिर वह नाज़ुकबदन औरत इस वक़्त क्यों निकली और कहाँ के लिए निकली? मैने आदेश के स्वर में पूछा — तुम इस वक्त कहाँ जा रही हो?

लुईसा ने विनती के स्वर मे कहा — माफ़ करो सन्तरी, यह मैं नहीं बता सकती और तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि यह बात किसी से न कहना। मैं हमेशा तुम्हारी एहसानमन्द रहूँगी।

यह कहते-कहते उसकी आवाज़ इस तरह काँपने लगी जैसे किसी पानी से भरे हुए बर्तन की आवाज़।

मैंने उसी सिपाहियाना अन्दाज से कहा — यह कैसे हो सकता है। मैं फौज का एक अदना सिपाही हूँ। मुझे इतना अख़्तियार नही। मैं कायदे के मुताबिक़ आपको अपने सार्जेण्ट के सामने ले जाने के लिए मजबूर हूँ।

'लेकिन क्या तुम नही जानते कि मैं तुम्हारे कमाण्डिग अफसर की लडकी हूँ?'

मैंने ज़रा हँसकर जवाब दिया — अगर मै इस वक़्त कमाण्डिग अफ़सर साहब को भी ऐसी हालत में देखूँ तो उनके साथ भी मुझे यही सख़्ती करनी पड़ेगी। क़ायदा सबके लिए यकसाँ है और एक सिपाही को किसी हालत में उसे तोड़ने का अख़्तियार नही है।

यह निर्दय उत्तर पाकर उसने करुण स्वर मे पूछा — तो फिर क्या तदबीर है ?

मुझे उस पर रहम तो आ रहा था लेकिन कायदों की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। मुझे नतीजे का जरा भी डर न था। कोर्टमार्शल या तनज्जुली या और कोई सज़ा मेरे ध्यान में न थी। मेरा अन्तःकरण भी साफ था। लेकिन कायदे को कैसे तोड़ूँ। इसी हैस-बैस में खड़ा था कि लुईसा ने एक क़दम बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया और निहायत पुरदर्द बेचैनी के लहजे में बोली — तो फिर मैं क्या करूँ ?

ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे उसका दिल पिघला जा रहा हो। मै महसूस कर रहा था कि उसका हाथ काँप रहा है। एक बार जी में आया जाने दूँ। प्रेमी के सदेश या अपने वचन की रक्षा के सिवा और कौन-सी शक्ति इस हालत में उसे घर से निकलने पर मजबूर करती ? फिर मैं क्यों किसी की मुहब्बत की राह का काँटा बनूँ। लेकिन कायदे ने फिर जबान पकड़ ली। मैने अपना हाथ छुडाने की कोशिश न करके मुँह फेरकर कहा — और कोई तदबीर नही है।

मेरा जवाब सुनकर उसकी पकड ढीली पड गयी कि जैसे शरीर में जान न हो पर उसने अपना हाथ हटाया नहीं, मेरे हाथ को पकड़े हुए गिड़गिडाकर बोली — सन्तरी, मुझ पर रहम करो। खुदा के लिए मुझ पर रहम करो। मेरी इज़्ज़त ख़ाक में मत मिलाओ। मैं बड़ी बदनसीब हूँ।

मेरे हाथ पर आँसुओं के कई गरम कतरे टपक पड़े। मूसलाधार बारिश का मुझ पर ज़र्रा भर भी असर न हुआ था लेकिन इन चन्द बूँदो ने मुझे सर से पाँव तक हिला दिया।

मैं बड़े पसोपेश मे पड़ गया। एक तरफ़ कायदे और फ़र्ज की आहनी दीवार थी, दूसरी तरफ़ एक सुकुमार युवती का विनती भरा आग्रह। मै जानता था अगर उसे सार्जेण्ट के सिपुर्द कर दूँगा तो सबेरा होते ही सारे बटालियन में ख़बर फैल जायगी, कोर्टमार्शल होगा, कमाण्डिग अफसर की लड़की पर भी फ़ौज का लौह कानून कोई रियायत न कर सकेगा। उसके बेरहम हाथ उस पर भी बेदर्दी से उठेंगे। ख़ासकर लड़ाई के जमाने में।

और अगर इसे छोड़ दूँ तो इतनी ही बेदर्दी से कानून मेरे साथ पेश आयेगा। ज़िन्दगी ख़ाक में मिल जायगी। कौन जाने कल जिन्दा भी रहूँ या नही। कम से कम तनज़्जुली तो होगी ही। भेद छिपा भी रहे तो क्या मेरी अन्तरात्मा मुझे सदा न धिक्कारेगी ? क्या मैं फिर किसी के सामने इसी दिलेर ढग से ताक सकूँगा ? क्या मेरे दिल में हमेशा एक चोर-सा न समाया रहेगा ?

लुईसा बोल उठी — सन्तरी !

विनती का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। वह अब निराशा की उस सीमा पर पहुँच चुकी थी जब आदमी की वाक्शक्ति अकेले शब्दो तक सीमित हो जाती है। मैने सहानुभूति के स्वर मे कहा — बड़ा मुश्किल मामला है।

'सन्तरी, मेरी इज्जत बचा लो। मेरे सामर्थ्य मे जो कुछ है वह तुम्हारे लिए करने को तैयार हूँ।'

मैने स्वाभिमानपूर्वक कहा — मिस लुईसा, मुझे लालच न दीजिए, मै लालची नहीं हूँ। मैं सिर्फ इसलिए मजबूर हूँ कि फ़ौजी कानून को तोड़ना एक सिपाही के लिए दुनिया मे सबसे बड़ा जुर्म है।

'क्या एक लडकी के सम्मान की रक्षा करना नैतिक कानून नही है? क्या फ़ौजी कानून नैतिक क़ानून से भी बड़ा है?' लुईसा ने ज़रा जोश मे भरकर कहा।

इस सवाल का मेरे पास क्या जवाब था। मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा। फौजी क़ानून अस्थायी, परिवर्तनशील होता है, परिवेश के आधीन होता है। नैतिक क़ानून अटल और सनातन होता है, परिवेश से ऊपर। मैंने कायल होकर कहा — जाओ मिस लुईसा, तुम अब आजाद हो, तुमने मुझे लाजवाब कर दिया। मैं फौजी क़ानून तोड़कर इस नैतिक कर्तव्य को पूरा करूँगा। मगर तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि आगे फिर कभी किसी सिपाही को नैतिक कर्तव्य का उपदेश न देना क्योंकि फ़ौजी क़ानून में वह भी जुर्म है। फ़ौजी आदमी के लिए दुनिया में सबसे बडा कानून फ़ौजी कानून है। फ़ौज किसी नैतिक, आत्मिक या ईश्वरीय कानून की परवाह नहीं करती।

लुईसा ने फिर मेरा हाथ पकड लिया और एहसान में डूबे हुए लहजे मे बोली — सन्तरी, भगवान तुम्हे इसका फल दे।

मगर फ़ौरन उसे सदेह हुआ कि शायद यह सिपाही आइन्दा किसी मौक़े पर यह भेद न खोल दे इसलिए अपने और भी इत्मीनान के ख़याल से उसने कहा — मेरी आबरू अब तुम्हारे हाथ है।

मैने विश्वास दिलानेवाले ढंग से कहा — मेरी ओर से आप बिलकुल इत्मीनान रखिए।

'कभी किसी से नहीं कहोगे न?'

'कभी नहीं।'

'कभी नहीं?'

'हाँ, जीते जी कभी नही।'

'अब मुझे इत्मीनान हो गया, सन्तरी। लुईसा तुम्हारी इस नेकी और एहसान को मौत की गोद में जाते वक़्त भी न भूलेगी। तुम जहाँ रहोगे तुम्हारी यह बहन तुम्हारे लिए भगवान से प्रार्थना करती रहेगी। जिस वक़्त तुम्हें कभी जरूरत हो, मेरी याद करना। लुईसा दुनिया के उस पर्दे पर होगी तब भी तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर होगी। वह आज से तुम्हें अपना भाई समझती है। सिपाही की ज़िन्दगी में ऐसे मौके आते है, जब उसे एक खिदमत करनेवाली बहन की जरूरत होती है। भगवान न करे तुम्हारी जिन्दगी में ऐसे मौके आये लेकिन अगर आयें तो लुईसा अपना फ़र्ज अदा करने में कभी पीछे न रहेगी। क्या मैं अपने नेकमिजाज भाई का नाम पूछ सकती हूँ ?'

बिजली एक बार चमक उठी। मैने देखा लुईसा की आँखों में आँसू भरे हुए है। बोला — लुईसा, इन हौसला बढ़ानेवाली बातों के लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूँ। लेकिन मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह नैतिकता और हमदर्दी के नाते कर रहा हूँ। किसी इनाम की मुझे इच्छा नहीं है। मेरा नाम पूछकर क्या करोगी ?

लुईसा ने शिकायत के स्वर मे कहा — क्या बहन के लिए भाई का नाम पूछना भी फौजी क़ानून के ख़िलाफ है ?

इन शब्दों में कुछ ऐसी सच्चाई, कुछ ऐसा प्रेम, कुछ ऐसा अपनापन भरा हुआ था, कि मेरी आँखों में बरबस आँसू भर आये।

बोला — नहीं लुईसा, मैं सिर्फ़ यही चाहता हूँ कि इस भाई-जैसे सलूक में स्वार्थ की छाया भी न रहने पाये। मेरा नाम श्रीनाथ सिंह है।

लुईसा ने कृतज्ञता व्यक्त करने के तौर पर मेरा हाथ धीरे से दबाया और थैंक्स कहकर चली गयी। अँधेरे के कारण बिलकुल नजर न आया कि वह कहाँ गयी और न पूछना ही उचित था। मै वही खडा-खड़ा इस अचानक मुलाकात के पहलुओ को सोचता रहा। कमाण्डिग अफ़सर की बेटी क्या एक मामूली सिपाही को, और वह भी जो काला आदमी हो, कुत्ते से बदतर नही समझती ? मगर वही औरत आज मेरे साथ भाई का रिश्ता कायम करके फूली नहीं समाती थी।

## २

इसके बाद कई साल बीत गये। दुनिया में कितनी ही क्रान्तियाँ हो गयी। रूस की ज़ारशाही मिट गयी, जर्मनी का कैसर दुनिया के स्टेज से हमेशा के लिए

बिदा हो गया, प्रजातन्त्र को एक शताब्दी में जितनी उन्नति न हुई थी, उतनी इन थोड़े से सालों में हो गयी। मेरे जीवन में भी कितने ही परिवर्तन हुए। एक टॉग युद्ध के देवता की भेंट हो गयी, मामूली सिपाही से लेफ़्टिनेण्ट हो गया।

एक दिन फिर ऐसी ही चमक और गरज की रात थी। मैं क्वार्टर में बैठा हुआ कप्तान नाक्स और लेफ़्टिनेण्ट डाक्टर चन्द्रसिंह से इसी घटना की चर्चा कर रहा था जो दस-बारह साल पहले हुई थी, सिर्फ़ लुईसा का नाम छिपा रखा था। कप्तान नाक्स को इस चर्चा में असाधारण आनन्द आ रहा था। वह बार-बार एक-एक बात पूछता और घटना का क्रम मिलाने के लिए दुबारा पूछता था। जब मैंने आखिर में कहा कि उस दिन भी ऐसी ही अँधेरी रात थी, ऐसी मूसलाधार बारिश हो रही थी और यही वक़्त था तो नाक्स अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और बहुत उद्विग्न होकर बोला — क्या उस औरत का नाम लुईसा तो नहीं था?

मैंने आश्चर्य से कहा, 'आपको उसका नाम कैसे मालूम हुआ? मैंने तो नहीं बतलाया,' पर नाक्स की आँखों में आँसू भर आये। सिसकियाँ लेकर बोले — यह सब आपको अभी मालूम हो जायगा। पहले यह बतलाइए कि आपका नाम श्रीनाथ सिंह है या चौधरी?

मैंने कहा — मेरा पूरा नाम श्रीनाथ सिंह चौधरी है। अब लोग मुझे सिर्फ़ चौधरी कहते हैं। लेकिन उस वक्त चौधरी के नाम से मुझे कोई न जानता था। लोग श्रीनाथ कहते थे।

कप्तान नाक्स अपनी कुर्सी खींचकर मेरे पास आ गये और बोले — तब तो आप मेरे पुराने दोस्त निकले। मुझे अब तक नाम के बदल जाने से धोखा हो रहा था, वर्ना आपका नाम तो मुझे खूब याद है। हाँ, ऐसा याद है कि शायद मरते दम तक भी न भूलूँ क्योंकि यह उसकी आख़िरी वसीयत है।

यह कहते-कहते नाक्स ख़ामोश हो गये और आँखें बन्द करके सर मेज़ पर रख लिया। मेरा आश्चर्य हर क्षण बढ़ता जा रहा था और लेफ़्टिनेण्ट डा० चन्द्रसिंह भी सवाल-भरी नजरों से एक बार मेरी तरफ़ और दूसरी बार कप्तान नाक्स के चेहरे की तरफ़ देख रहे थे।

दो मिनट तक ख़ामोश रहने के बाद कप्तान नाक्स ने सर उठाया और एक लम्बी साँस लेकर बोले — क्यों लेफ़्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हें याद है एक बार एक अंग्रेज़ सिपाही ने तुम्हें बुरी गाली दी थी?

मैंने कहा—हाँ, खूब याद है। वह कारपोरल था, मैंने उसकी शिकायत कर दी थी और उसका कोर्टमार्शल हुआ था। वह कारपोरल के पद से गिरा कर मामूली सिपाही बना दिया गया था। हाँ, उसका नाम भी याद आ गया क्रिप या क्रुप . . .

कप्तान नाक्स ने बात काटते हुए कहा — किरपिन। उसकी और मेरी सूरत मे आपको कुछ मेल दिखायी पड़ता है ? मै ही वह किरपिन हूँ। मेरा नाम सी० नाक्स है, किरपिन नाक्स। जिस तरह उन दिनों आपको लोग श्रीनाथ कहते थे उसी तरह मुझे भी किरपिन कहा करते थे।

अब जो मैने ग़ौर से नाक्स की तरफ देखा तो पहचान गया। बेशक वह किरपिन ही था। मैं आश्चर्य से उसकी ओर ताकने लगा। लुईसा से उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह मेरी समझ में उस वक्त भी न आया।

कप्तान नाक्स बोले — आज मुझे सारी कहानी कहनी पड़ेगी। लेफ़्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हारी वजह से जब मैं कारपोरल से मामूली सिपाही बनाया गया और जिल्लत भी कुछ कम न हुई तो मेरे दिल में ईर्ष्या और प्रतिशोध की लपटें-सी उठने लगी। मै हमेशा इसी फिक्र में रहता था कि किस तरह तुम्हें जलील करूँ, किस तरह अपनी ज़िल्लत का बदला लूँ। मैं तुम्हारी एक-एक हरकत को, एक-एक बात को ऐब ढूंढनेवाली नजरों से देखा करता था। इन दस-बारह सालों में तुम्हारी सूरत बहुत कुछ बदल गयी है और मेरी निगाहों मे भी कुछ फ़र्क आ गया है जिसके कारण मैं तुम्हे पहचान न सका लेकिन उस वक़्त तुम्हारी सूरत हमेशा मेरी आँखों के सामने रहती थी। उस वक़्त मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी तमन्ना यही थी कि किसी तरह तुम्हें भी नीचे गिराऊँ। अगर मुझे मौका मिलता तो शायद मै तुम्हारी जान लेने से भी बाज न आता।

कप्तान नाक्स फिर खामोश हो गये। मै और डाक्टर चन्द्रसिंह टकटकी लगाये कप्तान नाक्स की तरफ़ देख रहे थे।

नाक्स ने फिर अपनी दास्तान शुरू की — उस दिन, रात को जब लुईसा तुमसे बातें कर रही थी, मैं अपने कमरे मे बैठा हुआ तुम्हें दूर से देख रहा था। मुझे उस वक़्त क्या मालूम था कि वह लुईसा है। मै सिर्फ़ यह देख रहा था कि तुम पहरा देते वक़्त किसी औरत का हाथ पकड़े उससे बाते कर रहे हो। उस वक़्त मुझे जितनी पाजीपन से भरी हुई खुशी हुई वह बयान नहीं कर सकता। मैंने सोचा, अब इसे ज़लील करूँगा। बहुत दिनों के बाद बचा फँसे है। अब किसी तरह न छोडूँगा। यह फ़ैसला करके मै कमरे से निकला और पानी में भीगता हुआ तुम्हारी तरफ़ चला।

लेकिन जब तक मै तुम्हारे पास पहुँचूँ लुईसा चली गयी थी। मजबूर होकर मैं अपने कमरे मे लौट आया। लेकिन फिर भी मै निराश न था, मैं जानता था कि तुम झूठ न बोलोगे और जब मैं कमाण्डिग अफसर से तुम्हारी शिकायत करूँगा तो तुम अपना क़सूर मान लोगे। मेरे दिल की आग बुझाने के लिए इतना इत्मीनान काफी था। मेरी आरजू पूरी होने मे अब कोई सदेह न था।

मैंने मुस्कराकर कहा — लेकिन आपने मेरी शिकायत तो नही की? क्या बाद को रहम आ गया?

नाक्स ने जवाब दिया — नही जी, रहम किस मरदूद को आता था। शिकायत न करने का दूसरा ही कारण था। सबेरा होते ही मैंने सबसे पहला काम यही किया कि सीधे कमाण्डिग अफ़सर के पास पहुँचा। तुम्हे याद होगा मै उनके बड़े बेटे राजर्स को घुड़सवारी सिखाया करता था इसलिए वहाँ जाने मे किसी किस्म की झिझक या रुकावट न हुई। जब मैं पहुँचा तो राजर्स और लुईसा दोनों चाय पी रहे थे। आज इतने सबेरे मुझे देखकर राजर्स ने कहा—आज इतनी जल्दी क्यो किरपिन? अभी तो वक़्त नही हुआ? आज बहुत खुश नजर आ रहे हो?

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा — आज का दिन मेरी जिन्दगी मे मुबारक है। आज मुझे अपने पुराने दुश्मन को सजा देने का मौक़ा हाथ आया है। आपको मालूम है न एक राजपूत सिपाही ने कमाण्डिग अफसर से शिकायत करके मेरी तनज़्जुली करा दी थी।

राजर्स ने कहा — हॉ-हॉ, मालूम क्यो नही है। मगर तुमने उसे गाली दी थी।

मैंने किसी क़दर झेपते हुए कहा — मैने गाली नही दी थी, सिर्फ़ ब्लडी कहा था। सिपाहियों मे इस तरह की बदजबानी एक आम बात है मगर उस राजपूत ने मेरी शिकायत कर दी। आज मैने उसे एक सगीन जुर्म में पकड़ पाया है। खुदा ने चाहा तो कल उसका भी कोर्ट-मार्शल होगा। मैंने आज रात को उसे एक औरत से बाते करते देखा है। बिलकुल उस वक़्त जब वह ड्यूटी पर था। वह इस बात से इनकार नही कर सकता। इतना कमीना नही है।

लुईसा के चेहरे का रग कुछ का कुछ हो गया। अजीब पागलपन से मेरी तरफ़ देखकर बोली — तुमने और क्या देखा?

मैंने कहा — जितना मैंने देखा है उतना उस राजपूत को जलील करने के लिए काफी है। ज़रूर उससे किसी से आशनाई है और वह औरत हिन्दोस्तानी नहीं,

कोई योरोपियन लेडी है। मैं क़सम खा सकता हूँ, दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े बिलकुल उसी तरह बाते कर रहे थे, जैसे प्रेमी-प्रेमिका किया करते है।

लुईसा के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। चौधरी, मै कितना कमीना हूँ, इसका अंदाजा तुम खुद कर सकते हो। मैं चाहता हूँ तुम मुझे कमीना कहो। मुझे धिक्कारो। मै दरिन्दे वहशी से भी ज्यादा बेरहम हूँ, काले साँप से भी ज्यादा जहरीला हूँ। वह खड़ी दीवार की तरफ ताक रही थी कि इसी बीच राजर्स का कोई दोस्त आ गया। वह उसके साथ चला गया। लुईसा मेरे साथ अकेली रह गयी तो उसने मेरी ओर प्रार्थना-भरी आँखों से देखकर कहा — किरपिन, तुम उस राजपूत सिपाही की शिकायत मत करना।

मैने ताज्जुब से पूछा — क्यों ?

लुईसा ने सर झुकाकर कहा—इसलिए कि जिस औरत को तुमने उसके साथ बाते करते देखा वह मै ही थी।

मैने और भी चकित होकर कहा — तो क्या तुम उसे...

लुईसा ने बात काटकर कहा — चुप, वह मेरा भाई है। बात यह है मै कल रात को एक जगह जा रही थी; तुमसे छिपाऊँगी नहीं किरपिन, जिसको मैं दिलोजान से ज्यादा चाहती हूँ, उससे रात को मिलने का वादा था। वह मेरे इन्तजार मे पहाड के दामन मे खडा था। अगर मैं न जाती तो उसकी कितनी दिलशिकनी होती। मैं ज्योंही मैगजीन के पास पहुँची, उस राजपूत सिपाही ने मुझे टोक दिया। वह मुझे फ़ौजी कायदे के मुताबिक़ सार्जेण्ट के पास ले जाना चाहता था लेकिन मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मेरी लाज रखने के लिए फौजी क़ानून तोडने को तैयार हो गया। सोचो, उसने अपने सिर कितनी बडी जिम्मेदारी ली। मैंने उसे अपना भाई कहकर पुकारा है और उसने भी मुझे बहन कहा है। सोचो अगर तुम उसकी शिकायत करोगे तो उसकी क्या हालत होगी ? वह नाम न बतलायेगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है। अगर उसके गले पर तलवार भी रख दी जायगी, तो भी वह मेरा नाम न बतायेगा। मैं नही चाहती कि एक नेक काम करने का उसे यह इनाम मिले। तुम उसकी शिकायत हरगिज़ मत करना। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

मैने निर्दय कठोरता से कहा — उसने मेरी शिकायत करके मुझे ज़लील किया है। ऐसा अच्छा मौक़ा पाकर मैं उसे छोडना नहीं चाहता। जब तुमको यक़ीन है कि वह तुम्हारा नाम न बतलायेगा तो फिर उसे जहन्नुम मे जाने दो।

लुईसा ने मेरी तरफ घृणापूर्वक देखकर कहा — चुप रहो किरपिन, ऐसी बातें

मुझसे न करो। मैं इसे कभी गवारा न करूँगी कि मेरी इज़्जत-आबरू के लिए उसे ज़िल्लत और बदनामी का निशाना बनना पड़े। अगर तुम मेरी न मानोगे तो मै सच कहती हूँ, मैं खुदकुशी कर लूँगी।

उस वक़्त तो मै सिर्फ प्रतिशोध का प्यासा था। अब मेरे ऊपर वासना का भूत सवार हुआ। मै बहुत दिनों से दिल मे लुईसा की पूजा किया करता था लेकिन अपनी बात कहने का साहस न कर सकता था। अब उसको बस मे लाने का मुझे मौका मिला। मैंने सोचा अगर यह उस राजपूत सिपाही के लिए जान देने को तैयार है तो निश्चय ही मेरी बात पर नाराज़ नही हो सकती। मैंने उसी निर्दय स्वार्थपरता के साथ कहा — मुझे सख्त अफसोस है मगर अपने शिकार को छोड़ नहीं सकता।

लुईसा ने मेरी तरफ बेकस निगाहों से देखकर कहा — यह तुम्हारा आखिरी फैसला है ?

मैंने निर्दय निर्लज्जता से कहा — नहीं लुईसा, यह आखिरी फैसला नही है। तुम चाहो तो उसे तोड़ सकती हो, यह बिलकुल तुम्हारे इमकान में है। मैं तुमसे कितनी मुहब्बत करता हूँ, यह आज तक शायद तुम्हें मालूम न हो। मगर इन तीन सालों में तुम एक पल के लिए भी मेरे दिल से दूर नहीं हुई। अगर तुम मेरी तरफ़ से अपने दिल को नर्म कर लो, मेरी मुहब्बत की कद्र करो तो मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ। मैं आज एक मामूली सिपाही हूँ और मेरे मुँह से मुहब्बत का निमन्त्रण पाकर शायद तुम दिल मे हँसती होगी, लेकिन एक दिन मैं भी कप्तान हो जाऊँगा और तब शायद हमारे बीच इतनी बड़ी खाई न रहेगी।

लुईसा ने रोकर कहा — किरपिन तुम बडे बेरहम हो, मैं तुमको इतना जालिम न समझती थी। खुदा ने क्यों तुम्हे इतना संगदिल बनाया, क्या तुम्हें एक बेकस औरत पर ज़रा भी रहम नही आता !

मैं उसकी बेचारगी पर दिल में खुश होकर बोला — जो खुद सगदिल हो उसे दूसरों की संगदिली की शिकायत करने का क्या हक है ?

लुईसा ने गम्भीर स्वर मे कहा — मै बेरहम नही हूँ किरपिन, खुदा के लिए इन्साफ़ करो। मेरा दिल दूसरे का हो चुका, मैं उसके बगैर जिन्दा नहीं रह सकती और शायद वह भी मेरे बगैर जिन्दा न रहे। मै अपनी बात रखने के लिए, अपने ऊपर नेकी करनेवाले एक आदमी की आबरू बचाने के लिए अपने ऊपर जबर्दस्ती करके अगर तुमसे शादी कर भी लूँ तो नतीजा क्या होगा ? ज़ोर-ज़बर्दस्ती से मुहब्बत नहीं पैदा होती। मैं कभी तुमसे मुहब्बत न करूँगी...

दोस्तो, अपनी बेशर्मी और बेहयाई का पर्दा फाश करते हुए मेरे दिल को बड़ी सख्त तकलीफ हो रही है। मुझे उस वक़्त वासना ने इतना अधा बना दिया था कि मेरे कानों पर जूँ तक न रेंगी। बोला — ऐसा मत ख़याल करो लुईसा। मुहब्बत अपना असर जरूर पैदा करती है। तुम इस वक्त मुझे न चाहो लेकिन बहुत दिन न गुजरने पायेंगे कि मेरी मुहब्बत रग लायेगी। तुम मुझे स्वार्थी और कमीना समझ रही होगी, समझो। प्रेम स्वार्थी होता ही है, शायद वह कमीना भी होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यह नफरत और बेरुखी बहुत दिनों तक न रहेगी। मैं अपने जानी दुश्मन को छोड़ने के लिए ज्यादा से ज्यादा क़ीमत लूँगा, जो मिल सके।

लुईसा पद्रह मिनट तक भीषण मानसिक यातना की हालत मे खड़ी रही। जब उसकी याद आती है तो जी चाहता है गले में छुरी मार लूँ। आख़िर उसने आँसूभरी निगाहों से मेरी तरफ देखकर कहा — अच्छी बात है किरपिन, अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही। तुम जो क़ीमत चाहते हो, वह मैं देने का वादा करती हूँ। मगर खुदा के लिए इस वक़्त जाओ, मुझे खूब जी भरकर रो लेने दो।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फूट-फूटकर रोने लगे। मैने कहा — अगर आपको यह दर्दभरी दास्तान कहने मे दुःख हो रहा है तो जाने दीजिए।

कप्तान नाक्स ने गला साफ़ करके कहा — नही भाई, वह किस्सा पूरा तो करना ही पडेगा। उसके बाद एक महीने तक मै रोजाना लुईसा के पास जाता, और उसके दिल से अपने प्रतिद्वन्द्वी के खयाल को मिटाने की कोशिश करता। वह मुझे देखते ही कमरे से बाहर निकल आती, खुश हो-होकर बाते करती। यहाँ तक कि मैं समझने लगा कि उसे मुझसे प्यार हो गया है। इसी बीच योरोपियन लड़ाई छिड़ गई। हम और तुम दोनो लड़ाई पर चले गये। तुम फ्रास गये, मैं कमाण्डिग अफसर के साथ मिस्र गया। लुईसा अपने चचा के साथ यही रह गयी। राजर्स भी उसके साथ रह गया। तीन साल तक मैं लाम पर रहा। लुईसा के पास से बराबर ख़त आते रहे। मैं तरक्की पाकर लेफ्टिनेण्ट हो गया और कमाण्डिग अफ़सर कुछ दिन और जिन्दा रहते तो जरूर कप्तान हो जाता। मगर मेरी बदनसीबी से वह एक लड़ाई में मारे गये। आप लोगों को उस लड़ाई का हाल मालूम ही है। उनके मरने के एक महीने बाद मैं छुट्टी लेकर घर लौटा। लुईसा अब भी अपने चचा के साथ ही थी। मगर अफसोस, अब न वह हुस्न था न वह जिन्दादिली, घुलकर काँटा हो गयी थी। उस वक़्त मुझे उसकी हालत देखकर बहुत रज हुआ। मुझे अब मालूम हो गया कि उसकी मुहब्बत कितनी सच्ची और कितनी गहरी थी। मुझसे शादी का

वादा करके भी वह अपनी भावनाओ पर विजय न पा सकी थी। शायद इसी गम मे कुढ़-कुढकर उसकी यह हालत हो गयी थी। एक दिन मैंने उससे कहा — लुईसा, मुझे ऐसा ख़याल होता है कि शायद तुम अपने पुराने प्रेमी को भूल नहीं सकी। अगर मेरा यह ख़याल ठीक है तो मैं उस वादे से तुमको मुक्त करता हूँ। तुम शौक से उसके साथ शादी कर लो। मेरे लिए यही इत्मीनान काफ़ी होगा कि मै दिन रहते घर आ गया। मेरी तरफ़ से अगर कोई मलाल हो तो उसे निकाल डालो।

लुईसा की बडी-बड़ी आँखों से आँसू की बूँदे टपकने लगीं। बोली — वह अब इस दुनिया में नहीं है किरपिन, आज छः महीने हुए वह फ्रांस मे मारे गये। मैं ही उनकी मौत का कारण हुई — यही गम है। फ़ौज से उनका कोई सम्बन्ध न था। अगर वह मेरी ओर से निराश न हो जाते तो कभी फौज मे भर्ती न होते। मरने ही के लिए वह फौज में गये। मगर तुम अब आ गये, मै बहुत जल्द अच्छी हो जाऊँगी। अब मुझमें तुम्हारी बीवी बनने की काबलियत ज्यादा हो गयी। तुम्हारे पहलू में अब कोई काँटा नहीं रहा और न मेरे दिल में कोई गम।

इन शब्दों में व्यंग भरा हुआ था, जिसका आशय यह था कि मैने लुईसा के प्रेमी की जान ली। इसकी सच्चाई से कौन इनकार कर सकता है। इसके प्रायश्चित्त की अगर कोई सूरत थी तो यही कि लुईसा की इतनी ख़ातिरदारी, इतनी दिलजोई करूँ, उस पर इस तरह न्योछावर हो जाऊँ कि उसके दिल से यह दुख निकल जाय।

इसके एक महीने बाद शादी का दिन तय हो गया। हमारी शादी भी हो गयी। हम दोनो घर आये। दोस्तों की दावत हुई। शराब के दौर चले। मैं अपनी खुशनसीबी पर फूला नहीं समाता था और मैं ही क्यों मेरे इष्ट-मित्र सब मेरी खुशकिस्मती पर मुझे बधाई दे रहे थे।

मगर क्या मालूम था तकदीर मुझे यों सब्ज़ बाग़ दिखा रही है, क्या मालूम था कि यह वह रास्ता है, जिसके पीछे जालिम शिकारी का जाल बिछा हुआ है। मैं तो दोस्तों की खातिर-तवाज़ो मे लगा हुआ था, उधर लुईसा अन्दर कमरे में लेटी हुई इस दुनिया से रुखसत होने का सामान कर रही थी। मैं एक दोस्त की बधाई का धन्यवाद दे रहा था कि राजर्स ने आकर कहा — किरपिन, चलो लुईसा तुम्हें बुला रही है। जल्द। उसकी न जाने क्या हालत हो रही है। मेरे पैरों तले से ज़मीन खिसक गयी। दौड़ा हुआ लुईसा के कमरे मे आया।

कप्तान नाक्स की आँखों से फिर आँसू बहने लगे, आवाज फिर भारी हो गयी। ज़रा दम लेकर उन्होंने कहा — अन्दर जाकर देखा तो लुईसा कोच पर लेटी हुई

थी। उसका शरीर ऐंठ रहा था। चेहरे पर भी उसी ऐंठन के लक्षण दिखायी दे रहे थे। मुझे देखकर बोली — किरपिन, मेरे पास आ जाओ। मैने शादी करके अपना वचन पूरा कर दिया। इससे ज्यादा मै तुम्हे कुछ और न दे सकती थी क्योकि मै अपनी मुहब्बत पहले ही दूसरे की भेट कर चुकी हूँ। मुझे माफ़ करना। मैंने जहर खा लिया है और बस कुछ घड़ियों की मेहमान हूँ।

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। दिल पर एक नश्तर-सा लगा। घुटने टेककर उसके पास बैठ गया। रोता हुआ बोला — लुईसा, यह तुमने क्या किया! हाय! क्या तुम मुझे दाग देकर इतनी जल्दी चली जाओगी, क्या अब कोई तदबीर नही है?

फ़ौरन दौड़कर एक डाक्टर के मकान पर गया। मगर आह! जब तक उसे साथ लेकर आऊँ मेरी वफा की देवी, सच्ची लुईसा हमेशा के लिए मुझसे जुदा हो गयी थी। सिर्फ उसके सिरहाने एक छोटा-सा पुर्ज़ा पड़ा हुआ था जिस पर उसने लिखा था — अगर तुम्हें मेरा भाई श्रीनाथ नजर आये तो उससे कह देना, लुईसा मरते वक़्त भी उसका एहसान नही भूली।

यह कहकर नाक्स ने अपनी वास्केट के जेब से एक मख़मली डिबिया निकाली और उसमे से कागज़ का एक पुर्ज़ा निकालकर दिखाते हुए कहा — चौधरी, यही मेरे उस अस्थायी सौभाग्य की स्मृति है जिसे आज तक मैंने जान से ज्यादा सँभालकर रखा है। आज तुमसे परिचय हो गया। मैने समझा था, और दोस्तों की तरह तुम भी लड़ाई मे ख़त्म हो गये होगे, मगर शुक्र है कि तुम जीते-जागते मौजूद हो। यह अमानत तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ। अब अगर तुम्हारे जी मे आये तो मुझे गोली मार दो, क्योंकि उस स्वर्गिक जीव का हत्यारा मै हूँ।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फैलकर कुर्सी पर लेट गये। हम दोनो ही की आँखों से आँसू जारी थे, मगर जल्द ही हमे अपने तात्कालिक कर्तव्य की याद आ गयी। नाक्स को सान्त्वना देने के लिए मैं कुर्सी से उठकर उनके पास गया, मगर उनका हाथ पकड़ते ही मेरे शरीर में कँपकँपी-सी आ गयी। हाथ ठडा था। ऐसा ठडा जैसा आखिरी घड़ियों में होता है। मैंने घबराकर उनके चेहरे की तरफ़ देखा और डाक्टर चन्द्र को पुकारा। डाक्टर साहब ने आकर फ़ौरन उनकी छाती पर हाथ रखा और दर्दभरे लहजे में बोले—दिल की धड़कन बन्द हो गयी।

उसी वक़्त बिजली कड़कड़ा उठी, कड़...कड़...कड़...

—'प्रेमचालीसी' से

# स्वाँग

राजपूत खानदान मे पैदा हो जाने ही से कोई सूरमा नहीं हो जाता और न नाम के पीछे 'सिह' की दुम लगा देने ही से बहादुरी आती है। गजेन्द्र सिह के पुरखे किसी ज़माने मे राजपूत थे इसमें सन्देह की गुजाइश नहीं। लेकिन इधर तीन पुश्तों से तो नाम के सिवा उनमे राजपूती के कोई लक्षग न थे। गजेन्द्र सिंह के दादा वकील थे और जिरह या बहस में कभी-कभी राजपूती का प्रदर्शन कर जाते थे। बाप ने कपड़े की दुकान खोलकर इस प्रदर्शन की भी गुजाइश न रखी और गजेन्द्र सिंह ने तो लुटिया ही डुबो दी। डील-डौल मे भी फर्क आता गया। भूपेन्द्र सिंह का सीना लम्बा-चौड़ा था, नरेन्द्र सिह का पेट लम्वा-चौडा था, लेकिन गजेन्द्र सिह का कुछ भी लम्बा-चौड़ा न था। वह हलके-फुलके, गोरे चिट्टे, ऐनक-बाज़, नाजुक-बदन, फैशनेबुल बाबू थे। उन्हे पढ़ने-लिखने से दिलचस्पी थी।

मगर राजपूत कैसा ही हो उसकी शादी तो राजपूत ख़ानदान ही मे होगी। गजेन्द्र सिंह की शादी जिस खानदान मे हुई थी, उस खानदान में राजपूती जौहर बिलकुल फ़ना न हुआ था। उनके ससुर पेशनर सूबेदार थे। साले शिकारी और कुश्तीबाज़। शादी हुए दो साल हो गये थे, लेकिन अभी तक एक बार भी ससुराल न आ सका। इम्तहानों से फुरसत ही न मिलती थी। लेकिन अब पढ़ाई खतम हो चुकी थी, नौकरी की तलाश थी। इसलिए अबकी होली के मौके पर ससुराल से बुलावा आया तो उसने कोई हीला-हुज्जत न की। सूबेदार की बडे-बड़े अफसरो से जान-पहचान थी, फौजी अफसरो की हुक्काम कितनी कद्र और कितनी इज्जत करते है, यह उसे खूब मालूम था। समझा, मुमकिन है, सूबेदार साहब की सिफारिश से नायब तहसीलदारी मे नामजद हो जाय। इधर श्यामदुलारी से भी साल भर से मुलाकात न हुई थी। एक निशाने से दो शिकार हो रहे थे। नया रेशमी कोट बनवाया और होली के एक दिन पहले ससुराल जा पहुँचा। अपने गराण्डील सालो के सामने बच्चा-सा मालूम होता था।

तीसरे पहर का वक़्त था, गजेन्द्र सिंह अपने सालों से विद्यार्थी काल के कारनामे बयान कर रहा था। फुटबाल में किस तरह एक देव जैसे लम्बे-तड़गे गोरे

को पटखनी दी, हाकी मैच में किस तरह अकेले गोल कर लिया, कि इतने में सूबेदार साहब देव की तरह आकर खडे हो गये और बड़े लडके से बोले — अरे सुनो, तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो। बाबू जी शहर से आये है, इन्हें ले जाकर जरा जगल की सैर करा लाओ। कुछ शिकार-विकार खिलाओ। यहाँ ठेठर-वेठर तो है नही, इनका जी घबराता होगा। वक़्त भी अच्छा है, शाम तक लौट आओगे।

शिकार का नाम सुनते ही गजेन्द्र सिंह की नानी मर गयी। बेचारे ने उम्र भर कभी शिकार न खेला था। यह देहाती उजड्ड लौडे उसे न जाने कहाँ-कहाँ दौड़ायेगे, कही किसी जानवर का सामना हो गया तो कही के न रहे। कौन जाने हिरन ही चोट कर बैठे। हिरन भी तो भागने की राह न पाकर कभी-कभी पलट पडता है। कही भेडिया निकल आये तो काम ही तमाम कर दे। बोले — मेरा तो इस वक़्त शिकार खेलने को जी नही चाहता, बहुत थक गया हूँ।

सूबेदार साहब ने फरमाया — तुम घोडे पर सवार हो लेना। यही तो देहात की बहार है। चुन्नू, जाकर बन्दूक ला, मै भी चलूँगा। कई दिन से बाहर नही निकला। मेरा राइफल भी लेते आना।

चुन्नू और मुन्नू खुश-खुश बन्दूक लेने दौडे, इधर गजेन्द्र की जान सूखने लगी। पछता रहा था कि नाहक इन लौडो के साथ गप-शप करने लगा। जानता कि यह बला सिर पर आनेवाली है, तो आते ही फौरन बीमार बनकर चारपाई पर पड रहता। अब तो कोई हीला भी नहीं कर सकता। सबसे बड़ी मुसीबत घोड़े की सवारी। देहाती घोड़े यों ही थान पर बँधे-बँधे टर्रे हो जाते है और आसन का कच्चा सवार देखकर तो वह और भी शोखियाँ करने लगते है। कही अलफ़ हो गया या मुझे लेकर किसी नाले की तरफ बेतहाशा भागा तो खैरियत नही।

दोनो साले बन्दूके लेकर आ पहुँचे। घोडा भी खिचकर आ गया। सूबेदार साहब शिकारी कपडे पहन कर तैयार हो गये। अब गजेन्द्र के लिए कोई हीला न रहा। उसने घोड़े की तरफ कनखियों से देखा — बार-बार जमीन पर पैर पटकता था, हिनहिनाता था, उठी हुई गर्दन, लाल आँखे, कनौतियाँ खडी, बोटी बोटी फड़क रही थी। उसकी तरफ देखते हुए ड़र लगता था। गजेन्द्र दिल में सहम उठा मगर बहादुरी दिखाने के लिए घोड़े के पास जाकर उसके गर्दन पर इस तरह थपकियाँ दी कि जैसे पक्का शहसवार है, और बोला — जानवर तो जानदार है मगर मुनासिब नहीं मालूम होता कि आप लोग तो पैदल चले और मैं घोड़े पर बैठूं। ऐसा कुछ बहुत थका नहीं हूँ। मै भी पैदल ही चलूँगा, इसका मुझे अभ्यास है।

सूबेदार ने कहा — बेटा, जगल दूर है, थक जाओगे। बडा सीधा जानवर है, बच्चा भी सवार हो सकता है।

गजेन्द्र ने कहा — जी नही, मुझे भी यों ही चलने दीजिये। गप-शप करते हुए चले चलेगे। सवारी मे वह लुत्फ कहाँ। आप बुजुर्ग है, सवार हो जायँ।

चारों आदमी पैदल चले। लोगो पर गजेन्द्र की इस नम्रता का बहुत अच्छा असर हुआ। सभ्यता और सदाचार तो शहरवाले ही जानते है। तिस पर इल्म की बरकत!

थोडी दूर के बाद पथरीला रास्ता मिला। एक तरफ़ हरा भरा मैदान, दूसरी तरफ पहाड़ का सिलसिला। दोनों ही तरफ बबूल, करील, करौदे और ढाक के जगल थे। सूबेदार साहब अपनी फौजी जिन्दगी के पिटे हुए किस्से कहते चले आते थे। गजेन्द्र तेज चलने की कोशिश कर रहा था। लेकिन बार-बार पिछड जाता था। और उसे दो-चार कदम दौडकर उनके बराबर होना पडता था। पसीने से तर हॉफता हुआ, अपनी बेवकूफी पर पछताता चला जाता था। यहॉ आने की ज़रूरत ही क्या थी, श्यामदुलारी महीने-दो महीने मे जाती ही। मुझे इस वक़्त कुत्तों की तरह दौड़ते आने की क्या जरूरत थी। अभी से यह हाल है। शिकार नज़र आ गया तो मालूम नहीं क्या आफत आयेगी। मील-दो मील की दौड़ तो उनके लिए मामूली बात है मगर यहाँ तो कचूमर ही निकल जायगा। शायद बेहोश होकर गिर पडूँ। पैर अभी से मन-मन भर के हो रहे थे।

यकायक रास्ते मे सेमल का एक पेड नजर आया। नीचे लाल-लाल फूल बिछे हुए थे, ऊपर सारा पेड गुलनार हो रहा था। गजेन्द्र वहीं खड़ा हो गया और उस पेड़ को मस्ताना निगाहो से देखने लगा।

चुन्नू ने पूछा — क्या है जीजा जी, रुक कैसे गये?

गजेन्द्र सिंह ने मुग्ध भाव से कहा — कुछ नही, इस पेड का आकर्षक सौन्दर्य देखकर दिल बाग-बाग हुआ जा रहा है। अहा, क्या बहार है, क्या रौनक है, क्या शान है कि जैसे जगल की देवी ने गोधूलि के आकाश को लज्जित करने के लिए केसरिया जोडा पहन लिया हो या ऋषियो की पवित्र आत्माएँ अपनी शाश्वत यात्रा मे यहॉ आराम कर रही हो, या प्रकृति का मधुर सगीत मूर्तिमान होकर दुनिया पर मोहिनी मत्र डाल रहा हो! आप लोग शिकार खेलने जाइए, मुझे इस अमृत से तृप्त होने दीजिए।

दोनों नौजवान आश्चर्य से गजेन्द्र का मुँह ताकने लगे। उनकी समझ ही

में न आया कि यह महाशय कह क्या रहे हैं। देहात के रहनेवाले जगलों मे घूमने-वाले सेमल उनके लिए कोई अनोखी चीज न थी। उसे रोज देखते थे, कितनी ही बार उस पर चढे थे, उसके नीचे दौड़े थे, उसके फूलो की गेंद बनाकर खेले थे, उन पर यह मस्ती कभी न छायी थी, सौन्दर्य का उपभोग करना बेचारे क्या जाने।

सूबेदार साहब आगे बढ़ गये थे। इन लोगो को ठहरा हुआ देखकर लौट आये और बोले — क्यों बेटा, ठहर क्यों गये?

गजेन्द्र ने हाथ जोडकर कहा — आप लोग मुझे माफ कीजिए, मै शिकार खेलने न जा सकूँगा। फूलों की यह बहार देखकर मुझपर मस्ती-सी छा गयी है, मेरी आत्मा स्वर्ग के सगीत का मजा ले रही है। अहा, यह मेरा ही दिल है जो फूल बनकर चमक रहा है। मुझमे भी वही लाली है, वही सौन्दर्य है, वही रस है। मेरे हृदय पर केवल अज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है। किसका शिकार करे? जंगल के मासूम जानवरो का? हमी तो जानवर है, हमी तो चिड़ियाँ है, यह हमारी ही कल्पनाओं का दर्पण है जिसमें भौतिक ससार की झलक दिखायी पड़ रही है। क्या अपना ही खून करे? नही, आप लोग शिकार खेलने जायँ, मुझे इस मस्ती और बहार मे डूबकर इसका आनन्द उठाने दे। बल्कि मै तो प्रार्थना करूँगा कि आप भी शिकार से दूर रहें। ज़िन्दगी खुशियो का खजाना है। उसका खून न कीजिए। प्रकृति के दृश्यों से अपने मानस-चक्षुओ को तृप्त कीजिए। प्रकृति के एक-एक कण मे एक-एक फूल में, एक-एक पत्ती मे इसी आनन्द की किरणे चमक रही है। खून करके आनन्द के इस अक्षय स्रोत को अपवित्र न कीजिए।

इस दार्शनिक भाषण ने सभी को प्रभावित कर दिया। सूबेदार साहब ने चुन्नू से धीमे से कहा — उम्र तो कुछ नही है लेकिन कितना ज्ञान भरा हुआ है! चुन्नू ने भी अपनी श्रद्धा को व्यक्त किया — विद्या से आत्मा जाग जाती है, शिकार खेलना है बुरा।

सूबेदार साहब ने ज्ञानियो की तरह कहा — हाँ बुरा तो है. चलो लौट चलें। जब हरेक चीज़ मे उसी का प्रकाश है, तो शिकारी कौन और शिकार कौन, अब कभी शिकार न खेलूँगा।

फिर वह गजेन्द्र से बोले —- भइया, तुम्हारे उपदेश ने हमारी आँखें खोल दी। कसम खाते है, अब कभी शिकार न खेलेगे।

गजेन्द्र पर मस्ती छाई हुयी थी, उसी नशे की हालत मे बोला — ईश्वर को लाख लाख धन्यवाद है कि उसने आप लोगों को यह सुबुद्धि दी। मुझे खुद शिकार

का कितना शौक था, बतला नही सकता। अनगिनत जगली सूअर, हिरन, तेंदुए, नीलगाये, मगर मारे होगे, एक बार चीते को मार डाला। मगर आज ज्ञान की मदिरा का वह नशा हुआ कि दुनिया का कही अस्तित्व ही नही रहा।

२

होली जलने का मुहूर्त नौ बजे रात को था। आठ ही बजे से गाँव के औरत मर्द, बूढ़े-बच्चे गाते-बजाते कबीरे उडाते होली की तरफ चले। सूबेदार साहब भी बाल-बच्चों को लिये हुए मेहमान के साथ होली जलाने चले।

गजेन्द्र ने अभी तक किसी बडे गाँव की होली न देखी थी। उसके शहर मे तो हर मुहल्ले मे लकडी के मोटे-मोटे दो-चार कुन्दे जला दिये जाते थे, जो कई-कई दिन जलते रहते थे। यहाँ की होली एक लम्बे-चौडे मैदान मे किसी पहाड़ की ऊँची चोटी की तरह आसमान से बाते कर रही थी। ज्योंही पडित जी ने मंत्र पढकर नये साल का स्वागत किया, आतिशबाजी छूटने लगी। छोटे-बडे सभी पटाखे, छछूँदरे, हवाइयाँ छोड़ने लगे। गजेन्द्र के सिर पर से कई छछूँदरे सन-सनाती हुई निकल गयी। हरेक पटाखे पर बेचारा दो-दो चार-चार कदम पीछे हट जाता था और दिल मे इन उजड्ड देहातियो को कोसता था। यह क्या बेहूदगी है, बारूद कही कपडे मे लग जाय, कोई और दुर्घटना हो जाय तो सारी शरारत निकल जाये। रोज ही तो ऐसी वारदाते होती रहती है, मगर इन गँवारो को क्या खबर। यहाँ तो दादा ने जो कुछ किया वही करेगे। चाहे उसमे कुछ तुक हो या न हो!

अचानक नजदीक से एक बमगोले के छूटने की गगनभेदी आवाज़ आयी कि जैसे बिजली कडकी हो। गजेन्द्र सिह चौककर कोई दो फिट ऊँचे उछल गये। अपनी जिन्दगी मे वह शायद कभी इतना न कूदे थे। दिल धक्-धक् करने लगा, गोया तोप के निशाने के सामने खड़े हों। फौरन दोनो कान उँगलियो से बन्द कर लिये और दस कदम और पीछे हट गये।

चुन्नू ने कहा — जीजाजी, आप क्या छोडेगे, क्या लाऊँ?

मुन्नू बोला — हवाइयाँ छोडिए जीजाजी, बहुत अच्छी है। आसमान में निकल जाती है।

चुन्नू — हवाइयाँ बच्चे छोडते है कि यह छोडेगे? आप बमगोला छोड़िए भाई साहब।

गजेन्द्र — भाई, मुझे इन चीजों का शौक नही। मुझे तो ताज्जुब हो रहा है कि बूढ़े भी कितनी दिलचस्पी से आतिशबाज़ी छुड़ा रहे है।

मुन्नू — दो-चार महताबियाँ तो जरूर छोड़िए।

गजेन्द्र को महताबियाँ निरापद जान पडी। उनकी लाल, हरी, सुनहरी चमक के सामने उनके गोरे चेहरे और खूबसूरत बालों और रेशमी कुर्ते की मोहकता कितनी बढ़ जायगी। कोई खतरे की बात भी नही। मज़े से हाथ मे लिये खड़े है, गुल टप-टप नीचे गिर रहा है और सब की निगाहे उनकी तरफ लगी हुई है। उनकी दार्शनिक बुद्धि भी आत्मप्रदर्शन की लालसा से मुक्त न थी। फ़ौरन महताबी ले ली, उदासीनता की एक अजब शान के साथ। मगर पहली ही महताबी छोड़ना शुरू की थी कि दूसरा बमगोला छूटा। आसमान काँप उठा। गजेन्द्र को ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कान के पर्दे फट गये या सिर पर कोई हथौडा-सा गिर पडा। महताबी हाथ से छूटकर गिर पड़ी और छाती धडकने लगी। अभी इस धमाके से सम्हलने न पाये थे कि दूसरा धमाका हुआ। जैसे आसमान फट पडा। सारे वायुमण्डल मे कम्पन-सा आ गया, चिड़ियाँ घोंसलों से निकल-निकल शोर मचाती हुई भागी, जानवर रस्सियाँ तुडा-तुड़ाकर भागे और गजेन्द्र भी सिर पर पाँव रखकर भागे, सरपट, और सीधे घर पर आकर दम लिया। चुन्नू और मुन्नू दोनों घबड़ा गये। सूबेदार साहब के होश उड़ गये। तीनों आदमी बगटुट दौड़े हुए गजेन्द्र के पीछे चले। दूसरो ने जो उन्हे भागते देखा तो समझे शायद कोई वारदात हो गयी। सब के सब उनके पीछे हो लिये। गाँव में एक प्रतिष्ठित अतिथि का आना मामूली बात न थी। सब एक-दूसरे से पूछ रहे थे — मेहमान को हो क्या गया? माजरा क्या है? क्यों यह लोग दौड़े जा रहे है?

एक पल मे सैकड़ो आदमी सूबेदार साहब के दरवाज़े पर हाल-चाल पूछने के लिए जमा हो गये। गाँव का दामाद कुरूप होने पर भी दर्शनीय और बदहाल होते हुए भी सबका प्रिय होता है।

सूबेदार ने सहमी हुई आवाज से पूछा — तुम वहाँ से क्यों भाग आये, भइया?

गजेन्द्र को क्या मालूम था कि उसके चले आने से यह तहलका मच जायगा। मगर उसके हाज़िर दिमाग ने जवाब सोच लिया था और जवाब भी ऐसा कि गाँव वालों पर उसकी अलौकिक दृष्टि की धाक जमा दे।

बोला — कोई खास बात न थी, दिल में कुछ ऐसा ही आया कि यहाँ से भाग जाना चाहिए।

'नही कोई बात जरूर थी।'

'आप पूछकर क्या करेगे? मैं उसे जाहिर करके आपके आनन्द में विघ्न नहीं डालना चाहता।'

'जब तक बतला न दोगे बेटा, हमें तसल्ली न होगी। सारा गाँव घबराया हुआ है।'

गजेन्द्र ने फिर सूफियों का-सा चेहरा बनाया, आँखे बन्द कर लीं, जम्हाइयाँ लीं और आसमान की तरफ देखकर बोले — बात यह है कि ज्यों ही मैंने महताबी हाथ मे ली, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसे मेरे हाथ से छीनकर फेंक दिया।. मैंने कभी आतिशबाजियाँ नहीं छोड़ी, हमेशा उनको बुरा-भला कहता रहा हूँ। आज मैने वह काम किया जो मेरी अन्तरात्मा के खिलाफ़ था। बस गजब ही तो हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। शर्म से मेरी गर्दन झुक गयी और मैं इसी हालत में वहाँ से भागा। अब आप लोग मुझे माफ करे, मैं आपके जशन में न शरीक हो सकूँगा।

सूबेदार साहब ने इस तरह गर्दन हिलायी कि जैसे उनके सिवा वहाँ कोई इस अध्यात्म का रहस्य नहीं समझ सकता। उनकी आँखें कह रही थी — आती है तुम लोगो की समझ में यह बाते? तुम भला क्या समझोगे, हम भी कुछ-कुछ ही समझते हैं।

होली तो नियत समय पर जलायी गयी थी मगर आतिशबाजियाँ नदी में डाल दी गयीं। शरीर लड़कों ने कुछ इसलिए छिपाकर रख लीं कि गजेन्द्र चले जायँगे तो मज़े से छुड़ायेंगे।

श्यामदुलारी ने एकान्त मे कहा — तुम तो वहाँ से खूब भागे!

गजेन्द्र अकड़कर बोले — भागता क्यों, भागने की तो कोई बात न थी।

'मेरी तो जान निकल गयी कि न मालूम क्या हो गया। तुम्हारे ही साथ मै भी दौड़ी आयी। टोकरी भर आतिशबाजी पानी मे फेक दी गयी।'

'यह तो रुपये को आग में फूँकना है।'

'होली मे भी न छोड़ें तो कब छोडे। त्योहार इसीलिए तो आते है।'

'त्योहार में गाओ-बजाओ, अच्छी-अच्छी चीजे पकाओ-खाओ, खैरात

करो, यार-दोस्तों से मिलो, सबसे मुहब्बत से पेश आओ, बारूद उड़ाने का नाम त्योहार नही है।

रात को बारह बज गये थे। किसी ने दरवाजे पर धक्का मारा। गजेन्द्र ने चौंककर पूछा — यह धक्का किसने मारा?

श्यामा ने लापरवाही से कहा — बिल्ली-विल्ली होगी।

कई आदमियों के फट फट करने की आवाजें आयीं, फिर किवाड़ पर धक्का पड़ा। गजेन्द्र को कँपकँपी छूट गयी, लालटेन लेकर दराज से झाँका तो चेहरे का रंग उड़ गया — चार-पाँच आदमी कुर्ते पहने, पगड़ियाँ बाँधें, दाढियाँ लगाये कधे पर बन्दूके रखे, किवाड़ को तोड़ डालने की जबर्दस्त कोशिश मे लगे हुए थे। गजेन्द्र कान लगाकर उनकी बाते सुनने लगा —

'दोनो सो गये है, किवाड तोड डालो, माल आलमारी मे है।'

'और अगर दोनों जाग गये?'

'औरत क्या कर सकती है, मर्द को चारपाई से बाँध देगे।'

'सुनते हैं गजेन्द्र सिह कोई बडा पहलवान है।'

'कैसा ही पहलवान हो, चार हथियारबन्द आदमियो के सामने क्या कर सकता है।'

गजेन्द्र के काटो तो बदन मे खून नही! श्यामदुलारी से बोले — यह डाकू मालूम होते हैं। अब क्या होगा, मेरे तो हाथ-पाँव काँप रहे है!

'चोर-चोर पुकारो, जाग हो जायगी, आप भाग जायँगे। नहीं मै चिल्लाती हूँ। चोर का दिल आधा।'

'ना ना कही ऐसा गजब न करना। इन सबों के पास बन्दूके है। गाँव में इतना सन्नाटा क्यों है? घर के आदमी क्या हुए?'

'भइया और मुन्नू दादा खलिहान मे सोने गये है, काका दरवाजे पर पड़े होंगे, उनके कानों पर तोप छूटे तब भी न जागेंगे।'

'इस कमरे में तो कोई दूसरी खिड़की भी तो नही है कि बाहर आवाज़ पहुँचे। मकान है या कैदखाने।'

'मैं तो चिल्लाती हूँ।'

'अरे नहीं भाई, क्यों जान देने पर तुली हो। मै तो सोचता हूँ, हम दोनो चुप साधकर लेट जायँ और आँखे बन्द कर ल। बदमाशों को जो कुछ ले जाना हो ले जायँ, जान तो बचे। देखो किवाड़ हिल रहे हैं। कही टूट न जायँ। हे

ईश्वर, कहाँ जायँ, इस मुसीबत में तुम्हारा ही भरोसा है। क्या जानता था कि यह आफत आनेवाली है, नही आता ही क्यों? बस चुप्पी ही साध लो। अगर हिलाये-विलाये तो भी साँस मत लेना।'

'मुझसे तो चुप्पी साधकर पडा न रहा जायगा।'

'जेवर उतारकर रख क्यो नहीं देती, शैतान जेवर ही तो लेगे।'

'जेवर तो न उतारूँगी चाहे कुछ ही क्यों न हो जाय।'

'क्यों जान देने पर तुली हुई हो?'

'खुशी से तो जेवर न उतारूँगी, जबरर्दस्ती की और बात है।'

'ख़ामोश, सुनो सब क्या बाते कर रहे हैं।'

बाहर से आवाज आयी—किवाड खोल दो नही तो हम किवाड़ तोड़कर अन्दर आ जायँगे।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी की मिन्नत की—मेरी बात मानो श्यामा, जेवर उतारकर रख दो, मैं वादा करता हूँ बहुत जल्द नये जेवर बनवा दूँगा।

बाहर से आवाज आयी—क्यों, शामते आयी है! बस एक मिनट की मुहलत और देते हैं, अगर किवाड़ न खोले तो ख़ैरियत नही।

गजेन्द्र ने श्यामदुलारी से पूछा—खोल दूँ?

'हाँ बुला लो, तुम्हारे भाई-बन्द है न? वह दरवाज़े को बाहर से ढकेलते है, तुम अन्दर से बाहर को ठेलो।'

'और जो दरवाजा मेरे ऊपर गिर पड़े? पाँच पाँच जवान है!'

'वह कोने मे लाठी रखी है, लेकर खड़े हो जाओ।'

'तुम पागल हो गयी हो।'

'चुन्नी दादा होते तो पाँचों को गिराते।'

'मै लट्ठबाज नहीं हूँ।'

'तो आओ मुँह ढाँपकर लेट जाओ, मैं उन सबो से समझ लूँगी।'

'तुम्हें तो औरत समझकर छोड़ देंगे, माथे मेरे जायगी।'

'मै तो चिल्लाती हूँ।'

'तुम मेरी जान लेकर छोडोगी!'

'मुझसे तो अब सब्र नहीं होता, मैं किवाड़ खोले देती हूँ।'

उसने दरवाजा खोल दिया। पाँचों चोर कमरे में भड़भडाकर घुस आये।

एक ने अपने साथी से कहा — मै इस लौडे को पकड़े हुए हूँ, तुम औरत के सारे गहने उतार लो।

दूसरा बोला — इसने तो आँखे बन्द कर लीं। अरे, तुम आँखे क्यों नही खोलते जी?

तीसरा — यार, औरत तो हसीन है!

चौथा — सुनती है ओ मेहरिया, जेवर दे दे नही गला घोट दूँगा।

गजेन्द्र दिल मे बिगड़ रहे थे, यह चुडैल जेवर क्यों नही उतार देती।

श्यामदुलारी ने कहा — गला घोंट दो, चाहे गोली मार दो, ज़ेवर न उतारूँगी।

पहला — इसे उठा ले चलो। यों न मानेगी, मन्दिर खाली है।

दूसरा—बस यही मुनासिब है, क्यों रे छोकरी, हमारे साथ चलेगी?

श्यामदुलारी — तुम्हारे मुँह में कालिख लगा दूँगी।

तीसरा — न चलेगी तो इस लौडे को ले जाकर बेच डालेगे।

श्याम — एक-एक के हथकड़ी लगवा दूँगी।

चौथा — क्यों इतना बिगड़ती है महारानी, जरा हमारे साथ चली क्यो नही चलती। क्या हम इस लौडे से भी गये-गुजरे है। क्या रह जायगा, अगर हम तुझे ज़बरदस्ती उठा ले जायँगे। यों सीधी तरह नही मानती हो। तुम जैसी हसीन औरत पर जुल्म करने को जी नही चाहता।

पाँचवाँ — या तो सारे जेवर उतारकर दे दो या हमारे साथ चलो।

श्यामदुलारी — काका आ जायँगे तो एक-एक की खाल उधेड़ डालेंगे।

पहला — यह यों न मानेगी, इस लौडे को उठा ले चलो। तब आप ही पैरो पड़ेगी।

दो आदमियो ने एक चादर से गजेन्द्र के हाथ-पाँव बाँधे। गजेन्द्र मुर्दे की तरह पड़े हुए थे साँस तक न आती थी, दिल में झुँझला रहे थे — हाय कितनी बेवफ़ा औरत है, जेवर न देगी चाहे यह सब मुझे जान से मार डाले। अच्छा ज़िन्दा बचूँगा तो देखूँगा। बात तक तो पूछूँ नही।

डाकुओं ने गजेन्द्र को उठा लिया और लेकर आँगन में जा पहुँचे तो श्यामदुलारी दरवाजे पर खड़ी होकर बोली — इन्हे छोड़ दो तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।

पहला — पहले ही क्यों न राजी हो गयी थी। चलेगी न?

श्यामदुलारी — चलूँगी। कहती तो हूँ।

तीसरा — अच्छा तो चल। हम इसे छोड़े देते है।

दोनो चोरों ने गजेन्द्र को लाकर चारपाई पर लिटा दिया और श्यामदुलारी को लेकर चल दिये। कमरे मे सन्नाटा छा गया। गजेन्द्र ने डरते-डरते आँखे खोली। कोई नजर न आया। उठकर दरवाजे से झॉका। सहन मे भी कोई न था। तीर की तरह निकलकर सदर दरवाजे पर आये लेकिन बाहर निकलने का हौसला न हुआ। चाहा कि सूबेदार साहब को जगाये, मुँह से आवाज़ न निकली।

उसी वक़्त कहक़हे की आवाज आयी। पॉच औरते चुहल करती हुई श्यामदुलारी के कमरे मे आयीं। गजेन्द्र का वहॉ पता न था।

एक — कहॉ चले गये ?

श्यामदुलारी — बाहर चले गये होगे।

दूसरी—बहुत शर्मिन्दा होगे।

तीसरी — डरके मारे उनकी सॉस तक बन्द हो गयी थी।

गजेन्द्र ने बोलचाल सुनी तो जान मे जान आयी। समझे शायद घर मे जाग हो गयी। लपककर कमरे के दरवाज़े पर आये और बोले — ज़रा देखिए श्यामा कहॉ है। मेरी तो नीद ही न खुली। जल्द किसी को दौड़ाइए।

यकायक उन्हीं औरतो के बीच मे श्यामा को खडे हँसते देखकर हैरत मे आ गये।

पाँचो सहेलियो ने हँसना और तालियाँ पीटना शुरू कर दिया।

एक ने कहा — वाह जीजा जी, देख ली आपकी बहादुरी।

श्यामदुलारी — तुम सब की सब शैतान हो।

तीसरी — बीबी तो चोरों के साथ चली गयी और आपने सॉस तक न ली !

गजेन्द्र समझ गये, बडा धोखा खाया। मगर जबान के शेर थे, फौरन बिगडी बात बना ली, बोले — तो क्या करता, तुम्हारा स्वॉग बिगाड देता ! मै भी इस तमाशे का मजा ले रहा था। अगर सबों को पकडकर मूँछे उखाड़ लेता तो तुम कितनी शर्मिन्दा होतीं। मै इतना बेरहम नही हूँ।

सब की सब गजेन्द्र का मुँह देखती रह गयी।

—'वारदात' से

# सैलानी बंदर

जीवनदास नाम का एक गरीब मदारी अपने बन्दर मन्नू को नचाकर अपनी जीविका चलाया करता था। वह और उसकी स्त्री बुधिया दोनो ही मन्नू को बहुत प्यार करते थे। उनके कोई सन्तान न थी, मन्नू ही उनके स्नेह और प्रेम का पात्र था। दोनो उसे अपने साथ खाना खिलाते और अपने साथ सुलाते थे। उनकी दृष्टि में मन्नू से अधिक प्रिय कोई वस्तु न थी। जीवनदास उसके लिए एक गेद लाया था। मन्नू आँगन में गेद खेला करता था। उसके भोजन करने को एक मिट्टी का प्याला था, ओढने को कम्बल का एक टुकड़ा, सोने को एक बोरिया, और उचकने के लिए छप्पर मे एक रस्सी। मन्नू इन वस्तुओं पर जान देता था। जब तक उसके प्याले मे कोई चीज न रख दी जाय वह भोजन न करता था। अपना टाट और कम्बल का टुकडा उसे शाल और गद्दे से भी प्यारा था। उसके दिन बडे सुख से बीतते थे। वह प्रात काल रोटियाँ खाकर मदारी के साथ तमाशा करने जाता था। वह नकले करने मे इतना निपुण था कि दर्शकवृद तमाशा देखकर मुग्ध हो जाते थे। लकड़ी हाथ मे लेकर वृद्धों की भाँति चलता, आसन मारकर पूजा करता, तिलक-मुद्रा लगाता, फिर पोथी बगल मे दबाकर पाठ करने चलता। ढोल बजाकर गाने की नकल इतनी मनोहर थी कि दर्शक लोग लोट-पोट हो जाते थे। तमाशा खतम हो जाने पर वह सब को सलाम करता था, लोगों के पैर पकड़कर पैसे वसूल करता था। मन्नू का कटोरा पैसों से भर जाता था। इसके उपरान्त कोई मन्नू को एक अमरूद खिला देता, कोई उसके सामने मिठाई फेंक देता। लड़कों का तो उसे देखने से जी ही न भरता था। वे अपने-अपने घर से दौड़-दौडकर रोटियाँ लाते और उसे खिलाते थे। मुहल्ले के लोगों के लिए भी मन्न मनोरजन की एक सामग्री था। जब वह घर पर रहता तो एक न एक आदमी आकर उससे खेलता रहता। खोचेवाले फेरी करते हुए उसे कुछ न कुछ दे देते थे। जो बिना दिये निकल जाने की चेष्टा करता उससे भी मन्नू पैर पकड कर वसूल कर लिया करता था, क्योंकि घर पर वह खुला रहता था। मन्नू को अगर चिढ़ थी तो कुत्तों से। उसके मारे उधर से कोई कुत्ता न निकलने पाता था

और यदि कोई आ जाता, तो मन्नू उसे अवश्य ही दो-चार कनेठियाँ और झापड़ लगाता था। उसके सर्वप्रिय होने का यह एक और कारण था। दिन को कभी-कभी बुधिया धूप मे लेट जाती, तो मन्नू उसके सिर की जुएँ निकालता और वह उसे गाना सुनाती। वह जहाँ कही जाती थी वहाँ मन्नू उसके पीछे-पीछे जाता था। माता और पुत्र मे भी इससे अधिक प्रेम न हो सकता था।

२

एक दिन मन्नू के जी मे आया कि चलकर कही फल खाना चाहिए। फल खाने को मिलते तो थे पर वृक्षों पर चढ़कर डालियों पर उचकने, कुछ खाने और कुछ गिराने में कुछ और ही मजा था। बन्दर विनोदशील होते ही हैं, और मन्नू मे इसकी मात्रा कुछ अधिक थी भी। कभी पकड-धकड़ और मारपीट की नौबत न आयी थी। पेडों पर चढकर फल खाना उसको स्वाभाविक जान पडता था। यह न जानता था कि वहाँ प्राकृतिक वस्तुओं पर भी किसी न किसी की छाप लगी हुई है, जल, वायु और प्रकाश पर भी लोगो ने अधिकार जमा रक्खा है, फिर बाग-बगीचों का तो कहना ही क्या। दोपहर को जब जीवनदास तमाशा दिखाकर लौटा, तो मन्नू लबा हुआ। वह यों भी मुहल्ले मे चला जाया करता था, इसलिए किसी को सदेह न हुआ कि वह कही चला गया। उधर वह घूमता-घामता, खपरैलों पर उछलता-कूदता एक बगीचे मे जा पहुँचा। देखा तो फलो से पेड लदे हुए है। आँवले, कटहल, लीची, आम, पपीते वगैरह लटकते देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। मानो वे वृक्ष उसे अपनी ओर बुला रहे थे कि खाओ, जहाँ तक खाया जाय, यहाँ किसी की रोक-टोक नहीं है। तुरत एक छलाँग मारकर वह चहारदीवारी पर चढ़ गया। दूसरी छलाँग में पेड़ों पर जा पहुँचा। कुछ आम खाये, कुछ लीचियाँ खायीं। खुश हो-होकर गुठलियाँ इधर-उधर फेकना शुरू किया। फिर सबसे ऊँची डाल पर जा पहुँचा और डालियों को हिलाने लगा। पके आम ज़मीन पर बिछ गये। खड़खड़ाहट हुई तो माली दोपहर की नीद से चौका और मन्नू को देखते ही उसे पत्थरो से मारने लगा। पर या तो पत्थर उसके पास तक पहुँचते ही न थे या वह सिर और शरीर हिलाकर पत्थरो को बचा जाता था। बीच-बीच मे बागबान को दाँत निकालकर डराता भी था। कभी मुँह बनाकर उसे काटने की धमकी भी देता था। माली बँदरघुडकियों से डरकर भागता था, और फिर पत्थर लेकर आ जाता था। यह कौतुक देखकर मुहल्ले के बालक जमा हो गये, और शोर मचाने लगे —

ओ बदरवा लोयलाय, बाल उखाड़ूँ टोयटाय।
ओ बदर तेरा मुँह है लाल, पिचके-पिचके तेरे गाल।

मर गई नानी बदर की,
टूटी टाँग मुछंदर की।

मन्नू को इस शोर-गुल मे बडा आनन्द आ रहा था। वह आधे फल खा-खाकर नीचे गिराता था और लड़के लपक-लपककर चुन लेते और तालियाँ बजा-बजाकर कहते थे —

बंदर मामू और,
कहाँ तुम्हारा ठौर।

माली ने जब देखा कि यह विप्लव शात होने नही आता, तो जाकर अपने स्वामी को खबर दी। वह हजरत पुलिस विभाग के कर्मचारी थे। सुनते ही जामे से बाहर हो गये। बदर की इतनी मजाल कि मेरे बगीचे मे आकर ऊधम मचावे। बँगले का किराया मैं देता हूँ, कुछ बदर नही देता। यहाँ कितने ही असहयोगियो को लदवा दिया, अखबारवाले मेरे नाम से काँपते है, बदर की क्या हस्ती है! तुरन्त बन्दूक उठायी, और बगीचे मे आ पहुँचे। देखा मन्नू एक पेड को जोर-ज़ोर से हिला रहा है। लाल हो गये, और उसकी तरफ बन्दूक तानी। बन्दूक देखते ही मन्नू के होश उड गये। उस पर आज तक किसी ने बन्दूक नहीं तानी थी। पर उसने बन्दूक की आवाज सुनी थी, चिड़ियों को मारे जाते देखा था और न देखा होता तो भी बन्दूक से उसे स्वाभाविक भय होता। पशु-बुद्धि अपने शत्रुओं से स्वतः सशक हो जाती है। मन्नू के पाँव मानों सुन्न हो गये। वह उछलकर किसी दूसरे वृक्ष पर भी न जा सका। उसी डाल पर दबककर बैठ गया। साहब को उसकी यह कला पसन्द आयी, दया आ गयी। माली को भेजा, जाकर बन्दर को पकड़ ला। माली दिल मे तो डरा, पर साहब के गुस्से को जानता था, चुपके-से वृक्ष पर चढ गया और हजरत बदर को एक रस्सी में बाँध लाया। मन्नू साहब के बरामदे मे एक खम्भे से बाँध दिया गया। उसकी स्वच्छन्दता का अन्त हो गया। सन्ध्या तक वही पडा हुआ करुण स्वर मे कूँ-कूँ करता रहा। साँझ हो गयी तो एक नौकर उसके सामने एक मुट्ठी चने डाल गया। अब मन्नू को अपनी स्थिति के परिवर्तन का ज्ञान हुआ। न कम्बल, न टाट, ज़मीन पर पडा बिसूर रहा था। चने उसने छुए भी नहीं। पछता रहा था कि कहाँ से कहाँ फल खाने निकला।

मदारी का प्रेम याद आया। बेचारा मुझे खोजता फिरता होगा। मदारिन प्याले मे रोटी और दूध लिये मुझे मन्नू, मन्नू पुकार रही होगी। हा विपत्ति! तूने मुझे कहाँ लाकर छोडा। रात भर वह जागता और बार-बार खम्भे के चक्कर लगाता रहा। साहब का कुत्ता टामी बार-बार डराता और भूँकता था। मन्नू को उस पर ऐसा क्रोध आता था कि पाऊँ तो मारे चपतों के चौधिया दूँ, पर कुत्ता निकट न आता, दूर ही से गरजकर रह जाता था।

रात गुजरी, तो साहब ने आकर मन्नू को दो-तीन ठोकरे जमायी। सुअर! रात-भर चिल्ला-चिल्लाकर नीद हराम कर दी। आँख तक न लगी! बचा, आज भी तुमने गुल मचाया, तो गोली मार दूँगा। यह कहकर वह तो चले गये, अब नटखट लड़को की बारी आयी। कुछ घर के और कुछ बाहर के लड़के जमा हो गये। कोई मन्नू को मुँह चिढ़ाता, कोई उस पर पत्थर फेकता और कोई उसको मिठाई दिखाकर ललचाता था। कोई उसका रक्षक न था, किसी को उस पर दया न आती थी। आत्मरक्षा की जितनी क्रियाएँ उसे मालूम थी, सब करके हार गया। प्रणाम किया, पूजा-पाठ किया लेकिन इसका उपहार यही मिला कि लड़कों ने उसे और भी दिक़ करना शुरू किया। आज किसी ने उसके सामने चने भी न डाले। और यदि डाले भी होते तो वह खा न सकता। शोक ने भोजन की इच्छा न रक्खी थी।

सध्या समय मदारी पता लगाता हुआ साहब के घर पहुँचा। मन्नू उसे देखते ही ऐसा अधीर हुआ, मानो ज़ंजीर तोड़ डालेगा, खभे को गिरा देगा। मदारी ने जाकर मन्नू को गले से लगा लिया और साहब से बोला — 'हजूर भूल-चूक तो आदमी से भी हो जाती है, यह तो पशु है। मुझे चाहे जो सज़ा दीजिए पर इसे छोड़ दीजिए। सरकार, यही मेरी रोटियों का सहारा है। इसके बिना हम दो प्राणी भूखों मर जायँगे। इसे हमने लड़के की तरह पाला है। जब से यह भागा है, मदारिन ने दाना-पानी छोड़ दिया है। इतनी दया कीजिए सरकार, आपका अकबाल सदा रोशन रहे, इससे भी बड़ा ओहदा मिले, कलम चाक हो, मुद्दई बेबाक हो। आप है सपूत, सदा रहे मज़बूत। आपके बैरी को दाबे भूत।' मगर साहब ने दया का पाठ न पढ़ा था। घुडककर बोले — 'चुप रह पाजी, टें-टें करके दिमाग चाट गया। बचा, बन्दर छोड़कर बाग़ का सत्यानाश करा डाला, अब खुशामद करने चले हो। जाकर देख तो, इसने कितने फल खराब कर दिये। अगर इसे ले जाना चाहता है तो दस रुपया लाकर मेरी नज़र कर नही तो चुपके से अपनी राह पकड़।

यह या तो यहीं बँधे-बँधे मर जायगा, या कोई इतने दाम देकर इसे ले जायगा।'

मदारी निराश होकर चला गया। दस रुपये कहाँ से लाता? बुधिया से जाकर हाल कहा। बुधिया को अपनी तरस पैदा करने की शक्ति पर ज़्यादा भरोसा था। बोली—'बस, देख ली तुम्हारी करतूत! जाकर लाठी-सी मारी होगी। हाकिमों से बड़े दाँव-पेच की बातें की जाती है, तब कही जाकर वे पसीजते है। चलो मेरे साथ, देखो छुडा लाती हूँ कि नही।' यह कहकर उसने मन्नू का सब सामान एक गठरी मे बाँधा और मदारी के साथ साहब के पास आयी। मन्नू अब की इतने ज़ोर से उछला कि खभा हिल उठा। बुधिया ने कहा—'सरकार, हम आपके द्वार पर भीख माँगने आये है, यह बदर हमको दान दे दीजिए।'

साहब—हम दान देना पाप समझते है।

मदारिन—हम देस-देस घूमते है। आपका जस गावेगे।

साहब—हमे जस की चाह या परवाह नहीं है।

मदारिन—भगवान आपको इसका फल देगे।

साहब—मै नही जानता भगवान कौन बला है।

मदारिन—महाराज, क्षमा की बड़ी महिमा है।

साहब—हमारे यहाँ सबसे बड़ी महिमा दण्ड की है।

मदारिन—हुज़ूर, आप हाकिम है। हाकिमो का काम है, न्याय करना। फलो के पीछे दो आदमियो की जान न लीजिए। न्याय ही से हाकिम की बड़ाई होती है।

साहब—हमारी बड़ाई क्षमा और न्याय से नही है और न न्याय करना हमारा काम है, हमारा काम है मौज करना।

बुधिया की एक भी युक्ति इस अहकार-मूर्ति के सामने न चली। अत को निराश होकर वह बोली—हुज़ूर इतना हुक्म तो दे दें कि ये चीजे बन्दर के पास रख दूँ। इन पर यह जान देता है।

साहब—मेरे यहाँ यह कूड़ा-करकट रखने की जगह नही है। आखिर बुधिया हताश होकर चली गयी।

३

टामी ने देखा, मन्नू कुछ बोलता नही, तो शेर हो गया। भूँकता-भूँकता मन्नू के पास चला आया। मन्नू ने लपककर उसके दोनों कान पकड़ लिये और इतने तमाचे लगाये कि उसे छठी का दूध याद आ गया। उसकी चिल्लाहट सुनकर साहब

कमरे से बाहर निकल आये और मन्नू के कई ठोकरे लगायी। नौकर को आज्ञा दी कि इस बदमाश को तीन दिन तक कुछ खाने को मत दो।

सयोग से उसी दिन एक सर्कस कपनी का मैनेजर साहब से तमाशा करने की आज्ञा लेने आया। उसने मन्नू को बँधे, रोनी सूरत बनाये बैठे देखा, तो पास आकर उसे पुचकारा। मन्नू उछलकर उसकी टाँगो से लिपट गया, और उसे सलाम करने लगा। मैनेजर समझ गया कि यह पालतू जानवर है। उसे अपने तमाशे के लिए एक बन्दर की ज़रूरत थी। साहब से बातचीत की, उसका उचित मूल्य दिया, और अपने साथ ले गया। किन्तु मन्नू को शीघ्र ही विदित हो गया कि यहाँ मै और भी बुरा फँसा। मैनेजर ने उसे बदरो के रखवाले को सौप दिया। रखवाला बडा निष्ठुर और क्रूर प्रकृति का प्राणी था। उसके अधीन और भी कई बन्दर थे। सभी उसके हाथो कष्ट भोग रहे थे। वह उनके भोजन की सामग्री खुद खा जाता था। अन्य बन्दरों ने मन्नू का सहर्ष स्वागत नही किया। उसके आने से उनमे बड़ा कोलाहल मचा। अगर रखवाले ने उसे अलग न कर दिया होता तो वे सब उसे नोचकर खा जाते। मन्नू को अब नयी विद्या सीखनी पडी। पैरगाडी पर चढ़ना, दौडते घोडे की पीठ पर दो टाँगो से खड़े हो जाना, पतली रस्सी पर चलना इत्यादि बड़ी ही कष्टप्रद साधनाएँ थी। मन्नू को ये सब कौशल सीखने मे बहुत मार खानी पडती। जरा भी चूकता तो पीठ पर डंडा पड़ जाता। उससे अधिक कष्ट की बात यह थी कि उसे दिन भर एक कठघरे में बन्द रक्खा जाता था, जिसमे कोई उसे देख न ले। मदारी के यहाँ भी उसे तमाशा ही दिखाना पड़ता था किन्तु उस तमाशे और इस तमाशे में बड़ा अंतर था। कहाँ वे मदारी की मीठी-मीठी बाते, उसका दुलार और प्यार और कहाँ यह कारावास और डडों की मार! ये काम सीखने मे उसे इसलिए और भी देर लगती थी कि वह अभी तक जीवनदास के पास भाग जाने के विचार को भूला न था। नित्य इसी ताक में रहता कि मौका पाऊँ और निकल जाऊँ। लेकिन वहाँ जानवरों पर बड़ी कड़ी निगाह रक्खी जाती थी। बाहर की हवा तक न मिलती थी, भागने की तो बात ही क्या! काम लेनेवाले सब थे, मगर भोजन की खबर लेनेवाला कोई भी न था। साहब की क़ैद से तो मन्नू जल्द ही छूट गया था, लेकिन इस कैद मे तीन महीने बीत गये। शरीर घुल गया, नित्य चिन्ता घेरे रहती थी, पर भागने का कोई ठीक-ठिकाना न था। जी चाहे या न चाहे, उसे काम अवश्य करना पड़ता था। स्वामी को पैसो से काम था, वह जिये चाहे मरे।

सयोगवश एक दिन सर्कस के पडाल मे आग लग गई। सर्कस के नौकर-चाकर सब जुआरी थे। दिन भर जुआ खेलते, शराब पीते और लडाई-झगडा करते थे। इन्ही झझटो मे एकाएक गैस की नली फट गयी। हाहाकार मच गया। दर्शक-वृन्द जान लेकर भागे। कंपनी के कर्मचारी अपनी चीजे निकालने लगे। पशुओ की किसी को खबर न रही। सर्कस मे बडे-बडे भयकर जीव-जन्तु तमाशा करते थे। दो शेर, कई चीते, एक हाथी, एक रीछ था। कुत्तो, घोडो तथा बन्दरो की सख्या तो इससे कही अधिक थी। कंपनी धन कमाने के लिए अपने नौकरों की जान को कोई चीज नही समझती थी। ये सब के सब जीव इस समय तमाशे के लिए खोले गये थे। आग लगते ही वे चिल्ला-चिल्लाकर भागे। मन्नू भी भाग खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा कि पंडाल जला या बचा।

मन्नू कूदता-फाँदता सीधे उसी घर पहुँचा, जहाँ जीवनदास रहता था, लेकिन द्वार बन्द था। खपरैल पर चढ़कर वह घर मे घुस गया, मगर किसी आदमी का चिन्ह नहीं मिला। वह स्थान, जहाँ वह सोता था, और जिसे बुधिया गोबर से लीपकर साफ रक्खा करती थी, अब घास-पात से ढँका हुआ था। वह लकड़ी जिस पर चढकर वह कूदा करता था, दीमको ने खा ली थी। मुहल्लेवाले उसे देखते ही पहचान गये। शोर मच गया — मन्नू आया, मन्नू आया।

मन्नू उस दिन से रोज सन्ध्या के समय उसी घर मे आ जाता, और अपने पुराने स्थान पर लेट रहता। वह दिन भर मुहल्ले मे घूमा करता था, कोई कुछ दे देता, तो खा लेता था, मगर किसी की कोई चीज नही छूता था। उसे अब भी आशा थी कि मेरा स्वामी यहाँ मुझसे अवश्य मिलेगा। रातो को उसके कराहने की करुण ध्वनि सुनायी देती थी। उसकी दीनता पर देखनेवालों की आँखो से आँसू निकल पड़ते थे।

इस प्रकार कई महीने बीत गये। एक दिन मन्नू गली में बैठा हुआ था, इतने मे लड़को का शोर सुनायी दिया। उसने देखा, एक बुढिया नगे सिर, नगे बदन, एक चीथडा कमर मे लपेटे, सिर के बाल छिटकाए, भुतनियों की तरह चली आ रही है, और कई लड़के उसके पीछे पत्थर फेकते 'पगली नानी !' पगली नानी ! ! की हॉक लगाते, तालियाँ बजाते चले आ रहे है। वह रह-रहकर रुक जाती है और लड़कों से कहती है — 'मैं पगली नही हूँ, मुझे पगली क्यों कहते हो ?' आखिर बुढ़िया जमीन पर बैठ गयी, और बोली — 'बताओ, मुझे पगली क्यों कहते हो ?'

उसे लडकों पर लेशमात्र भी क्रोध न आता था। वह न रोती थी, न हँसती। पत्थर लग भी जाते तो चुप हो जाती थी।

एक लडके ने कहा—तू कपडे क्यो नही पहनती ? तू पागल नही तो और क्या है ?

बुढ़िया—कपडे जाड़े मे सर्दी से बचने के लिए पहने जाते है। आजकल तो गर्मी है।

लड़का—तुझे शर्म नही आती ?

बुढ़िया—शर्म किसे कहते है बेटा, इतने साधू-संन्यासी नगे रहते है, उनको पत्थर से क्यों नही मारते ?

लडका—वे तो मर्द है।

बुढिया—क्या शर्म औरतो ही के लिए है, मर्दो को शर्म नही आनी चाहिए ?

लड़का—तुझे जो कोई जो कुछ दे देता है, उसे तू खा लेती है। तू पागल नही तो और क्या है ?

बुढ़िया—इसमे पागलपन की क्या बात है बेटा ? भूख लगती है, पेट भर लेती हूँ।

लड़का—तुझे कुछ विचार नही है। किसी के हाथ की चीज़ खाते घिन नही आती ?

बुढिया—घिन किसे कहते है बेटा, मै भूल गयी।

लड़का—सभी को घिन आती है, क्या बता दूँ, घिन किसे कहते है।

दूसरा लडका—तू पैसे क्यो हाथ से फेक देती है ? कोई कपड़े देता है तो क्यों छोडकर चल देती है ? पगली नही तो और क्या है ?

बुढ़िया—पैसे, कपड़े लेकर क्या करूँ बेटा ?

लडका—और लोग क्या करते है ? पैसे-रुपये का लालच सभी को होता है।

बुढिया—लालच किसे कहते है बेटा, मै भूल गयी !

लड़का—इसी से तो तुझे पगली नानी कहते है। तुझे न लोभ है, न घिन है, न विचार है, न लाज है। ऐसो ही को पागल कहते है।

बुढिया—तो यही कहो, मै पगली हूँ।

लड़का—तुझे क्रोध क्यो नही आता ?

बुढ़िया—क्या जाने बेटा। मुझे तो क्रोध नहीं आता। क्या किसी को क्रोध भी आता है ? मैं तो भूल गयी।

कई लड़कों ने इस पर 'पगली, पगली' का शोर मचाया और बुढ़िया उसी तरह शात भाव से आगे चली। जब वह निकट आयी तो मन्नू उसे पहचान गया। यह तो मेरी बुधिया है। वह दौड़कर उसके पैरों से लिपट गया। बुढ़िया ने चौंक-कर मन्नू को देखा, पहचान गयी। उसने उसे छाती से लगा लिया।

४

मन्नू को गोद में लेते ही बुधिया को अनुभव हुआ कि मै नग्न हूँ। मारे शर्म के वह खडी न रह सकी। बैठकर एक लड़के से बोली—बेटा, मुझे कुछ पहनने को दोगे?

लड़का—तुझे तो लाज ही नही आती न?

बुढ़िया—नही बेटा, अब तो आ रही है। मुझे न जाने क्या हो गया था।

लड़कों ने फिर 'पगली पगली' का शोर मचाया। तो उसने पत्थर फेंककर लड़कों को मारना शुरू किया। उनके पीछे दौड़ी।

एक लड़के ने पूछा—अभी तो तुझे क्रोध नहीं आता था। अब क्यों आ रहा है?

बुढ़िया—क्या जाने क्यों अब क्रोध आ रहा है। फिर किसी ने पगली कहा तो बदर से कटवा दूँगी।

एक लड़का दौड़कर एक फटा हुआ कपड़ा ले आया। बुधिया ने वह कपड़ा पहन लिया। बाल समेट लिये। उसके मुख पर जो एक अमानुषी आभा थी, उसकी जगह चिन्ता का पीलापन दिखायी देने लगा। वह रो-रोकर मन्नू से कहने लगी—बेटा, तुम कहाँ चले गये थे। इतने दिन हो गये, हमारी सुध न ली। तुम्हारा मदारी तुम्हारे ही वियोग में परलोक सिधारा, मै भिक्षा माँगकर अपना पेट पालने लगी, घर-द्वार तहस-नहस हो गया। तुम थे तो खाने की, पहनने की, गहने की, घर की इच्छा थी, तुम्हारे जाते ही सब इच्छाएँ लुप्त हो गयी। अकेली भूख तो सताती थी, पर ससार में और किसी बात की चिन्ता न थी। तुम्हारा मदारी मरा, पर मेरी आँखों मे आँसू न आये। वह खाट पर पडा कराहता था और मेरा कलेजा ऐसा पत्थर हो गया था कि उसकी दवा-दारू की कौन कहे, उसके पास खड़ी तक न होती थी। सोचती थी—यह मेरा कौन है। अब आज वे सब बातें और अपनी वह दशा याद आती है, तो यही कहना पड़ता है कि मै सचमुच पगली हो गयी थी, और लड़कों का मुझे पगली नानी कहकर चिढाना ठीक ही था।

यह कहकर बुधिया मन्नू को लिये हुए शहर के बाहर एक बाग में गयी, जहाँ वह एक पेड के नीचे रहती थी। वहाँ थोडी-सी पुआल बिछी हुई थी। इसके सिवा मनुष्य के बसेरे का और कोई चिन्ह न था।

आज से मन्नू बुधिया के पास रहने लगा। वह सबेरे घर से निकल जाता और नकले करके, भीख माँगकर बुधिया के खाने भर को नाज या रोटियाँ ले आता था। पुत्र भी अगर होता तो वह इतने प्रेम से माता की सेवा न करता। उसकी नकलों से खुश होकर लोग उसे पैसे भी देते थे। उन पैसो से बुधिया खाने की चीजे बाजार से लाती थी।

लोग बुधिया के प्रति बदर का यह प्रेम देखकर चकित हो जाते और कहते थे कि यह बदर नही, कोई देवता है।

माधुरी फरवरी, १९२४

# नबी का नीति-निर्वाह

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोडे ही दिन हुए थे, दस-पॉच पडोसियां और निकट-सम्बन्धियों के सिवा अभी और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था। यहाँ तक कि उनकी लडकी जैनब और दामाद अबुलआस भी, जिनका विवाह इलहाम के पहले ही हो चुका था, अभी तक नये धर्म मे दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गयी थी और अपने पिता के ज्ञानोपदेश सुने थे। वह दिल से इसलाम पर श्रद्धा रखती थी, लेकिन अबुलआस के कारण दीक्षा लेने का साहस न कर सकती थी। अबुलआस विचार-स्वातन्त्र्य का समर्थक था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के से खजूर, मेवे आदि जिन्सें लेकर बन्दरगाहो को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, श्रमशील मनुष्य था, जिसे इहलोक से इतनी फुर्सत न मिलती थी कि परलोक की चिन्ता करे। जैनब के सामने कठिन समस्या थी, आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर, न धर्म को छोड सकती थी, न पति को। घर के अन्य प्राणी मूर्तिपूजक थे और इस नये सम्प्रदाय के शत्रु। जैनब अपनी लगन को छुपाती रहती, यहाँ तक कि पति से भी अपनी व्यथा न कह सकती। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे। बात-बात पर खून की नदियाँ बहती थी। खान्दान के खान्दान मिट जाते थे। अरब की अलौकिक वीरता पारस्परिक कलहों मे व्यक्त होती थी। राजनैतिक सगठन का नाम न था। खून का बदला खून, धनहानि का बदला खून, अपमान का बदला खून— मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था मे अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार को मुहम्मद और उनके गिने-गिनाये अनुयायियों से टकराना था। उधर प्रेम का बन्धन पैरो को जकड़े हुए था। नये धर्म मे प्रविष्ट होना अपने प्राण-प्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरैश जाति के लोग ऐसे मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझते थे। माया और धर्म की दुविधा मे पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

२

धर्म का अनुराग एक दुर्लभ वस्तु है, किन्तु जब उसका वेग उठता है तब बडे

प्रचण्ड रूप से उठता है। दोपहर का समय था। धूप इतनी तेज़ थी कि उसकी ओर ताकते हुए आँखो से चिनगारियाँ निकलती थी। हजरत मुहम्मद अपने मकान में चिन्तामग्न बैठे हुए थे। निराशा चारो ओर अन्धकार के रूप मे दिखायी देती थी। खुदैजा भी पास ही बैठी हुई एक फटा कुर्त्ता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन के भेट हो चुकी थी। विधर्मियों का दुराग्रह दिनोदिन बढता जाता था। इसलाम के अनुयायियों को भाँति-भाँति की यातनाएँ दी जा रही थी। स्वय हज़रत को घर से निकलना मुश्किल था। खौफ होता था कि कहीं लोग उन पर ईंट-पत्थर न फेंकने लगें। खबर आती थी कि आज अमुक मुसलमान का घर लूटा गया, आज फलां को लोगो ने आहत किया। हज़रत ये खबरे सुन-सुनकर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हज़रत ने फ़रमाया — मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ पर अपने दोस्तो की तकलीफ नही देखी जाती।

खुदैजा — हमारे चले जाने से तो इन बेचारो को और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम से कम आपके पास आकर रो तो लेते है। मुसीबत मे रोने का सहारा कम नही होता।

हज़रत — तो मै अकेले थोडे ही जाना चाहता हूँ। मैं अपने सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए है। कोई किसी की मदद को नही पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने की हिम्मत न होगी। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते है जिस पर चढ़ने का किसी को साहस न होगा।

सहसा ज़ैनब घर मे दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था न कोई आदमजाद, ऐसा मालूम होता था कि कहीं से भगी चली आ रही है। खुदैजा ने उसे गले लगाकर कहा — क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है?

ज़ैनब ने अपने अन्तर्द्वन्द्व की कथा सुनायी और पिता से दीक्षा की प्रार्थना की। हज़रत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले — ज़ैनब, मेरे लिए इससे ज़्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन डरता हूँ कि तुम्हारा क्या हाल होगा।

ज़ैनब — या हज़रत, मैने खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय किया है। दुनिया के लिए अपनी आकबत को नहीं खोना चाहती।

हजरत — जैनब, खुदा की राह मे कॉटे है।

जैनब — लगन को कॉटो की परवा नही होती।

हजरत — ससुराल से नाता टूट जायगा।

जैनब — खुदा से तो नाता जुड जायगा।

हजरत — और अबुलआस ?

जैनब की ऑखो में आँसू डबडबा आये। कातर स्वर में बोली — अब्बाजान, इसी बेड़ी ने इतने दिनो मुझे बॉध रक्खा था, नही तो मै कबकी आपकी शरण मे आ चुकी होती। मैं जानती हूँ, उनसे जुदा होकर जीती न रहूँगी और शायद उनको भी मेरा वियोग दुस्सह्य होगा, पर मुझे विश्वास है कि एक दिन जरूर आयेगा जब वे खुदा पर ईमान लायेगे और मुझे फिर उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत — बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सत्यवक्ता है, किन्तु उसका अहकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रक्खे। वह तक़दीर को नही मानता, आत्मा को नही मानता, स्वर्ग और नरक को नही मानता। कहता है, 'सृष्टि-सचालन के लिए खुदा की जरूरत ही क्या है ? हम उससे क्यों डरें ? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है।' ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नही ला सकता। अधर्म को जीतना आसान है, पर जब वह दर्शन का रूप धारण कर लेता है तो अजेय हो जाता है।

जैनब ने निश्चयात्मक भाव से कहा — हजरत, आत्मा का उपकार जिसमें हो मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच मे न रहने दूँगी।

हजरत — खुदा तुझ पर दया करे बेटी। तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया। यह कहकर उन्होने जैनब को प्रेम से गले लगा लिया।

३

दूसरे दिन जैनब को जामा मसजिद मे यथाविधि कलमा पढ़ाया गया।

क़ुरैशियो ने जब यह ख़बर पायी तब वे जल उठे। ग़जब खुदा का। इसलाम ने तो बड़े-बड़े घरो पर हाथ साफ करना शुरू किया। अगर यही हाल रहा तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ जायगी कि उसका सामना करना कठिन हो जायगा। लोग अबुलआस के घर पर जमा हुए। अबूसिफ़ियान ने, जो इसलाम के शत्रुओं मे सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति था (और जो बाद को इसलाम पर ईमान लाया), अबुलआस से कहा — तुम्हे अपनी बीवी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुल० —हर्गिज नही।

अबूसि० —तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे?

अबु० —हर्गिज नहीं।

अबूसि० —तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पडेगा।

अबु० —हर्गिज नही, आप मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अबूसि० —हर्गिज नही।

अबु० —क्या यह नही हो सकता कि मेरे घर में रहकर वह अपने मतानुसार खुदा की बन्दगी करे?

अबूसि० —हर्गिज नही।

अबु० —मेरी कौम मेरे साथ इतनी भी सहानुभूति न करेगी?

अबूसि० —हर्गिज नही।

अबु० —तो फिर आप लोग मुझे अपने समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है, आप लोग चाहे जो सजा दे वह सब मंजूर है। पर मैं अपनी बीवी को तलाक नही दे सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता, वह भी अपनी बीवी की।

अबूसि० —कुरैश मे क्या और लड़कियाँ नही है?

अबु० —जैनब की-सी कोई नही।

अबूसि० —हम ऐसी लड़कियाॅ बता सकते है जो चाॅद को लज्जित कर दें।

अबु० —मैं सौन्दर्य का उपासक नहीं।

अबूसि० —ऐसी लड़कियाॅ दे सकता हूँ जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करे जो मुँह से फूल झरे, भोजन ऐसा बनाये कि बीमार को भी रुचि हो, और सीने-पिरोने मे इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दे।

अबु० —मैं इन गुणों में किसी का भी उपासक नही। मै प्रेम और केवल प्रेम का भक्त हूँ और मुझे विश्वास है, कि जैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में नही मिल सकता।

अबूसि० —प्रेम होता तो तुम्हे छोड़कर दग़ा न करती।

अबु० —मैं नही चाहता कि प्रेम के लिए कोई अपने आत्मस्वातन्त्र्य का त्याग करे।

अबूसि० —इसका आशय यह है कि तुम समाज मे समाज के विरोधी बनकर

रहना चाहते हो। अपनी आँखों की क़सम, समाज अपने ऊपर यह अत्याचार न होने देगा, मैं समझाये जाता हूँ, न मानोगे तो रोओगे।

४

अबूसिफ़ियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सम्हाली और ससुराल जा पहुँचे। शाम हो गयी थी। हजरत अपने मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज़ पढ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज़ होती रही, ग़ौर से देखते रहे। आदमियों की कतारो का एक साथ उठना-बैठना और सिजदे करना देखकर उनके दिल पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। वह अज्ञात भाव से संगत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ का एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी भक्ति-प्रवाह मे आ गये।

जब नमाज़ खत्म हो गयी तब अबुलआस ने हजरत से कहा—मै जैनब को बिदा कराने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर कहा—तुम्हे मालूम नही कि वह खुदा और रसूल पर ईमान ला चुकी है?

अबु०—जी हाँ, मालूम है।

हज़०—इसलाम ऐसे सम्बन्धो का निषेध करता है।

अबु०—क्या इसका यह मतलब है कि ज़ैनब ने मुझे तलाक दे दिया?

हज़०—अगर यही मतलब हो तो?

अबु०—तो कुछ नहीं, जैनब को खुदा और रसूल की बन्दगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा। लेकिन उस दशा में अगर कुरैश जाति आपसे लड़ने के लिए तैयार हो जाय तो इसका इलज़ाम मुझ पर न होगा। हाँ, अगर जैनब मेरे साथ जायगी तो कुरैश के क्रोध का भाजन मैं हूँगा। आप और आपके मुरीदों पर कोई आफ़त न आयेगी।

हज०—तुम दबाव मे आकर जैनब को खुदा की तरफ़ से फेरने का तो यत्न न करोगे?

अबु०—मैं किसी के धर्म में विघ्न डालना लज्जाजनक समझता हूँ।

हज़०—तुम्हें लोग जैनब को तलाक़ देने पर तो मजबूर न करेगे?

अबु०—मैं ज़ैनब को तलाक देने के पहले ज़िन्दगी को तलाक दे दूँगा।

हज़रत को अबुलआस की बातो से इत्मीनान हो गया। आस को हरम में जैनब से मिलने का अवसर मिला। आस ने पूछा—जैनब, मै तुम्हे साथ ले चलने आया हूँ। धर्म के बदलने से कही तुम्हारा मन तो नहीं बदल गया?

जैनब रोती हुई पति के पैरो पर गिर पडी और बोली—स्वामी, धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ। चाहे यहाँ रहूँ, चाहे वहाँ। लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा मे रहने देगा?

अबु०—यदि समाज न रहने देगा तो मै समाज ही से निकल जाऊँगा। दुनिया मे रहने के लिए बहुत स्थान है। रहा मै, तुम खूब जानती हो कि किसी के धर्म मे विघ्न डालना मेरे सिद्धान्त के प्रतिकूल है।

ज़ैनब चली तो खुदैजा ने उसे बदख्शाँ के लालो का एक बहुमूल्य हार बिदाई मे दिया।

५

इसलाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिन-दिन बढने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र मे प्रवेश किया। शत्रुओ ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करना शुरू की। दूर-दूर के कबीलो से मदद माँगी गयी। इसलाम मे इतनी शक्ति न थी कि शस्त्रबल से शत्रुओ को दबा सके। हज़रत मुहम्मद ने अन्त को मक्का छोड़कर मदीने की राह ली। उनके कितने ही भक्तों ने उनके साथ हिजरत की। मदीने मे पहुँचकर मुसलमानों मे एक नयी शक्ति, एक नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निःशक होकर धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की ज़रूरत न थी। आत्मविश्वास बढा। इधर भी विधर्मियों का सामना करने की तैयारियाँ होने लगी।

एक दिन अबुलआस ने आकर स्त्री से कहा—ज़ैनब, हमारे नेताओ ने इस-लाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी।

ज़ैनब ने घबराकर कहा—अब तो वे लोग यहाँ से चले गये फिर जिहाद की क्या ज़रूरत?

अबु०—मक्का से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये, उनकी ज़्यादतियाँ बढ़ती जा रही है। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नही। मेरा उस जिहाद मे शरीक होना बहुत ज़रूरी है।

जैन० — अगर तुम्हारा दिल तुम्हे मजबूर कर रहा है तो शौक से जाओ लेकिन मुझे भी साथ लेते चलो।

अबु० — अपने साथ ?

जैन० — हाँ, मै वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-शुश्रूषा करूँगी।

अबु० — शौक से चलो।

६

घोर सग्राम हुआ। दोनों दलो ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई भाई से, मित्र मित्र से, बाप बेटे से लडा। सिद्ध हो गया कि धर्म का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ है।

दोनों दलवाले वीर थे। अन्तर यह था कि मुसलमानों मे नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी, दिलो मे वह आत्मविश्वास था जो नवजात सम्प्रदायों का लक्षण है। विधर्मियो मे बलिदान का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लडाई होती रही। मुसलमानो की सख्या बहुत कम थी, पर अन्त मे उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियो में अधिकाश काम आये, कुछ घायल हुए और कुछ कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्ही क़ैदियो मे थे।

जैनब को ज्योही यह मालूम हुआ उसने हजरत मुहम्मद की सेवा मे अबुलआस का फदिया (मुक्तिधन) भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुदैजा ने उसे दिया था। वह अपने पिता को उस धर्म-सकट मे न डालना चाहती थी जो मुक्ति-धन के अभाव की दशा मे उन पर पडता। हजरत ने यह हार देखा तो खुदैजा की याद ताजी हो गयी। मधुर स्मृतियो से चित्त चचल हो उठा। अगर खुदैजा जीवित होती तो उसकी सिफारिश का असर उन पर इससे ज्यादा न होता जितना इस हार से हुआ, मानो स्वय खुदैजा इस हार के रूप मे आयी थी। अबुलआस के प्रति हृदय कोमल हो गया। उसे सजा दी गयी, यह हार ले लिया गया तो खुदैजा की आत्मा को कितना दुख होगा। उन्होने क़ैदियों का फैसला करने के लिए एक पचायत नियुक्त कर दी थी। यद्यपि पचो मे सभी हजरत के इष्ट-मित्र थे, पर इसलाम की शिक्षा उनके दिलों से पुरानी आदते, पुरानी चेष्टाएँ न मिटा सकी थी। उनमें अधिकाश ऐसे थे जिनको अबुलआस से पारिवारिक द्वेष था, जो उनसे किसी पुराने खून का बदला लेना चाहते थे। इसलाम ने उनमें क्षमा और अहिंसा के भावों को

अकुरित न किया हो, पर साम्यवाद को उनके रोम-रोम में प्रविष्ट कर दिया था। वे धर्म के विषय मे किसी के साथ रू-रिआयत न कर सकते थे, चाहे वह हजरत का निकट सम्बन्धी ही क्यों न हो। अबुलआस सिर झुकाये पचो के सामने खड़े थे और कैदी पेश होते थे। उनके मुक्तिधन का मुलाहिजा होता था और वे छोड दिये जाते थे। अबुलआस को कोई पूछता ही न था, यद्यपि वह हार एक तश्तरी मे पचों के सम्मुख रक्खा हुआ था। हजरत के मन मे बार-बार प्रबल इच्छा होती थी कि सहाबियो से कहे यह हार कितना बहुमूल्य है। पर धर्म का बन्धन, जिसे उन्होने स्वय प्रतिष्ठित किया था, मुँह से एक शब्द भी न निकलने देता था। यहाँ तक कि समस्त बन्दीजन मुक्त हो गये, अबुलआस अकेला सिर झुकाये खडा रहा — हजरत मुहम्मद के दामाद के साथ इतना लिहाज भी न किया गया कि वैठने की आज्ञा तो दे दी जाती। सहसा जैद ने अबुलआस की ओर कटाक्ष करके कहा — देखा, खुदा इसलाम की कितनी हिमायत करता है। तुम्हारे पास हमसे पँचगुनी सेना थी, पर खुदा ने तुम्हारा मुँह काला किया। देखा या अब भी आँखे नही खुली?

अबुलआस ने विरक्त भाव से उत्तर दिया — जब आप लोग यह मानते है कि खुदा सबका मालिक है तब वह अपने एक बन्दे को दूसरे की गर्दन काटने मे मदद न देगा। मुसलमानो ने इसलिए विजय पायी कि गलत या सही उन्हे अटल विश्वास है कि मृत्यु के बाद हम स्वर्ग में जायँगे। खुदा को आप नाहक बदनाम करते है।

जैद — तुम्हारा मुक्ति-धन काफी नही है।

अबुलआस — मैं इस हार को अपनी जान से ज्यादा कीमती समझता हूँ। मेरे घर मे इससे बहुमूल्य और कोई वस्तु नही है।

जैद — तुम्हारे घर मे जैनब हैं, जिन पर ऐसे सैकड़ों हार कुर्बान किये जा सकते है।

अबु० — तो आपकी मशा है कि मेरी बीवी मेरा फ़दिया हो। इससे तो यह कही बेहतर है कि मैं कत्ल कर दिया जाता। अच्छा अगर मै वह फदिया न दूँ तो?

जैद — तो तुम्हें आजीवन यहाँ गुलामो की तरह रहना पड़ेगा। तुम हमारे रसूल के दामाद हो, इस रिश्ते से हम तुम्हारा लिहाज करेंगे, पर तुम गुलाम ही समझे जाओगे।

हज़रत मुहम्मद निकट बैठे हुए ये बाते सुन रहे थे। वे जानते थे जैनब और आस एक दूसरे पर जान देते है। उनका वियोग दोनों ही के लिए घातक होगा। दोनो घुल-घुलकर मर जायँगे। सहाबियो को एक बार पच चुन लेने के बाद उनके

फ़ैसले मे दख़ल देना नीति-विरुद्ध था। इससे इसलाम की मर्यादा भग होती थी। कठिन आत्मवेदना हुई। यहाँ बैठे न रह सके। उठकर अन्दर चले गये। उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था कि जैनब की गर्दन पर तलवार फेरी जा रही है। जैनब की दीन, करुणापूर्ण मूर्ति आँखो के सामने खडी मालूम होती थी। पर मर्यादा, निर्दय, निष्ठुर मर्यादा यह बलिदान माँग रही थी।

अबुलआस के सामने भी विषम समस्या थी। इधर गुलामी का अपमान था, उधर वियोग की दारुण वेदना थी।

अन्त में उन्होंने निश्चय किया, यह वेदना सहूँगा, अपमान न सहूँगा। प्रेम को गौरव पर समर्पित कर दूँगा। बोले — मुझे आपका फैसला मजूर है। जैनब मेरा फदिया होगी।

७

निश्चय किया गया कि जैद अबुलआस के साथ जायें और आबादी से बाहर ठहरे। आस घर जाकर तुरन्त जैनब को वहाँ भेज दें। आस पर इतना विश्वास था कि वे अपना वचन पूरा करेंगे।

आस घर पहुँचे तो जैनब उनसे गले मिलने दौड़ी। आस हट गये और कातर स्वर से बोले — नही जैनब, मै तुमसे गले न मिलूँगा। मै तुम्हे अपने फदिये के रूप मे दे आया। अब मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नही है। यह तुम्हारा हार है, ले लो, और फौरन यहाँ से चलने की तैयारी करो। जैद तुम्हे लेने को आये है।

जैनब पर वज्र-सा गिर पड़ा। पैर बँध गये, वही चित्र की भाँति खड़ी रह गयी। वज्र ने रक्त को जला दिया, आँसुओं को सुखा दिया, चेतना ही न रही, रोती और बिलखती क्या। एक क्षण के बाद उसने एक बार माथा ठोका—निर्दय तकदीर के सामने सिर झुका दिया। चलने को तैयार हो गयी। घोर नैराश्य इतना दुखदायी नही होता जितना हम समझते है। उसमे एक रसहीन शान्ति होती है। जहाँ सुख की आशा नहीं वहाँ दुख का कष्ट कहाँ!

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए उतनी होती थी। वह पितागृह की स्वामिनी थी। धन था, मान था, गौरव था, धर्म था, प्रेम न था। आँख में सब कुछ था, केवल पुतली न थी। पति के वियोग मे रोया करती थी। ज़िन्दा थी मगर ज़िन्दा दरगोर। तीन साल तीन युगो की भाँति बीते। घण्टे, दिन और वर्ष साधारण व्यवहारो के लिए है, प्रेम के यहाँ समय का माप कुछ और ही है।

उधर अबुलआस द्विगुण उत्साह के साथ धनोपार्जन मे लीन हुआ, महीनों

घर न आता, हँसना-बोलना सब भूल गया। धन ही उसके जीवन का एक मात्र आधार था; उसके प्रणय-वचित हृदय को किसी विस्मृतिकारक वस्तु की चाह थी। नैराश्य और चिन्ता बहुधा शराब से शान्त होती है, प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया। धन के आवरण मे छिपा हुआ वियोग-दुख था, माया के पर्दे मे छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

जाड़ो के दिन थे। नाड़ियो में रुधिर जमा जाता था। अबुलआस मक्का से माल लादकर एक काफिले के साथ चला। रकफ़ों का एक दल भी साथ था। कुरैशियों ने मुसलमानो के कई क़ाफ़िले लूट लिये थे। अबुलआस को सशय था कि मुसलमानो का आक्रमण होगा, इसलिए उन्होने मदीने की राह छोडकर एक दूसरा रास्ता अख्तियार किया। पर दुर्दैव, मुसलमानो को टोह मिल ही गयी। जैद ने सत्तर चुने हुए आदमियो के साथ काफिले पर धावा कर दिया। धन के भक्त धर्म के सेवको से क्या बाजी ले जाते। सत्तर ने सात सौ को मार भगाया। कुछ मरे, अधिकाश भागे, कुछ कैद हो गये। मुसलमानों को अतुल धन हाथ लगा। कैदी घाते मे मिले। अबुलआस फिर कैद हो गया।

८

कैदियों के भाग्य-निर्णय के लिए नीति के अनुसार पंचायत चुनी गयी।

जैनब को यह ख़बर मिली तो आशाएँ जाग उठी; आशा मरती नहीं केवल सो जाती है। पिंजरे मे बन्द पक्षी की भाँति तड़फड़ाने लगी, पर क्या करे, किससे कहे, अबकी तो फ़दिये का भी कोई ठिकाना न था। या खुदा, क्या होगा!

पचो ने अबकी हज़रत मुहम्मद ही को अपना प्रधान बनाया। हज़रत ने इनकार किया, पर अन्त में उनके आग्रह से विवश हो गये।

अबुलआस सिर झुकाये बैठे हुए थे। हजरत ने एक बार उन पर करुणासूचक दृष्टि डाली, फिर सिर झुका लिया।

पचायत शुरू हुई। अन्य कैदियो के घरों से मुक्तिधन आ गया था। वे मुक्त किये गये। अबुलआस के घर से मुक्तिधन न आया था। हज़रत ने हुक्म दिया — इनका सारा माल और असबाब जब्त कर लिया जाय और ये उस वक़्त तक बन्दी रहे जब तक इन्हे कोई छुडाने न आये। उनके अतिम शब्द ये थे — अबुलआस, इसलाम की रणनीति के अनुसार तुम गुलाम हो। तुम्हें बाज़ार मे बेचकर रुपया

मुसलमानो मे तकसीम होना चाहिए था। पर तुम ईमानदार आदमी हो, इसलिए तुम्हारे साथ इतनी रिआयत की गयी।

· जैनब दरवाजे के पास आड मे बैठी हुई थी। हजरत का यह फैसला सुनकर रो पडी, तब घर से बाहर निकल आयी और अबुलआस का हाथ पकडकर बोली — अगर मेरा शौहर गुलाम है तो मै उसकी लौडी हूँ। हम दोनो साथ बिकेंगे या साथ कैद होंगे।

हज़रत — जैनब, मुझे लज्जित मत करो, मैं वही कर रहा हूँ जो मेरा कर्तव्य है; न्याय पर बैठनेवाले मनुष्य को प्रेम और द्वेष दोनो ही से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि इस नीति का सस्कार मैने ही किया है, पर अब मै उसका स्वामी नही, दास हूँ। अबुलआस से मुझे जितना प्रेम है यह खुदा के सिवा और कोई नही जान सकता। यह हुक्म देते हुए मुझे जितना मानसिक और आत्मिक कष्ट हो रहा है उसका अनुमान हर एक पिता कर सकता है। पर खुदा का रसूल न्याय और नीति को अपने व्यक्तिगत भावो से कलकित नही कर सकता।

सहाबियो ने हजरत की न्याय-व्याख्या सुनी तो मुग्ध हो गये। अबूजफर ने अर्ज की — हजरत, आपने अपना फ़ैसला सुना दिया, लेकिन हम सब इस विषय में सहमत है कि अबुलआस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए यह दण्ड न्यायोचित होते हुए भी अति कठोर है और हम सर्वसम्मति से उसे मुक्त करते है और उसका लूटा हुआ धन लौटा देने की आज्ञा माँगते है।

अबुलआस हजरत मुहम्मद की न्यायपरायणता पर चकित हो गये। न्याय का इतना ऊँचा आदर्श! मर्यादा का इतना महत्व! आह, नीति पर अपना सन्तान-प्रेम तक न्यौछावर कर दिया! महात्मा, तुम धन्य हो। ऐसे ही ममता-हीन सद्पुरुषो से ससार का कल्याण होता है। ऐसे ही नीतिपालको के हाथो जातियाँ बनती है, सभ्यताएँ परिष्कृत होती है।

मक्के आकर अबुलआस ने अपना हिसाब-किताब साफ़ किया, लोगों के माल लौटाये, ऋण चुकाये, और घर-बार त्यागकर हजरत मुहम्मद की सेवा मे पहुँच गये।

जैनब की मुराद पूरी हुई।

— सरस्वती, मार्च १९२४

# मंदिर और मसजिद

चौधरी इतरतअली 'कडे' के बडे जागीरदार थे। उनके बुजुर्गों ने शाही जमाने मे अग्रेजी सरकार की बडी-बडी खिदमते की थी। उनके बदले में यह जागीर मिली थी। अपने सुप्रबन्ध से उन्होने अपनी मिल्कियत और भी बढा ली थी और अब उस इलाके में उनसे ज्यादा धनी-मानी कोई आदमी न था। अग्रेज हुक्काम जब इलाके मे दौरा करने जाते तो चौधरी साहब की मिज़ाजपुर्सी के लिए जरूर आते थे। मगर चौधरी साहब खुद किसी हाकिम को सलाम करने न जाते, चाहे वह कमिश्नर ही क्यो न हो। उन्होने कचहरियो मे न जाने का व्रत-सा कर लिया था। किसी इजलास-दरबार मे भी न जाते थे। किसी हाकिम के सामने हाथ बाँधकर खडा होना और उसकी हर एक बात पर 'जी हुजूर' करना अपनी शान के खिलाफ समझते थे। वह यथासाध्य किसी मामले-मुकदमे मे न पडते थे, चाहे अपना नुकसान ही क्यों न होता हो। यह काम सोलहो आने मुखतारो के हाथ मे था, वे एक के सौ करे या सौ का एक। फारसी और अरबी के आलिम थे, शरा के बड़े पाबद, सूद को हराम समझते, पाँचों वक्त की नमाज अदा करते, तीसो रोज़े रखते और नित्य कुरान की तलावत (पाठ) करते थे। मगर धार्मिक संकीर्णता कहीं छू तक नही गयी थी। प्रात.काल गगा-स्नान करना उनका नित्य का नियम था। पानी बरसे, पाला पड़े, पर पाँच बजे वह कोस भर चलकर गगा तट पर अवश्य पहुँच जाते। लौटते वक्त अपनी चाँदी की सुराही गंगाजल से भर लेते और हमेशा गगाजल पीते। गंगाजल के सिवा वह और कोई पानी पीते ही न थे। शायद कोई योगी-यती भी गगाजल पर इतनी श्रद्धा न रखता होगा। उनका सारा घर, भीतर से बाहर तक, सातवे दिन गऊ के गोबर से लीपा जाता था। इतना ही नही, उनके यहाँ बगीचे मे एक पण्डित बारहो मास दुर्गा पाठ भी किया करते थे। साधु-सन्यासियो का आदर-सत्कार तो उनके यहाँ जितनी उदारता और भक्ति से किया जाता था, उस पर राजो को भी आश्चर्य होता था। यो कहिए कि सदाव्रत चलता था। उधर मुसलमान फकीरों का खाना बावर्चीखाने में पकता था और कोई सौ-सवा सौ आदमी नित्य एक दस्तरखान पर खाते थे। इतना दान-पुण्य करने पर भी

उन पर किसी महाजन का एक कौडी का भी कर्ज न था। नीयत की कुछ ऐसी बरकत थी कि दिन-दिन उन्नति ही होती थी। उनकी रियासत मे आम हुक्म था कि मुर्दो को जलाने के लिए, किसी यज्ञ या भोज के लिए, शादी-ब्याह के लिए सरकारी जगल से जितनी लकडी चाहे काट लो। चौधरी साहब से पूछने की जरूरत न थी। हिंदू असामियो की बारात में उनकी ओर से कोई न कोई जरूर शरीक होता था। नवेद के रुपये बँधे हुए थे, लड़कियो के विवाह मे कन्यादान के रुपये मुकर्रर थे, उनको हाथी, घोड़े, तम्बू, शामियाने, पालकी-नालकी, फर्श-जाजिमे, पखे-चँवर, चाँदी के महफिली सामान उसके यहाँ से बिना किसी दिक्कत के मिल जाते थे, माँगने भर की देर रहती थी। इस दानी, उदार, यशस्वी आदमी के लिए प्रजा भी प्राण देने को तैयार रहती थी।

२

चौधरी साहब के पास एक राजपूत चपरासी था भजनसिंह। पूरे छः फुट का जवान था, चौडा सीना, बाने का लठैत, सैकडों के बीच से मारकर निकल आनेवाला। उसे भय तो छू भी नही गया था। चौधरी साहब को उस पर असीम विश्वास था, यहाँ तक कि हज करने गये तो उसे भी साथ लेते गये थे। उनके दुश्मनों की कमी न थी, आस-पास के सभी जमींदार उनकी शक्ति और कीर्ति से जलते थे। चौधरी साहब के खौफ के मारे वे अपने असामियों पर मनमाना अत्याचार न कर सकते थे, क्योकि वह निबलों का पक्ष लेने के लिए सदा तैयार रहते थे। लेकिन भजनसिंह साथ हो, तो उन्हें दुश्मन के द्वार पर भी सोने मे कोई शका न थी। कई बार ऐसा हुआ कि दुश्मनो ने उन्हें घेर लिया और भजनसिंह अकेला जान पर खेलकर उन्हें बेदाग़ निकाल लाया। ऐसा आग में कूद पडनेवाला आदमी भी किसी ने कम देखा होगा। वह कही बाहर जाता तो जब तक खैरियत से घर न पहुँच जाय, चौधरी साहब को शका बनी रहती थी कि कही किसी से लड़ न बैठा हो। बस पालतू मेढे की-सी दशा थी, जो जंजीर से छूटते ही किसी न किसी से टक्कर लेने दौड़ता है। तीनो लोक मे चौधरी साहब के सिवा उसकी निगाहो मे और कोई था ही नही। बादशाह कहो, मालिक कहो, देवता कहो, जो कुछ थे चौधरी साहब थे।

मुसलमान लोग चौधरी साहब से जला करते थे। उनका खयाल था कि वह अपने दीन से फिर गये है। ऐसा विचित्र जीवन-सिद्धांत उनकी समझ मे क्योंकर आता। मुसलमान, अगर सच्चा मुसलमान है तो गगाजल क्यों पिये, साधुओ का

आदर-सत्कार क्यो करे, दुर्गापाठ क्यो करावे ? मुल्लाओ मे उनके खिलाफ हँडिया पकती रहती थी और हिन्दुओ को जक देने की तैयारियाँ होती रहती थी। आखिर यह राय तय पायी कि ठीक जन्माष्टमी के दिन ठाकुरद्वारे पर हमला किया जाय और हिन्दुओ का सिर नीचा कर दिया जाय, दिखा दिया जाय कि चौधरी साहब के बल पर फूले-फूले फिरना तुम्हारी भूल है। चौधरी साहब कर ही क्या लेगे। अगर उन्होने हिन्दुओ की हिमायत की, तो उनकी भी खबर ली जायगी, सारा हिन्दूपन निकल जायगा।

३

अँधेरी रात थी, कड़े के बड़े ठाकुरद्वारे मे कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। एक वृद्ध महात्मा पोपले मुँह से तबूरे पर ध्रुपद अलाप रहे थे और भक्त-जन ढोल-मजीरे लिये बैठे थे कि इनका गाना बद हो, तो हम अपना कीर्तन शुरू करे। भडारी प्रसाद बना रहा था। सैकडो आदमी तमाशा देखने के लिए जमा थे।

सहसा मुसलमानो का एक दल लाठियाँ लिये हुए आ पहुँचा, और मदिर पर पत्थर बरसाना शुरू किया। शोर मच गया — पत्थर कहाँ से आते है! ये पत्थर कौन फेक रहा है! कुछ लोग मदिर के बाहर निकलकर देखने लगे। मुसलमान लोग तो घात में बैठे ही थे, लाठियाँ जमानी शुरू की। हिन्दुओ के हाथ में उस समय ढोल-मजीरे के सिवा और क्या था। कोई मदिर मे आ छिपा, कोई किसी दूसरी तरफ भागा। चारों तरफ शोर मच गया।

चौधरी साहब को भी खबर हुई। भजनसिंह से बोले — ठाकुर, देखो तो क्या शोर-गुल है? जाकर बदमाशो को समझा दो और न माने तो दो-चार हाथ चला भी देना, मगर खून-खच्चर न होने पाये।

ठाकुर यह शोर-गुल सुन-सुनकर दाँत पीस रहे थे, दिल पर पत्थर की सिल रक्खे बैठे हुए थे। यह आदेश सुना तो मुँहमाँगी मुराद पायी। शत्रु-भजन डडा कधे पर रक्खा और लपके हुए मदिर पहुँचे। वहाँ मुसलमानो ने घोर उपद्रव मचा रक्खा था। कई आदमियो का पीछा करते हुए मदिर मे घुस गये थे, और शीशे के सामान तोड़-फोड़ रहे थे।

ठाकुर की आँखो मे खून उतर आया, सिर पर खून सवार हो गया। ललकारते हुए मदिर मे घुस गया और बदमाशों को पीटना शुरू किया। एक तरफ तो वह अकेला और दूसरी तरफ़ पचासों आदमी! लेकिन वाह रे शेर! अकेले सबके

छक्के छुडा दिये, कई आदमियों को मार गिराया। गुस्से मे उसे इस वक़्त कुछ न सूझता था, किसी के मरने-जीने की परवा न थी। मालूम नही, उसमे इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी थी। उसे ऐसा जान पडता था कि कोई दैवी शक्ति मेरी मदद कर रही है। कृष्ण भगवान स्वय उसकी रक्षा करते हुए मालूम होते थे। धर्म-सग्राम मे मनुष्यो से अलौकिक काम हो जाते है।

उधर ठाकुर के चले आने के बाद चौधरी साहब को भय हुआ कि कही ठाकुर किसी का खून न कर डाले, उसके पीछे खुद भी मदिर में आ पहुँचे। देखा तो कुहराम मचा हुआ है। बदमाश लोग अपनी जान ले-लेकर बेतहाशा भागे जा रहे है, कोई पडा कराह रहा है, कोई हाय-हाय कर रहा है। ठाकुर को पुकारना ही चाहते थे कि सहसा एक आदमी भागा हुआ आया और उनके सामने आता-आता ज़मीन पर गिर पडा। चौधरी साहब ने उसे पहचान लिया, और दुनिया उनकी आँखों में अँधेरी हो गयी। यह उनका इकलौता दामाद और उनकी जायदाद का वारिस शाहिद हुसेन था!

चौधरी ने दौड़कर शाहिद को सँभाला और जोर से बोले — ठाकुर, इधर आओ — लालटेन ······ लालटेन! आह, यह तो मेरा शाहिद है!

ठाकुर के हाथ-पाँव फूल गये। लालटेन लेकर बाहर निकले। शाहिद हुसेन ही थे। उनका सिर कट गया था और रक्त उछलता हुआ निकल रहा था।

चौधरी ने सिर पीटते हुए कहा — ठाकुर, तुमने तो मेरा चिराग ही गुल कर दिया।

ठाकुर ने थरथर काँपते हुए कहा — मालिक, भगवान जानते है, मैने पहचाना नही।

चौधरी — नही, मै तुम्हारे ऊपर इलज़ाम नही रखता। भगवान के मंदिर में किसी को घुसने का अख़्तियार नही है। अफसोस यही है कि खानदान का निशान मिट गया, और तुम्हारे हाथो! तुमने मेरे लिए हमेशा अपनी जान हथेली पर रक्खी, और खुदा ने तुम्हारे ही हाथो मेरा सत्यानास करा दिया।

चौधरी साहब रोते जाते थे और ये बाते कहते जाते थे। ठाकुर ग्लानि और पश्चात्ताप से गड़ा जाता था। अगर उसका अपना लडका मारा गया होता, तो उसे इतना दुःख न होता। आह! मेरे हाथो मेरे मालिक का सर्वनाश हुआ! जिसके पसीने की जगह वह खून बहाने को तैयार रहता था, जो उसका स्वामी ही नही, इष्ट था, जिसके ज़रा-से इशारे पर वह आग में कूद सकता था, उसी के वश

की उसने जड काट दी! वह उसकी आस्तीन का साँप निकला! रुँधे हुए कठ से बोला — सरकार, मुझसे बढ़कर अभागा और कौन होगा। मेरे मुँह मे कालिख लग गयी।

यह कहते-कहते ठाकुर ने कमर से छुरा निकाल लिया। वह अपनी छाती में छुरा खोंसकर कालिमा को रक्त से धोना ही चाहते थे कि चौधरी साहब ने लपककर छुरा उनके हाथों से छीन लिया और बोले — क्या करते हो, होश सँभालो। ये तकदीर के करिश्मे है, इसमे तुम्हारा कोई कसूर नही। खुदा को जो मजूर था वह हुआ। मै अगर खुद शैतान के बहकाने मे आकर मदिर मे घुमता और देवता की तौहीन करता, और तुम मुझे पहचानकर भी कत्ल कर देते, तो मै अपना खून माफ कर देता। किसी के दीन की तौहीन करने से बडा और कोई गुनाह नही है। गो इस वक्त मेरा कलेजा फटा जाता है, और यह सदमा मेरी जान ही लेकर छोडेगा, पर खुदा गवाह है कि मुझे तुमसे जरा भी मलाल नही है। तुम्हारी जगह मैं होता, तो मैं भी यही करता, चाहे मेरे मालिक का बेटा ही क्यो न होता। घरवाले मुझे तानों से छेदेंगे, लड़की रो-रोकर मुझसे खून का बदला माँगेगी, सारे मुसलमान मेरे खून के प्यासे हो जायँगे, मैं काफिर और बेदीन कहा जाऊँगा, शायद कोई दीन का पक्का नौजवान मुझे कत्ल करने पर भी तैयार हो जाय, लेकिन मैं हक से मुँह न मोड़ूँगा। अँधेरी रात है, इसी दम यहाँ से भाग जाओ, और मेरे इलाके मे किसी छावनी में छिप जाओ। वह देखो, कई मुसलमान चले आ रहे है — मेरे घरवाले भी है — भागो, भागो!

४

साल भर भजनसिंह चौधरी साहब के इलाके में छिपा रहा। एक ओर मुसलमान लोग उसकी टोह मे लगे रहते थे, दूसरी ओर पुलिस। लेकिन चौधरी उसे हमेशा छिपाते रहते थे। अपने समाज के ताने सहे, अपने घरवालो का तिरस्कार सहा, पुलीस के वार सहे, मुल्लाओ की धमकियाँ सही, पर भजनसिह की खबर किसी को कानों-कान न होने दी। ऐसे वफादार स्वामिभक्त सेवक को वह जीते जी निर्दय कानून के पंजे मे न देना चाहते थे। उनके इलाके की छावनियो मे कई बार तलाशियाँ हुई, मुल्लाओ ने घर के नौकरो, मामाओ, लौडियों को मिलाया। लेकिन चौधरी ने ठाकुर को अपने एहसानों की भाँति छिपाये रक्खा।

लेकिन ठाकुर को अपने प्राणो की रक्षा के लिए चौधरी साहब को सकट में

पड़े देखकर असह्य वेदना होती थी। उसके जी में बार-बार आता था, चलकर मालिक से कह दूँ — मुझे पुलीस के हवाले कर दीजिए। लेकिन चौधरी साहब बार-बार उसे छिपे रहने की ताकीद करते रहते थे।

जाड़ो के दिन थे। चौधरी साहब अपने इलाके का दौरा कर रहे थे। अब वह मकान पर बहुत कम रहते थे। घरवालो के शब्द-बाणों से बचने का यही उपाय था। रात को खाना खाकर लेटे ही थे कि भजनसिंह आकर सामने खडा हो गया। उसकी सूरत इतनी बदल गयी थी कि चौधरी साहब देखकर चौक पडे। ठाकुर ने कहा — सरकार अच्छी तरह है?

चौधरी — हाँ, खुदा का फज्ल है। तुम तो बिलकुल पहचाने ही नही जाते। इस वक़्त कहाँ से आ रहे हो?

ठाकुर — मालिक, अब तो छिपकर नही रहा जाता। हुक्म हो तो जाकर अदालत में हाजिर हो जाऊँ। जो भाग्य में लिखा होगा, वह होगा। मेरे कारन आपको इतनी हैरानी हो रही है, यह मुझसे नही देखा जाता।

चौधरी — नही ठाकुर, मेरे जीते-जी नही। तुम्हें जान-बूझकर भाड के मुँह में नही डाल सकता। पुलीस अपनी मर्जी के माफिक शहादतें बना लेगी, और मुफ़्त में तुम्हे जान से हाथ धोना पड़ेगा। तुमने मेरे लिए बड़े-बडे ख़तरे सहे है। अगर मैं तुम्हारे लिए इतना भी न कर सकूँ, तो मुझसे बढ़कर एहसानफरामोश और कौन होगा? इस बारे में अब फिर मुझसे कुछ मत कहना।

ठाकुर — कही किसी ने सरकार.....

चौधरी — इसका बिलकुल गम न करो। जब तक खुदा को मंजूर न होगा, कोई मेरा बाल भी बाँका नही कर सकता। तुम अब जाओ, यहाँ ठहरना ख़तरनाक है।

ठाकुर — सुनता हूँ, लोगो ने आपसे मिलना-जुलना छोड़ दिया है।

चौधरी — दुश्मनों का दूर रहना ही अच्छा।

लेकिन ठाकुर के दिल में जो बात जम गयी थी, वह न निकली। इस मुलाक़ात ने उसका इरादा और भी पक्का कर दिया। इन्हें मेरे कारन यो मारे-मारे फिरना पड रहा है। यहाँ इनका कौन अपना बैठा हुआ है? जो चाहे आकर हमला कर सकता है। मेरी इस जिंदगानी को धिक्कार!

प्रातःकाल ठाकुर जिला हाकिम के बँगले पर पहुँचा। साहब ने पूछा — तुम अब तक चौधरी के कहने से छिपा था?

ठाकुर — नहीं हुजूर, अपनी जान के ख़ौफ से ।

५

चौधरी साहब ने यह खबर सुनी, तो सन्नाटे मे आ गये। अब क्या हो? अगर मुकदमे की पैरवी न की गयी तो ठाकुर का बचना मुश्किल है। पैरवी करते हैं, तो इसलामी दुनिया मे तहलका पड जाता है। चारो तरफ़ से फतवे निकलने लगेगे। उधर मुसलमानो ने ठान ली कि इसे फाँसी दिलाकर ही छोडेगे। आपस में चदा किया गया। मुल्लाओ ने मसजिद मे चदे की अपील की, द्वार-द्वार झोली बाँधकर घूमे। इस पर कौमी मुकदमे का रग चढ़ाया गया। मुसलमान वकीलों को नाम लूटने का मौका मिला। आसपास के जिलो से जिहाद मे शरीक होने के लिए आने लगे।

चौधरी साहब ने भी पैरवी करने का निश्चय किया, चाहे कितनी ही आफतें क्यों न सिर पर आ पडे। ठाकुर उन्हें इसाफ की निगाह मे बेकसूर मालूम होता था और बेकसूर की रक्षा करने मे उन्हे किसी का ख़ौफ न था। घर से निकल खड़े हुए और शहर में जाकर डेरा जमा दिया।

छः महीने तक चौधरी साहब ने जान लडाकर मुकदमे की पैरवी की। पानी की तरह रुपये बहाये, आँधी की तरह दौडे। वह सब किया जो जिन्दगी में कभी न किया था, और न पीछे कभी किया। अहलकारो की खुशामदे की, वकीलो के नाज उठाये, हाकिमो को नजरे दी और ठाकुर को छुड़ा लिया। सारे इलाके मे धूम मच गयी। जिसने सुना, दग रह गया। इसे कहते है शराफत! अपने नौकर को फाँसी से उतार लिया।

लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष ने इस सत्कार्य को और ही आँखो से देखा — मुसलमान झल्लाये, हिन्दुओ ने बगले बजायी। मुसलमान समझे, इनकी रही-सही मुसलमानी भी गायब हो गयी। हिन्दुओ ने खयाल किया, अब इनकी शुद्धि कर लेनी चाहिए, इसका मौका आ गया। मुल्लाओ ने और जोर-शोर से तबलीग की हाँक लगानी शुरू की, हिन्दुओं ने भी संगठन का झडा उठाया। मुसलमानो की मुसलमानी जाग उठी और हिन्दुओं का हिंदुत्व। ठाकुर के कदम भी इस रेले में उखड़ गये। मनचले थे ही, हिन्दुओं के मुखिया बन बैठे। जिन्दगी में कभी एक लोटा जल तक शिव को न चढ़ाया था, अब देवी-देवतो के नाम पर लठ चलाने के लिए उद्यत हो गये। शुद्धि करने को कोई मुसलमान न मिला, तो दो-एक चमारो ही की शुद्धि करा

डाली। चौधरी साहब के दूसरे नौकरों पर भी असर पडा; जो मुसलमान कभी मसजिद के सामने खडे न होते थे, वे पाँचों वक़्त की नमाज अदा करने लगे, जो हिन्दू कभी मदिरो मे झाँकते भी न थे, वे दोनो वक़्त सध्या करने लगे।

वस्ती मे हिन्दुओ की सख्या अधिक थी। उस पर ठाकुर भजनसिह बने उनके मुखिया, जिनकी लाठी का लोहा सब मानते थे। पहले मुसलमान, सख्या में कम होने पर भी, उन पर गालिब रहते थे, क्योकि वे सगठित न थे, लेकिन अब वे सगठित हो गये थे, भला मुट्ठी भर मुसलमान उनके सामने क्या ठहरते।

एक साल और गुजर गया। फिर जन्माष्टमी का उत्सव आया। हिंदुओं को अभी तक अपनी हार भूली न थी। गुप्त रूप से बराबर तैयारियाँ होती रहती थी। आज प्रात.काल ही से भक्त लोग मदिर मे जमा होने लगे। सबके हाथो मे लाठियाँ थी, कितने ही आदमियो ने कमर में छुरे छिपा लिये थे। छेडकर लडने की राय पक्की हो गयी थी। पहले कभी इस उत्सव मे जुलूस न निकला था। आज धूम-धाम से जुलूस भी निकलने की ठहरी।

दीपक जल चुके थे। मसजिदो मे शाम की नमाज होने लगी थी। जुलूस निकला। हाथी, घोडे, झडे-झडियाँ, बाजे-गाजे, सब साथ थे। आगे-आगे भजनसिह अपने अखाडे के पट्ठों को लिये अकडते चले जाते थे।

जुमा मसजिद सामने दिखायी दी। पट्ठो ने लाठियाँ सँभाली, सब लोग सतर्क हो गये। जो लोग इधर-उधर बिखरे हुए थे, आकर सिमट गये। आपस में कुछ काना-फूसी हुई। बाजे और जोर से बजने लगे। जयजयकार की ध्वनि और ज़ोर से उठने लगी। जुलूस मसजिद के सामने आ पहुँचा।

सहसा एक मुसलमान ने मसजिद से निकलकर कहा — नमाज का वक़्त है, बाजे बंद कर दो।

भजनसिह — बाजे न बद होगे।

मुसलमान — बद करने पड़ेगे।

भजनसिह — तुम अपनी नमाज़ क्यों नही बद कर देते ?

मुसलमान — चौधरी साहब के बल पर मत फूलना। अबकी होश ठडे हो जायँगे।

भजनसिह — चौधरी साहब के बल पर तुम फूलो, यहाँ अपने ही बल का भरोसा है। यह धर्म का मामला है।

इतने मे कुछ और मुसलमान निकल आये, और बाजे बद करने का आग्रह करने

लगे, इधर और ज़ोर से बाजे बजने लगे। बात बढ गयी। एक मौलवी ने भजन सिंह को काफिर कह दिया। ठाकुर ने उसकी दाढी पकड ली। फिर क्या था। सूरमा लोग निकल पडे, मार-पीट शुरू हो गयी। ठाकुर हल्ला मारकर मसजिद मे घुस गये, और मसजिद के अदर मार-पीट होने लगी। यह नही कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहा। हिन्दू कहते थे, हमने खदेड़-खदेडकर मारा, मुसलमान कहते थे, हमने वह मार मारी कि फिर सामने नही आयेंगे। पर इन विवादो के बीच में एक बात सब मानते थे, और वह थी ठाकुर भजनसिह की अलौकिक वीरता। मुसलमानों का कहना था कि ठाकुर न होता तो हम किसी को ज़िन्दा न छोडते, हिन्दू कहते थे कि ठाकुर सचमुच महाबीर का अवतार है। इसकी लाठियो ने उन सत्रों के छक्के छुडा दिये।

उत्सव समाप्त हो चुका था। चौधरी साहब दीवानखाने मे बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। उनका मुख लाल था, त्यौरियाँ चढ़ी हुई थीं और आँखों से चिनगारियाँ-सी निकल रही थीं। 'खुदा का घर' नापाक किया गया! यह खयाल रह-रहकर उनके कलेजे को मसोसता था।

खुदा का घर नापाक किया गया! ज़ालिमों को लडने के लिए क्या नीचे मैदान में जगह काफी न थी! खुदा के पाक घर में यह खून-खच्चर! मसजिद की यह बेहुरमती! मदिर भी खुदा का घर है और मसजिद भी। मुसलमान किसी मदिर को नापाक करने के लिए जिस सजा के लायक है, क्या हिन्दू मसजिद को नापाक करने के लिए उसी सज़ा के लायक नहीं?

और यह हरकत ठाकुर ने की! इसी कसूर के लिए तो उसने मेरे दामाद को कत्ल किया था। मुझे मालूम होता कि उसके हाथो ऐसा फेल होगा, तो उसे फाँसी पर चढ़ने देता। क्यो उसके लिए इतना हैरान, इतना बदनाम, इतना ज़ेरबार होता। ठाकुर मेरा वफादार नौकर है। उसने बारहा मेरी जान बचायी है। मेरे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार रहता है। लेकिन आज उसने खुदा के घर को नापाक किया है, और उसे इसकी सज़ा मिलनी चाहिए। इसकी सज़ा क्या है? जहन्नुम! जहन्नुम की आग के सिवा इसकी और कोई सज़ा नही है। जिसने खुदा के घर को नापाक किया, उसने खुदा की तौहीन की। खुदा की तौहीन!

सहसा ठाकुर भजनसिंह आकर खड़े हो गये।

चौधरी साहब ने ठाकुर को क्रोधोन्मत्त आँखों से देखकर कहा — तुम मसजिद में घुसे थे?

भजनसिंह — सरकार, मौलवी लोग हम लोगो पर टूट पडे।

चौधरी — मेरी बात का जवाब दो जी — तुम मसजिद मे घुसे थे ?

भजनसिंह — जब उन लोगों ने मसजिद के भीतर से हमारे ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया तब हम लोग उन्हे पकड़ने के लिए मसजिद मे घुस गये।

चौधरी — जानते हो, मसजिद खुदा का घर है ?

भजनसिंह — जानता हूँ हुजूर, क्या इतना भी नही जानता।

चौधरी — मसजिद खुदा का वैसा ही पाक घर है, जैसे मदिर।

भजनसिंह ने इसका कुछ जवाब न दिया।

चौधरी — अगर कोई मुसलमान मदिर को नापाक करने के लिए गर्दनज़दनी है तो हिन्दू भी मसजिद को नापाक करने के लिए गर्दनजदनी है।

भजनसिंह इसका भी कुछ जवाब न दे सका। उसने चौधरी साहब को कभी इतने गुस्से मे न देखा था।

चौधरी — तुमने मेरे दामाद को कत्ल किया, और मैने तुम्हारी पैरवी की। जानते हो क्यों ? इसलिए कि मैं अपने दामाद को उस सज़ा के लायक़ समझता था जो तुमने उसे दी। अगर तुमने मेरे बेटे को, या मुझी को, उस कसूर के लिए मार डाला होता तो मैं तुमसे खून का बदला न माँगता। वही कसूर आज तुमने किया है। अगर किसी मुसलमान ने मसजिद मे तुम्हे जहन्नुम मे पहुँचा दिया होता तो मुझे सच्ची खुशी होती। लेकिन तुम बेहयाओ की तरह वहाँ से बचकर निकल आये। क्या तुम समझते हो खुदा तुम्हे इस फेल की सजा न देगा ? खुदा का हुक्म है कि जो उसकी तौहीन करे, उसकी गर्दन मार देनी चाहिए। यह हर एक मुसलमान का फर्ज है। चोर अगर सज़ा न पावे तो क्या वह चोर नही है ? तुम मानते हो या नही कि तुमने खुदा की तौहीन की ?

ठाकुर इस अपराध से इनकार न कर सके। चौधरी साहब के सत्सग ने हठ-धर्मी को दूर कर दिया था। बोले — हाँ साहब, यह क़सूर तो हो गया।

चौधरी — इसकी जो सजा तुम दे चुके हो, वह सज़ा खुद लेने के लिए तैयार हो ?

ठाकुर — मैने जान-बूझकर तो दूल्हा मियाँ को नही मारा था।

चौधरी — तुमने न मारा होता, तो मैं अपने हाथों से मारता, समझ गये ! अब मै तुमसे खुदा की तौहीन का बदला लूँगा। बोलो मेरे हाथो चाहते हो या अदालत के हाथों। अदालत से कुछ दिनों के लिए सज़ा पा जाओगे। मैं क़त्ल करूँगा। तुम मेरे दोस्त हो, मुझे तुमसे मुतलक़ कीना नही है। मेरे दिल को कितना

रज है, यह खुदा के सिवा और कोई नही जान सकता। लेकिन मैं तुम्हे कत्ल करूगा। मेरे दीन का यह हुक्म है।

यह कहते हुए चौधरी साहब तलवार लेकर ठाकुर के सामने खडे हो गये। विचित्र दृश्य था। एक बूढा आदमी, सिर के बाल पके, कमर झुकी, तलवार लिये एक देव के सामने खडा था। ठाकुर लाठी के एक ही वार से उनका काम तमाम कर सकता था। लेकिन उसने सिर झुका दिया। चौधरी के प्रति उसके रोम-रोम मे श्रद्धा थी। चौधरी साहब अपने दीन के इतने पक्के है, इसकी उसने कभी कल्पना तक न की थी। उसे शायद धोखा हो गया था कि यह दिल से हिंदू है। जिस स्वामी ने उसे फाँसी से उतार लिया, उसके प्रति हिंसा या प्रतिकार का भाव उसके मन मे क्योंकर आता? वह दिलेर था, और दिलेरो की भाँति निष्कपट था। उसे इस समय क्रोध न था, पश्चात्ताप था। मरने का भय न था, दुख था।

चौधरी साहब ठाकुर के सामने खडे थे। दीन कहता था—मारो। सज्जनता कहती थी — छोड़ो। दीन और धर्म मे सघर्ष हो रहा था।

ठाकुर ने चौधरी का असमजस देखा। गद्गद कठ से बोला — मालिक, आपकी दया मुझ पर हाथ न उठाने देगी। अपने पाले हुए सेवक को आप मार नही सकते। लेकिन यह सिर आपका है, आपने इसे बचाया था, आप इसे ले सकते है, यह मेरे पास आपकी अमानत थी। वह अमानत आपको मिल जायगी। सबेरे मेरे घर किसी को भेजकर मँगवा लीजिएगा। यहाँ दूँगा, तो उपद्रव खडा हो जायगा। घर पर कौन जानेगा, किसने मारा। जो भूल-चूक हुई हो, क्षमा कीजिएगा।

यह कहता हुआ ठाकुर वहाँ से चला गया।

—माधुरी, अप्रैल १९२५

# प्रेम-सूत्र

संसार मे कुछ ऐसे मनुष्य भी होते है जिन्हे दूसरों के मुख से अपनी स्त्री की सौदर्य-प्रशसा सुनकर उतना ही आनन्द होता है जितना अपनी कीर्ति की चर्चा सुन-कर। पश्चिमी सभ्यता के प्रसार के साथ ऐसे प्राणियों की सख्या बढती जा रही है। पशुपतिनाथ वर्मा इन्ही लोगों मे थे। जब लोग उनकी परम सुन्दरी स्त्री की तारीफ़ करते हुए कहते — ओहो! कितनी अनुपम रूप-राशि है, कितना अलौ-किक सौन्दर्य है, तब वर्माजी मारे खुशी और गर्व के फूल उठते थे।

सन्ध्या का समय था। मोटर तैयार खडी थी। वर्माजी सैर करने जा रहे थे, किन्तु प्रभा जाने को उत्सुक नही मालूम होती थी। वह एक कुर्सी पर बैठी हुई कोई उपन्यास पढ रही थी।

वर्माजी ने कहा — तुम तो अभी तक बैठी पढ रही हो?

'मेरा तो इस समय जाने को जी नही चाहता।'

'नही प्रिये, इस समय तुम्हारा न चलना सितम हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी इस मधुर छवि को घर से बाहर भी तो लोग देखे।'

'जी नही, मुझे यह लालसा नहीं है। मेरे रूप की शोभा केवल तुम्हारे लिए है, और तुम्हीं को दिखाना चाहती हूँ।'

'नही, मै इतना स्वार्थान्ध नही हूँ। जब तुम सैर करने निकलो, मै लोगों से यह सुनना चाहता हूँ कि कितनी मनोहर छवि है! पशुपति कितना भाग्यशाली पुरुष है!'

'तुम चाहो, मै नही चाहती। तो इसी बात पर आज मै कही नही जाऊँगी। तुम भी मत जाओ। हम दोनो अपने ही बाग़ में टहलेगे। तुम हौज़ के किनारे हरी घास पर लेट जाना, मै तुम्हें वीणा बजाकर सुनाऊँगी। तुम्हारे लिए फूलों का हार बनाऊँगी, चाँदनी में तुम्हारे साथ आँख-मिचौनी खेलूँगी।'

'नही नही प्रभा, आज हमें अवश्य चलना पड़ेगा। तुम कृष्णा से आज मिलने का वादा कर आयी हो। वह बैठी हमारा रास्ता देख रही होगी। हमारे न जाने से उसे कितना दुःख होगा!'

हाय! वही कृष्णा! बार बार वही कृष्णा! पति के मुख से नित्य यह नाम चिनगारी की भाँति उडकर प्रभा को जलाकर भस्म कर देता था।

प्रभा को अब मालूम हुआ कि आज ये बाहर जाने के लिए क्यों इतने उत्सुक है! इसीलिए आज इन्होने मुझसे केशों को सँवारने के लिए इतना आग्रह किया था। वह सारी तैयारी उसी कुलटा कृष्णा से मिलने के लिए थी!

उसने दृढ स्वर में कहा — तुम्हे जाना हो जाओ, मैं न जाऊँगी।

वर्माजी ने कहा — अच्छी बात है, मै ही चला जाऊँगा।

२

पशुपति के जाने के बाद प्रभा को ऐसा जान पडा कि वह वाटिका उसे काटने दौड रही है। ईर्ष्या की ज्वाला से उसका कोमल हृदय भस्म होने लगा। वे वहाँ कृष्णा के साथ बैठे विहार कर रहे होंगे — उसी नागिन के-से केशवाली कृष्णा के साथ, जिसकी आँखों मे घातक विष भरा हुआ है! मर्दो की बुद्धि क्यों इतनी स्थूल होती है? इन्हें कृष्णा की चटक-मटक ने क्यों इतना मोहित कर लिया है। उसके मुख से मेरे पैर का तलवा कही सुन्दर है। हाँ, मै एक बच्चे की माँ हूँ और वह नव-यौवना है! जरा देखना चाहिए, उनमे क्या बाते हो रही है।

यह सोचकर वह अपनी सास के पास आकर बोली — अम्माँ, इस समय अकेले जी घबराता है, चलिए कही घूम आवे।

सास.बहू पर प्राण देती थी। चलने पर राजी हो गयी। गाडी तैयार करा के दोनों घूमने चली। प्रभा का श्रृंगार देखकर भ्रम हो सकता था कि वह वहुत प्रसन्न है, किन्तु उसके अन्तस्तल मे एक भीषण ज्वाला दहक रही थी, उसे छिपाने के लिए वह मीठे स्वर में एक गीत गाती जा रही थी।

गाडी एक सुरम्य उपवन मे उडी जा रही थी। सडक के दोनों ओर विशाल वृक्षों की सुखद छाया पड रही थी। गाडी के कीमती घोडे गर्व से पूँछ और सिर उठाये टप-टप करते जा रहे थे। अहा! वह सामने कृष्णा का बँगला आ गया, जिसके चारों ओर गुलाब की बेल लगी हुई थी। उसके फूल इस समय निर्दय काँटों की भाँति प्रभा के हृदय मे चुभने लगे। उसने उड़ती हुई निगाह से बँगले की ओर ताका। पशुपति का पता न था, हाँ कृष्णा और उसकी बहन माया बगीचे में विचर रही थीं। गाडी बँगले के सामने से निकल ही चुकी थी कि दोनों बहनों ने प्रभा को पुकारा और एक क्षण में दोनो बालिकाएँ हिरनियों की भाँति उछलती-कूदती फाटक की ओर दौडीं। गाड़ी रुक गयी।

कृष्णा ने हँसकर सास से कहा — अम्माँ जी, आज आप प्रभा को एकाध घण्टे के लिए हमारे पास छोड जाइए। आप उधर से लौटे तब इन्हें लेती जाइएगा, यह कहकर दोनों ने प्रभा को गाडी से बाहर खीच लिया। सास कैसे इनकार करती। जब गाडी चली गयी तब दोनो बहनो ने प्रभा को बगीचे मे एक बेच पर ला बिठाया। प्रभा को इन दोनो के साथ बाते करते हुए बडी झिझक हो रही थी। वह उनसे हँसकर बोलना चाहती थी, अपनी किसी बात से मन का भाव प्रकट नही करना चाहती थी, किन्तु हृदय उनसे खिचा ही रहा।

कृष्णा ने प्रभा की साडी पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा — बहन, क्या यह साड़ी अभी ली है। इसका गुलाबी रग तो तुम पर नही खिलता। कोई और रग क्यों न लिया ?

प्रभा — उनकी पसन्द है, मै क्या करती।

दोनों बहने ठट्ठा मारकर हँस पडी। फिर माया ने कहा — उन महाशय की रुचि का क्या कहना, सारी दुनिया से निराली है। अभी इधर से गये है। सिर पर इससे भी अधिक लाल पगडी थी।

सहसा पशुपति भी सैर से लौटता हुआ सामने से निकला। प्रभा को दोनों बहनो के साथ देखकर उसके जी मे आया कि मोटर रोक ले। वह अकेले इन दोनो से मिलना शिष्टाचार के विरुद्ध समझता था। इसीलिए वह प्रभा को अपने साथ लाना चाहता था। जाते समय वह बहुत साहस करने पर भी मोटर से न उतर सका था। प्रभा को वहाँ देखकर इस सुअवसर से लाभ उठाने की उसकी बड़ी इच्छा हुई। लेकिन दोनों बहनों की हास्यध्वनि सुनकर वह सकोचवश न उतरा।

थोड़ी देर तक तीनो रमणियाँ चुपचाप बैठी रही। तब कृष्णा बोली — पशुपति बाबू यहाँ आना चाहते है पर शर्म के मारे नही आये। मेरा विचार है कि सबधियों को आपस में इतना संकोच न करना चाहिए। समाज का यह नियम कम से कम मुझे तो बुरा मालूम होता है। तुम्हारा क्या विचार है, प्रभा ?

प्रभा ने व्यंग्य भाव से कहा — यह समाज का अन्याय है।

प्रभा इस समय भूमि की ओर ताक रही थी। पर उसकी आँखो से ऐसा तिरस्कार निकल रहा था जिसने दोनों बहनो के परिहास को लज्जासूचक मौन मे परिणत कर दिया। उसकी आँखो से एक चिनगारी-सी निकली, जिसने दोनो युवतियो के आमोद-प्रमोद और उस कुवृत्ति को जला डाला जो प्रभा के पति-परायण हृदय को

वाणों से वेध रही थी, उस हृदय को जिसमें अपने पति के सिवा और किसी को जगह न थी।

माया ने जब देखा कि प्रभा इस वक़्त क्रोध से भरी बैठी है, तब बेच से उठ खड़ी हुई और बोली — आओ बहन जरा टहलें, यहाँ बैठे रहने से तो टहलना ही अच्छा है।

प्रभा ज्यों की त्यों बैठी रही। पर वे दोनों बहनें बाग़ में टहलने लगी। उस वक्त प्रभा का ध्यान उन दोनो के वस्त्राभूषण की ओर गया। माया बगाल की गुलाबी रेशम की एक महीन साडी पहने हुए थी जिसमे न जाने कितनी चुन्नटें पड़ी हुई थी। उसके हाथ में एक रेशमी छतरी थी जिसे उसने सूर्य की अतिम किरणो से बचने के लिए खोल लिया था। कृष्णा के वस्त्र भी वैसे ही थे, हाँ, उसकी साडी पीले रग की थी और उसके घूँघरवाले बाल साड़ी के नीचे से निकलकर माथे और गालों पर लहरा रहे थे।

प्रभा ने एक ही निगाह से ताड़ लिया कि इन दोनो युवतियों में किसी को उसके पति से प्रेम नहीं है। केवल आमोदलिप्सा के वशीभूत होकर यह स्वयं बदनाम होंगी और उसके सरल हृदय पति को भी बदनाम कर देंगी। उसने ठान लिया कि मैं अपने भ्रमर को इन विषाक्त पुष्पो से बचाऊँगी और चाहे जो कुछ हो उसे इनके ऊपर मँडराने न दूँगी, क्योंकि यहाँ केवल रूप और बास है, रस का नाम नहीं।

प्रभा अपने घर लौटते ही उस कमरे मे गयी, जहाँ उसकी लड़की शान्ति अपनी दाई की गोद में खेल रही थी। अपनी नन्हीं जीती-जागती गुड़िया की सूरत देखते ही प्रभा की आँखे सजल हो गयीं। उसने मातृस्नेह से विभोर होकर बालिका को गोद में उठा लिया, मानो किसी भयकर पशु से उसकी रक्षा कर रही है। उस दुस्सह वेदना की दशा मे उसके मुँह से यह शब्द निकल गये — बच्ची, तेरे बाप को लोग तुझसे छीनना चाहते है! हाय तू क्या अनाथ हो जायगी? नही-नही, अगर मेरा बस चलेगा तो मै इन निर्बल हाथों से उन्हें बचाऊँगी।

आज से प्रभा विषादमय भावनाओं मे मग्न रहने लगी। आनेवाली विपत्ति की कल्पना करके कभी-कभी भयातुर होकर चिल्ला पड़ती, उसकी आँखो में उस विपत्ति की तसवीर खिंच जाती जो उसकी ओर कदम बढ़ाये चली आती थी, पर उस बालिका की तोतली बातें और उसकी आँखों की निःशक ज्योति प्रभा के विकल हृदय को शान्त कर देती। वह लड़की को गोद मे उठा लेती और वह मधुर हास्य-छवि जो बालिका के पतले-पतले गुलाबी ओठों पर खेलती होती, प्रभा की सारी शंकाओं

और बाधाओ को छिन्न-भिन्न कर देती। उन विश्वासमय नेत्रो मे आशा का प्रकाश उसे आश्वस्त कर देता।

हा ! अभागिनी प्रभा, तू क्या जानती है क्या होनेवाला है ?

३

ग्रीष्मकाल की चाँदनी रात थी। सप्तमी का चाँद प्रकृति पर अपना मन्द शीतल प्रकाश डाल रहा था। पशुपति मौलसिरी की एक डाली हाथ से पकड़े और तने से चिपटा हुआ माया के कमरे की ओर टकटकी लगाये ताक रहा था। कमरे का द्वार खुला हुआ था और शान्त निशा में रेशमी साडियों की सरसराहट के साथ दो रमणियों की मधुर हास्य-ध्वनि मिलकर पशुपति के कानों तक पहुँचते-पहुँचते आकाश मे विलीन हो जाती थी। एकाएक दोनों बहने कमरे से निकली और उसी ओर चली जहाँ पशुपति खडा था। जब दोनो उस वृक्ष के पास पहुँची तब पशुपति की परछाईं देखकर कृष्णा चौक पड़ी और बोली — है बहन ! यह क्या है ?

पशुपति वृक्ष के नीचे से आकर सामने खड़ा हो गया। कृष्णा उन्हे पहचान गयी और कठोर स्वर मे बोली — आप यहाँ क्या करते है ? बतलाइए, यहाँ आपका क्या काम है ? बोलिए जल्दी।

पशुपति की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। इस अवसर के लिए उसने जो प्रेम-वाक्य रटे थे वे सब विस्मृत हो गये। सशंक होकर बोला — कुछ नही प्रिये, आज सन्ध्या समय जब मै आपके मकान के सामने से आ रहा था तब मैंने आपको अपनी बहन से कहते सुना कि आज रात को आप इस वृक्ष के नीचे बैठकर चाँदनी का आनन्द उठायेगी। मै भी आपसे कुछ कहने के लिए......आपके चरणों पर अपना... समर्पित करने के लिए .....

यह सुनते ही कृष्णा की आँखों से चचल ज्वाला-सी निकली और उसके ओठो पर व्यग्यपूर्ण हास्य की झलक दिखायी दी। बोली — महाशय, आप तो आज एक विचित्र अभिनय करने लगे, कृपा करके पैरों पर से तो उठिए और जो कुछ कहना चाहते हों, जल्द कह डालिए और जितने आँसू गिराने हों एक सेकेण्ड मे गिरा दीजिए, मैं रुक-रुककर और घिघिया-घिघियाकर बाते करनेवालों को पसन्द नही करती। हाँ, और ज़रा बातें और रोना साथ-साथ न हों। कहिए क्या कहना चाहते हैं......आप न कहेंगे ? लीजिए समय बीत गया, मै जाती हूँ।

कृष्णा वहाँ से चल दी। माया भी उसके साथ ही चली गयी। पशुपति एक क्षण तक वहाॅ खड़ा रहा फिर वह भी उनके पीछे-पीछे चला। मानो वह सुई है जो चुम्बक के आकर्षण से आप ही आप खिचा चला जाता है।

सहसा कृष्णा रुक गयी और बोली — सुनिए पशुपति बाबू, आज सन्ध्या समय प्रभा की बातो से मालूम हो गया कि उन्हे आपका और मेरा मिलना-जुलना बिलकुल नही भाता......

पशुपति — प्रभा की तो आप चर्चा ही छोड़ दीजिए।

कृष्णा — क्यों छोड दूँ? क्या वह आपकी स्त्री नही है? आप इस समय उसे घर में अकेली छोडकर मुझसे क्या कहने के लिए आये है? यही कि उसकी चर्चा न करूँ?

पशुपति — जी नही, यह कहने के लिए कि अब यह विरहाग्नि नही सही जाती।

कृष्णा ने ठट्ठा मारकर कहा — आप तो इस कला मे बहुत निपुण जान पड़ते है। प्रेम! समर्पण! विरहाग्नि! यह शब्द आपने कहाॅ सीखे?

पशुपति — कृष्णा, मुझे तुमसे इतना प्रेम है कि मै पागल हो गया हूँ।

कृष्णा — तुम्हे प्रभा से क्यों प्रेम नही है?

पशुपति — मै तो तुम्हारा उपासक हूँ।

कृष्णा — लेकिन यह क्यो भूल जाते हो कि तुम प्रभा के स्वामी हो?

पशुपति — तुम्हारा तो दास हूँ।

कृष्णा — मैं ऐसी बाते नही सुनना चाहती।

पशुपति — तुम्हे मेरी एक-एक बात सुननी पड़ेगी। तुम जो चाहो वह करने को मै तैयार हूँ।

कृष्णा — अगर यह बाते कही वह सुन ले तो?

पशुपति — सुन ले तो सुन ले। मै हर बात के लिए तैयार हूॅ। मैं फिर कहता हूॅ, कि अगर तुम्हारी मुझ पर कृपादृष्टि न हुई तो मैं मर जाऊँगा।

कृष्णा — तुम्हे यह बाते करते समय अपनी पत्नी का ध्यान नही आता?

पशुपति — मै उसका पति नहीं होना चाहता। मै तो तुम्हारा दास होने के लिए बनाया गया हूँ। वह सुगन्ध जो इस समय तुम्हारी गुलाबी साड़ी से निकल रही है, मेरी जान है। तुम्हारे ये छोटे-छोटे सुन्दर पाॅव मेरे प्राण है। तुम्हारी हँसी, तुम्हारी छवि, तुम्हारा एक-एक अग मेरा प्राण है। मैं केवल तुम्हारे लिए पैदा हुआ हूँ।

कृष्णा — भई, अब तो सुनते-सुनते कान भर गये। यह व्याख्यान और यह गद्य-काव्य सुनने के लिए मेरे पास समय नही है। आओ माया, मुझे तो सर्दी लग रही है। चलकर अन्दर बैठे।

यह निष्ठुर शब्द सुनकर पशुपति की आँखो के सामने अँधेरा छा गया। मगर अब भी उसका मन यही चाहता था कि कृष्णा के पैरो पर गिर पडे और इससे भी करुण शब्दों मे अपनी प्रेम-कथा सुनाये। किन्तु दोनो बहने इतनी देर मे अपने कमरे मे पहुँच चुकी थी और द्वार बन्द कर लिया था। पशुपति के लिए निराश घर लौट आने के सिवा कोई चारा न रह गया।

कृष्णा अपने कमरे में जाकर थकी हुई-सी एक कुर्सी पर बैठ गयी और सोचने लगी — कही प्रभा सुन ले तो बात का बतगड़ हो जाय, सारे शहर मे इसकी चर्चा होने लगे और हमें कही मुँह दिखाने को जगह न रहे। और यह सब एक जरा-सी दिल्लगी के कारण! पर पशुपति का प्रेम सच्चा है, इसमे सन्देह नही। वह जो कुछ कहता है, अन्तःकरण से कहता है। अगर मैं इस वक्त ज़रा-सा सकेत कर दूँ तो वह प्रभा को भी छोड देगा। अपने आपे में नही है। जो कुछ कहूँ वह करने को तैयार है। लेकिन नही, प्रभा, डरो मत, मै तुम्हारा सर्वनाश न करूँगी। तुम मुझसे बहुत नीचे हो। यह मेरे अनुपम सौन्दर्य के लिए गौरव की बात नही कि तुम जैसी रूप-विहीना से बाज़ी मार ले जाऊँ। अभागे पशुपति, तुम्हारे भाग्य में जो कुछ लिखा था वह हो चुका। तुम्हारे ऊपर मुझे दया आती है, पर क्या किया जाय!

४

एक ख़त पहले हाथ पड़ चुका था। यह दूसरा पत्र था, जो प्रभा को पतिदेव के कोट की जेब में मिला। कैसा पत्र था? आह! इसे पढ़ते ही प्रभा की देह में एक ज्वाला-सी उठने लगी। तो यों कहिए कि ये अब कृष्णा के हो चुके, अब इसमें कोई सन्देह नही रहा। अब मेरे जीने को धिक्कार है! जब जीवन में कोई सुख ही नही रहा, तो क्यों न इस बोझ को उतारकर फेंक दूँ। वही पशुपति, जिसे कविता से लेशमात्र भी रुचि न थी, अब कवि हो गया था और कृष्णा को छन्दों मे पत्र लिखता था। प्रभा ने अपने स्वामी को उधर से हटाने के लिए वह सब कुछ किया जो उससे हो सकता था, पर प्रेम का प्रवाह उसके रोके न रुका और आज उस प्रवाह में उसके जीवन की नौका निराधार बही चली जा रही है।

इसमें सन्देह नही कि प्रभा को अपने पति से सच्चा प्रेम था, लेकिन आत्मसमर्पण

की तुष्टि आत्मसमर्पण से ही होती है। वह उपेक्षा और निष्ठुरता को सहन नही कर सकता। प्रभा के मन मे विद्रोह का भाव जाग्रत होने लगा। उसका आत्माभिमान जाता रहा। उसके मन मे न जाने कितने भीषण सकल्प होते, किन्तु अपनी असमर्थता और दीनता पर आप ही आप रोने लगती। आह! उसका सर्वस्व उससे छीन लिया गया और अब ससार मे उसका कोई मित्र नही, कोई साथी नही!

पशुपति आजकल नित्य बनाव-सँवार मे मग्न रहता, नित्य नये-नये सूट बदलता। उसे आइने के सामने अपने बालो को सँवारते देखकर प्रभा की आँखो से आँसू बहने लगते। यह सारी तैयारी उसी दुष्टा के लिए हो रही है। यह चिन्ता ज़हरीले साँप की भाँति उसे डस लेती थी; वह अब अपने पति की प्रत्येक बात, प्रत्येक गति को सूक्ष्म दृष्टि से देखती। कितनी ही बाते जिन पर वह पहले ध्यान भी न देती थी, अब उसे रहस्य से भरी हुई जान पडती। वह रात को न सोती, कभी पशुपति की जेब टटोलती, कभी उसकी मेज पर रक्खे हुए पत्रो को पढ़ती। इसी टोह में वह रात-दिन पडी रहती।

वह सोचने लगी—मै क्या प्रेम-वचिता बनी बैठी रहूँ? क्या मै प्राणेश्वरी नही बन सकती। जीवन अमर नही है और यौवन भी थोडे ही दिनों का मेहमान होता है। क्या इसे परित्यक्ता बनकर ही काटना होगा! आह निर्दयी, तूने मुझे धोखा दिया। मुझसे आँखे फेर लीं। पर सबसे बडा अनर्थ यह किया कि मुझे जीवन का कलुषित मार्ग दिखा दिया। मै भी विश्वासघात करके तुझे धोखा देकर क्या कलुषित प्रेम का आनन्द नही उठा सकती? अश्रुधारा से सींचकर ही सही, पर क्या अपने लिए कोई बाटिका नही लगा सकती? वह सामने के मकान मे घुँघराले बालवाला युवक रहता है और जब मौका पाता है, मेरी ओर सचेष्ट नेत्रो से देखता है। क्या केवल एक प्रेम-कटाक्ष से मै उसके हृदय पर अधिकार नही प्राप्त कर सकती? अगर मैं इस भाँति इस निष्ठुरता का बदला लूँ तो क्या अनुचित होगा? आखिर मैने अपना जीवन अपने पति को किसलिए सौंपा था? इसीलिए तो कि सुख से जीवन व्यतीत करूँ। चाहूँ और चाही जाऊँ और इस प्रेम-साम्राज्य की अधीश्वरी बनी रहूँ। मगर आह! वे सारी अभिलाषाएँ धूल मे मिल गयी! अब मेरे लिए क्या रह गया है? आज यदि मै मर जाऊँ तो कौन रोयेगा? नहीं, घी के चिराग जलाये जायँगे। कृष्णा हँसकर कहेगी—अब बस हम है और तुम। हमारे बीच में कोई बाधा, कोई कटक नही है।

आखिर प्रभा इन कलुषित भावनाओ के प्रवाह में बह चली। उसके हृदय मे

पर रखकर अपने पीले मुख को काँपते हुए हाथो से छिपा लिया। पशुपति ने फिर भी सब कुछ कह ही डाला। लालसाग्नि अब अन्दर न रह सकती थी, उसकी ज्वाला बाहर निकल ही पड़ी। तात्पर्य यह था कि पशुपति ने कृष्णा के साथ विवाह करना निश्चय कर लिया था। वह उसे दूसरे घर में रक्खेगा और प्रभा के यहाँ दो रात और एक रात उसके यहाँ रहेगा।

ये बाते सुनकर प्रभा रोयी नही, वरन् स्तम्भित होकर खड़ी रह गयी। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके गले मे कोई चीज़ अटकी हुई है और वह साँस नही ले सकती।

पशुपति ने फिर कहा — प्रभा, तुम नहीं जानती कि जितना प्रेम तुमसे मुझे आज है उतना पहले कभी नही था। मैं तुमसे अलग नही हो सकता। मै जीवन-पर्यन्त तुम्हें इसी भाँति प्यार करता रहूँगा। पर कृष्णा मुझे मार डालेगी। केवल तुम्ही मेरी रक्षा कर सकती हो। मुझे उसके हाथ मत छोडो, प्रिये!

अभागिनी प्रभा! तुझसे पूछ-पूछ कर तेरी गर्दन पर छुरी चलायी जा रही है! तू गर्दन झुका देगी या आत्मगौरव से सिर उठाकर कहेगी — मैं यह नीच प्रस्ताव नही सुन सकती!

प्रभा ने इन दो बातो मे एक भी न की। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पडी। जब होश आया, कहने लगी — बहुत अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा! लेकिन मुझे छोड दो, मैं अपनी माँ के घर जाऊँगी, मेरी शान्ता मुझे दे दो।

यह कहकर वह रोती हुई वहाँ से शान्ता को लेने चली गयी और उसे गोद मे लेकर कमरे से बाहर निकली। पशुपति लज्जा और ग्लानि से सिर झुकाये उसके पीछे-पीछे आता रहा और कहता रहा — जैसी तुम्हारी इच्छा हो प्रभा, वह करो, और मैं क्या कहूँ, किन्तु मेरी प्यारी प्रभा, वादा करो कि तुम मुझे क्षमा कर दोगी। किन्तु प्रभा ने उसको कुछ जवाब न दिया और बराबर द्वार की ओर चलती रही। तब पशुपति ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया और उसके मुरझाये हुए पर अश्रु-सिंचित कपोलों को चूम-चूमकर कहने लगा — प्रिये, मुझे भूल न जाना, तुम्हारी याद मेरे हृदय मे सदैव बनी रहेगी। अपनी अँगूठी मुझे देती जाओ, मै उसे तुम्हारी निशानी समझ कर रक्खूँगा और उसे हृदय से लगाकर इस दाह को शीतल करूँगा। ईश्वर के लिए प्रभा, मुझे छोड़ना मत, मुझसे नाराज न होना. . .एक सप्ताह के लिए अपनी माता के पास जाकर रहो। फिर मैं तुम्हें जाकर लाऊँगा।

प्रभा ने पशुपति के कर-पाश से अपने को छुड़ा लिया और अपनी लड़की का हाथ

पकडे हुए गाडी की ओर चली। उसने पशुपति को न कोई उत्तर दिया और न यह सुना कि वह क्या कह रहा है।

६

'अम्माँ, आप क्यों हँस रही है?'

'कुछ तो नही बेटी।'

'वह पीले-पीले पुराने कागज तुम्हारे हाथ मे क्या है?'

'ये उस ऋण के पुर्जे है जो वापस नही मिला।'

'ये तो पुराने खत मालूम होते है?'

'नही बेटी।'

बात यह थी कि प्रभा अपनी चौदह वर्ष की युवती पुत्री के सामने सत्य का पर्दा नही खोलना चाहती थी। हाँ, वे कागज वास्तव में एक ऐसे कर्ज के पुर्जे थे जो वापस नहीं मिला। ये वही पुराने पत्र थे जो आज एक किताब मे रक्खे हुए मिले थे और ऐसे फूल की पँखुडियो की भाँति दिखायी देते थे जिनका रग और गन्ध किताब मे रक्खे-रक्खे उड गयी हो, तथापि वे सुख के दिनों की याद दिला रहे थे और इस कारण प्रभा की दृष्टि मे वे बहुमूल्य थे।

शान्ता समझ गयी कि अम्माँ कोई ऐसा काम कर रही है जिसकी खबर मुझे नही करना चाहती और इस बात से प्रसन्न होकर कि मेरी दुखी माता आज अपना शोक भूल गयी है और जितनी देर वह इस आनन्द मे मग्न रहे उतना ही अच्छा है, एक बहाने से बाहर चली गयी। प्रभा जब कमरे में अकेली रह गयी तब उसने उन पत्रों को फिर पढना शुरू किया।

आह! इन चौदह वर्षों में क्या कुछ नही हो गया! इस समय उस विरहिणी के हृदय मे कितनी ही पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत हो गयी, जिन्होने हर्ष और शोक के स्रोत एक साथ ही खोल दिये।

प्रभा के चले आने के बाद पशुपति ने बहुत चाहा कि कृष्णा से उसका विवाह हो जाय पर वह राजी न हुई। इसी नैराश्य और क्रोध की दशा में पशुपति एक कम्पनी का एजेण्ट होकर योरोप चला गया। तब फिर उसे प्रभा की याद आयी। कुछ दिनों तक उसके पास से क्षमाप्रार्थना-पूर्ण पत्र आते रहे, जिनमें वह बहुत जल्द घर आकर प्रभा से मिलने के वादे करता रहा और प्रेम के इस नये प्रवाह में पुरानी कटुताओं को जलमग्न कर देने के आशामय स्वप्न देखता रहा। पति-परायणा

प्रभा के सतप्त हृदय मे फिर आशा की हरियाली लहराने लगी, मुरझायी हुई आशा-लताएँ फिर पल्लवित होने लगी! किन्तु यह भी भाग्य की एक क्रीड़ा ही थी। थोड़े ही दिनों मे रसिक पशुपति एक नये प्रेम-जाल में फँस गया और तब से उसके पत्र आने बन्द हो गये। इस वक़्त प्रभा के हाथ मे वही पत्र थे जो उसके पति ने योरोप से उस समय भेजे थे जब नैराश्य का घाव हरा था। कितनी चिकनी-चुपड़ी बाते थी। कैसे-कैसे दिल खुश करनेवाले वादे थे! इसके बाद ही मालूम हुआ कि पशुपति ने एक अग्रेज लडकी से विवाह कर लिया है। प्रभा पर वज्र-सा गिर पडा — उसके हृदय के टुकड़े हो गये — सारी आशाओ पर पानी फिर गया। उसका निर्बल शरीर इस आघात को सहन न कर सका। उसे ज्वर आने लगा और किसी को उसके जीवन की आशा न रही। वह स्वय मृत्यु की अभिलाषिणी थी और मालूम भी होता था कि मौत किसी सर्प की भाँति उसकी देह से लिपट गयी है। लेकिन बुलाने से मौत भी नही आती। ज्वर शान्त हो गया और प्रभा फिर वही आशाविहीन जीवन व्यतीत करने लगी।

७

एक दिन प्रभा ने सुना कि पशुपति योरोप से लौट आया है और वह योरोपीय स्त्री उसके साथ नहीं है। बल्कि उसके लौटने का कारण वही स्त्री हुई है। वह औरत बारह साल तक उसकी सहयोगिनी रही पर एक दिन एक अंग्रेज युवक के साथ भाग गयी। इस भीषण और अत्यन्त कठोर आघात ने पशुपति की कमर तोड़ दी। वह नौकरी छोडकर घर चला आया। अब उसकी सूरत इतनी बदल गयी थी कि उसके मित्र लोग उससे बाजार मे मिलते तो उसे पहचान न सकते थे — मालूम होता था, कोई बूढ़ा कमर झुकाये चला जाता है। उसके बाल तक सफ़ेद हो गये।

घर आकर पशुपति ने एक दिन शान्ता को बुला भेजा। इस तरह शान्ता उसके घर आने-जाने लगी। वह अपने पिता की दशा देखकर मन ही मन कुढती थी।

इसी बीच में शान्ता के विवाह के सन्देश आने लगे, लेकिन प्रभा को अपने वैवाहिक जीवन में जो अनुभव हुआ था वह उसे इस सन्देशों को लौटाने पर मजबूर करता था। वह सोचती, कही इस लड़की की भी वही गति न हो जो मेरी हुई है। उसे ऐसा मालूम होता था कि यदि शान्ता का विवाह हो गया तो इस अन्तिम अवस्था मे भी मुझे चैन न मिलेगा और मरने के बाद भी मै पुत्री का शोक लेकर जाऊँगी। लेकिन अन्त मे एक ऐसे अच्छे घराने से सन्देश आया कि प्रभा उसे 'नाही' न

कर सकी। घर बहुत ही सम्पन्न था, वर भी बहुत ही सुयोग्य। प्रभा को स्वीकार ही करना पड़ा। लेकिन पिता की अनुमति भी आवश्यक थी। प्रभा ने इस विषय मे पशुपति को एक पत्र लिखा और शान्ता के ही हाथ भेज दिया। जब शान्ता पत्र लेकर चली गयी तब प्रभा भोजन बनाने चली गयी। भाँति-भाँति की अमगल कल्पनाएँ उसके मन मे आने लगी और चूल्हे से निकलते हुए धुएँ में उसे एक चित्र-सा दिखायी दिया कि शान्ता के पतले-पतले होंठ सूखे हुए है और वह काँप रही है और जिस तरह प्रभा पतिगृह से आकर माता की गोद मे गिर गयी थी उसी तरह शान्ता भी आकर माता की गोद मे गिर पड़ी है।

८

पशुपति ने प्रभा का पत्र पढ़ा तो उसे चुप-सी लग गयी। उसने अपना सिगरेट जलाया और जोर-जोर से खीचने लगा।

फिर वह उठ खड़ा हुआ और कमरे मे टहलने लगा। कभी मूँछो को दाँतों से काटता कभी खिचडी दाढ़ी को नीचे की ओर खीचता।

सहसा वह शान्ता के पास आकर खड़ा हो गया और काँपते हुए स्वर में बोला —बेटी, जिस घर को तेरी माँ स्वीकार करती है उसे मै कैसे 'नाही' कर सकता हूँ। उन्होंने बहुत सोच-समझकर हामी भरी होगी। ईश्वर करे तुम सदा सौभाग्यवती रहो। मुझे दुख है तो इतना ही कि जब तू अपने घर चली जायगी तब तेरी माता अकेली रह जायगी। कोई उसके आँसू पोंछनेवाला न रहेगा। कोई ऐसा उपाय सोच कि तेरी माता का क्लेश दूर हो और मैं भी इस तरह मारा-मारा न फिरूँ। ऐसा उपाय तू ही निकाल सकती है। सम्भव है लज्जा और सकोच के कारण मैं अपने हृदय की बात तुझसे कभी न कह सकता, लेकिन अब तू जा रही है और मुझे सकोच का त्याग करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। तेरी माँ तुझे प्यार करती है और तेरा अनुरोध कभी न टालेगी। मेरी दशा जो तू अपनी आँखों से देख रही है यही उनसे कह देना। जा, तेरा सौभाग्य अमर हो।

शान्ता रोती हुई पिता की छाती से लिपट गयी और यह समय से पहले बूढा हो जानेवाला मनुष्य अपनी दुर्वासनाओं का दण्ड भोगने के बाद पश्चात्ताप और ग्लानि के आँसू बहा-बहाकर शान्ता की केशराशि को भिगोने लगा।

पतिपरायणा प्रभा क्या शान्ता का अनुरोध टाल सकती थी? इस प्रेम-सूत्र ने दोनों भग्न-हृदयो को सदैव के लिए मिला दिया।

—सरस्वती, जनवरी १९२६

# ताँगेवाले की बड़

लेखक को इलाहाबाद मे एक बार ताँगे मे लम्बा सफर करने का सयोग हुआ। ताँगेवाले मियाँ जुम्मन बड़े बातूनी थे। उनकी उम्र पचास के करीब थी, उनकी बड से रास्ता इस आसानी से तय हुआ कि कुछ मालूम ही न हुआ। मै पाठकों के मनोरजन के लिए उनकी जीवनी और बड पेश करता हूँ।

१

जुम्मन — कहिए बाबूजी, ताँगा . . वह तो इस तरफ देखते ही नही शायद इक्का लेगे। मुबारक। कमखर्च बालानशीन, मगर कमर रह जायगी बाबूजी, सडक ख़राब है, इक्के में तकलीफ होगी। अखबार में पढ़ा होगा कल चार इक्के इसी सडक पर उलट गये। चुगी (म्युनिस्पिल्टी) सलामत रहे, इक्के बिलकुल बन्द हो जायँगे। मोटर, लारी तो सडक खराब करे और नुकसान हो हम ग़रीब इक्केवालों का। कुछ दिनों में हवाई जहाज़ में सवारियाँ चलेगी, तब हम इक्के-वालों को सड़क मिल जायगी। देखेगे उस वक़्त इन लारियों को कौन पूछता है, अजायबघरो में देखने को मिले तो मिले। अभी तो उनके दिमाग ही नही मिलते। अरे साहब, रास्ता निकलना दुश्वार कर दिया है, गोया कुल सड़क उन्ही के वास्ते है और हमारे वास्ते पटरी और धूल! अभी ऐंठते है, हवाई जहाजों को आने दीजिए। क्यों हुजूर, इन मोटरवालों की आधी आमदनी लेकर सरकार सडक की मरम्मत मे क्यों नही ख़र्च करती? या पेट्रोल पर चौगुना टैक्स लगा दे। यह अपने को टैक्सी कहते है, इसके माने तो टैक्स देनेवाले के है। ऐ हुजूर, मेरी बुढिया कहती है कि इक्का छोड़ ताँगा लिया, मगर अब ताँगे मे भी कुछ नही रहा, मोटर लो। मैंने जवाब दिया कि अपने हाथ-पैर की सवारी रखोगी या दूसरे के। बस हुजूर वह चुप हो गयी। और सुनिए, कल की बात है, कल्लन ने मोटर चलाया, मियाँ एक दरख़्त से टकरा गये, वही शहीद हो गये। एक बेवा और दस बच्चे यतीम छोड़े। हुजूर, मैं गरीब आदमी हूँ, अपने बच्चों को पाल लेता हूँ, और क्या चाहिए। आज कुछ कम चालीस साल से इक्केवानी करता हूँ, थोड़े दिन और रहे वह भी इसी

तरह चाबुक लिये कट जायेंगे। फिर हुजूर देखे, तो इक्का-ताँगा और घोडा गिरे पर भी कुछ-न-कुछ दे ही जायगा। बरअक्स इसके मोटर बन्द हो जाय तो हुजूर उसका लोहा दो रुपये मे भी कोई न लेगा। हुजूर घोड़ा घोडा ही है, हर हालत मे आपको मजिल तक पहुँचा ही देगा, मोटर जब देखिए रास्ते मे धरा है, सवारियाँ पैदल जा रही है, या हाथी की लाश खीच रही है। हुजूर, घोडे पर हर तरह का काबू और हर सूरत मे नफा। मोटर मे कोई आराम थोड़े ही है। ताँगे मे सवारी भी सो रही है, हम भी सो रहे है और घोड़ा भी सो रहा है मगर मजिल तय हो रही है। मोटर के शोर से तो कान के पर्दे फटते है और हाँकनेवाले को तो जैसे चक्की पीसना पडता है।

२

ऐ हुजूर, औरतें भी इक्के-ताँगे को बड़ी बेदर्दी से इस्तेमाल करती है। कल की बात है, सात-आठ औरते आयी और पूछने लगी कि तिरबेनी का क्या लोगे। हुजूर, हमारे निर्ख तो तय है, कोई ह्वाइटवे की दुकान तो है नही कि साल मे चार बार सेल हो। निर्ख से हमारी मजदूरी चुका दो और दुआएँ लो। यो तो हुजूर मालिक है, चाहे एक बार कुछ न दे मगर सरकार, यह औरते एक रुपये का काम हो तो आठ ही आना देती है। हुजूर, हम तो साहब लोगो का काम करते है। शरीफ हमेशा शरीफ रहते है और हुजूर औरत हर जगह औरत ही रहेगी। एक तो पर्दे के बहाने से हम लोग हटा दिये जाते है। इक्के-ताँगे में दर्जनो सवारियाँ और बच्चे बैठ जाते हैं। एक बार इक्के की कमानी टूटी तो उससे एक न दो पूरी तेरह औरते निकल आयी। मै गरीब आदमी मर गया। हुजूर सबको हैरत होती है कि किस तरह ऊपर-नीचे बैठ लेती है कि कैंची मारकर बैठती है। ताँगे मे भी जान नही बचती। दोनो घुटनों पर एक-एक बच्चा बैठा लेती है और उनके ऊपर एक-एक और, और उन्ही मे से एक नन्हे बच्चे को भी ले लेती है। इस तरह हुजूर ताँगे के अन्दर सर्कस का-सा नक्शा हो जाता है। इस पर भी पूरी-पूरी मजदूरी यह देना जानती नही। पहले तो पर्दे का जोर था। मर्दो से बातचीत हुई और मजदूरी मिल गयी। जब से नुमाइश हुई, पर्दा उखड़ गया और औरते बाहर आने-जाने लगी। हम गरीबों का सरासर नुकसान होता है। हुजूर हमारा भी अल्लाह मालिक है। साल मे मै भी बराबर हो रहता हूँ। सौ सुनार की तो एक लोहार की भी हो जाती है। पिछले महीने दो घंटे सवारी के बाद आठ आने पैसे देकर बी अन्दर भागीं। मेरी निगाह जो ताँगे पर पडी तो क्या देखता हूँ कि एक सोने का झुमका गिरकर रह

गया। मैं चिल्लाया, माई यह क्या, तो उन्होने कहा अब एक हब्बा और न मिलेगा और दरवाजा बन्द। मैं दो-चार मिनट तक तो तकता रह गया मगर फिर वापस चला आया। मेरी मजदूरी माई के पास रह गयी और उनका झुमका मेरे पास।

३

कल की बात है, चार स्वराजियो ने मेरा ताँगा किया, कटरे से स्टेशन चले, हुकुम मिला कि तेज चलो। रास्ते भर गाँधीजी की जय! गाँधीजी की जय! पुकारते गये। कोई साहब बाहर से आ रहे थे और बडी भीडे और जुलूस थे। कठपुतली की तरह रास्ते भर उछलते-कूदते गये। स्टेशन पहुँचकर मुश्किल से चार आने दिये। मैने पूरा किराया माँगा, मगर वहाँ गाँधीजी की जय! गाँधीजी की जय के सिवाय क्या था! मै चिल्लाया मेरा पेट! मेरा पेट! मेरा ताँगा थिएटर का स्टेज था, आप नाचे-कूदे और अब मजदूरी नहीं देते! मगर मै चिल्लाता ही रहा, वह भीड मे गायब हो गये। मै तो समझता हूँ कि लोग पागल हो गये है, स्वराज माँगते है, इन्ही हरकतो पर स्वराज मिलेगा! ऐ हुजूर, अजब हवा चल रही है। सुधार तो करते नही, स्वराज माँगते है। अपने करम तो पहले दुरुस्त हो ले। मेरे लडके को बरगलाया, उसने सब कपडे इकट्ठे किये और लगा जिद करने कि आग लगा दूँगा। पहले तो मैने समझाया कि मै गरीब आदमी हूँ, कहाँ से और कपडे लाऊँगा, मगर जब वह न माना तो मैंने गिराकर उसको खूब मारा। फिर क्या था होश ठिकाने हो गये। हुजूर, जब वक़्त आयेगा तो हमीं इक्के-ताँगेवाले स्वराज हाँककर लायेगे, मोटर पर स्वराज हर्गिज न आयेगा। पहले हमको पूरी मजदूरी दो फिर स्वराज माँगो। हुजूर औरते तो औरते, हम उनसे न जबान खोल सकते है न कुछ कह सकते है, वह जो कुछ दे देती है, लेना पडता है। मगर कोई-कोई नकली शरीफ लोग औरतों के भी कान काटते है। सवार होने से पहले हमारे नम्बर देखते है, अगर कोई चीज रास्ते मे उनकी लापरवाही से गिर जाय तो वह भी हमारे सिर ठोंकते है और मजा यह कि किराया कम दें तो हम उफ् तक न करे। एक बार का जिक्र सुनिए, एक नकली साहब 'वेल वेल' करके लाट साहब के दफ़्तर गये, मुझको बाहर छोड़ा और कहा कि एक मिनट में आते है, वह दिन है कि आज तक इन्तजार ही कर रहा हूँ। अगर यह हजरत कही दिखायी दिये तो एक बार तो दिल खोलकर बदला ले लूँगा फिर चाहे जो कुछ हो।

४

अब न पहले के-से मेहरबान रहे न पहले की-सी हालत। खुदा जाने शराफत कहाँ गायब हो गयी। मोटर के साथ हवा हुई जाती है। ऐ हुजूर, आप ही जैसे साहब लोग हम इक्केवालों की कद्र करते थे, हमसे भी इज्जत से पेश आते थे। अब वह वक़्त है कि हम लोग छोटे आदमी है, हर बात पर गाली मिलती है, गुस्सा सहना पडता है। कल दो बाबू लोग जा रहे थे, मैने पूछा ताँगा. . .तो एक ने कहा नही, हमको जल्दी है। शायद यह मजाक होगा। आगे चलकर एक साहब पूछते है कि टैक्सी कहाँ मिलेगी ? अब कहिए, यह छोटा शहर है, हर जगह जल्द से जल्द हम लोग पहुँचा देते है। इस पर भी हमी बतलाएँ कि टैक्सी कहाँ मिलेगी। अन्धेर है अन्धेर ! खयाल तो कीजिए, यह नन्ही-सी जान घोडों की, हम और हमारे बाल-बच्चे और चौदह आने घटा। हुजूर, चौदह आने मे तो घोड़ी को एक कमची भी लगाने को जी नही चाहता। हुजूर हमे तो कोई चौबीस घंटे के वास्ते मोल ले ले।

कोई-कोई साहब हमीं से नियारियापन करते है। चालीस साल से हुजूर, यही काम कर रहा हूँ। सवारी को देखा और भाँप गये कि क्या चाहते है। पैसा मिला और हमारी घोड़ी के पर निकल आये। एक साहब ने बडे तूम तड़ाक के बाद घटों के हिसाब से ताँगा तय किया और वह भी सरकारी रेट से कम। आप देखे कि चुगी ही ने रेट मुकर्रर करते वक़्त जान निकाल ली है लेकिन कुछ लोग बगैर तिलो के तेल निकालना चाहते है। खैर मैने भी बेकारी मे कम रेट ही मान लिया। फिर जनाब थोड़ी दूर चलकर हमारा ताँगा भी जनाजे की चाल चलने लगा। वह कह रहे है कि भाई जरा तेज चलो, मै कहता हूँ कि रोजे का दिन है, घोड़ी का दम न टूटे। तब वह फ़रमाते है, हमें क्या तुम्हारा ही घटा देर में होगा। सरकार, मुझे तो इसमे खुशी है कि आप ही सवार रहे और गुलाम आपको फिराता रहे।

५

लाट साहब के दफ़्तर मे एक बड़े बाबू थे। कटरे में रहते थे। खुदा झूठ न बुलवाये उनकी कमर तीन गज से कम न होगी। उनको देखकर इक्के-तांगेवाले आगे हट जाते थे। कितने ही इक्के वह तोड चुके थे। इतने भारी होने पर भी इस सफ़ाई से कूदते थे कि खुद कभी चोट न खायी। यह गुलाम ही की हिम्मत थी कि उनको ले जाता था। खुदा उनको खुश रक्खे, मजदूरी भी अच्छी देते थे। एक बार मैं ईदू का इक्का लिये जा रहा था, बाबू मिल गये और कहा कि दफ़्तर तक

पहुँचा दोगे ? आज देर हो गई है, तुम्हारे घोडे मे सिर्फ ढाँचा ही रह गया है। मैंने जवाब दिया यह मेरा घोड़ा नहीं है, हुजूर तो डबल मजदूरी देते है, हुकुम दें तो दो इक्के एक साथ बाँध लूँ और फिर चलूँ।

६

और सुनिए, एक सेठजी ने इक्का भाडा किया। सब्ज़ी मडी मे सब्जी वगैरह ली और भगाते हुए स्टेशन आये। इनाम की लालच मे मै घोडी पीटता लाया। खुदा जानता है उस रोज जानवर पर बडी मार पड़ी। मेरे हाथ दर्द करने लगे। रेल का वक़्त सचमुच बहुत ही तग था। स्टेशन पर पहुँचे तो मेरे लिए वही चवन्नी। मैं बोला, यह क्या ? सेठ जी कहते हैं, तुम्हारा भाडा तख़्ती दिखाओ। मैंने कहा देर करे आप और मेरा घोडा मुफ़्त पीटा जाय। सेठजी जवाब देते है कि भई, तुम भी तो जल्दी फरागत पा गये और चोट तुम्हारे तो लगी नही। मैने कहा कि महाराज, इस जानवर पर तो दया कीजिए। तब सेठजी ढीले पडे और कहा, हाँ इस गरीब का जरूर लिहाज होना चाहिए और अपनी टोकरी से चार पत्ते गोभी के निकाले और घोडी को खिलाकर चल दिये। यह भी शायद मजाक होगा। मगर मैं गरीब मुफ़्त मरा। उस वक़्त से घोड़ी का हाज़मा बदल गया।

अजब वक़्त आ गया है, पब्लिक अब दूसरो का तो लिहाज़ ही नही करती। रग-ढग, तौर-तरीका, सभी कुछ बदल गये है। जब हम अपनी मजदूरी माँगते है तो जवाब मिलता है कि तुम्हारी अमलदारी है, खुली सडक पर लूट लो ! अपने जानवरों को सेठजी हलुआ-जलेबी खिलायेंगे, मगर हमारी गर्दन मारेंगे। कोई दिन थे, कि हमको किराये के अलावा मालपूए भी मिलते थे।

७

अब भी, इस गिरे ज़माने में भी, कभी-कभी शरीफ रईस नज़र आ ही जाते हैं। एक बार का जिक्र सुनिए, मेरे ताँगे में सवारियाँ बैठी। कश्मीरी होटल से निकलकर कुछ थोड़ी-सी चढी थी। कीटगंज पहुँचकर सामनेवाले ने चौरस्ता आने से पहले ही चौदह आने दिये और उतर गये। फिर पिछली एक सवारी ने उतरकर चौदह आने दिये। अब तीसरी उतरती नही। मैने कहा कि हज़रत चौराहा आ गया। जवाब नदारद। मैने कहा कि बाबू इन्हे भी उतार लो। बाबू ने देखा-भाला, मगर वह नशे में चूर हैं, उतरे कौन ! बाबू बोले, अब क्या

करे। मैंने कहा — क्या करोगे। मामला तो बिलकुल साफ़ है। थाने ले जाइए और अगर दस मिनट मे कोई वारिस न पैदा हो तो माल आपका।

बस हुज़ूर, इस पेशे मे भी नित नये तमाशे देखने मे आते है। इन आँखों सब कुछ देखा है हुज़ूर। पर्दे पड़ते थे, जाजिमे बाँधी जाती थीं, घटाटोप लगाये जाते थे, तब जनानी सवारियाँ बैठती थी। अब हुज़ूर अजब हालत है, पर्दा गया हवा के बहाने से। इक्का कुछ सुखो थोड़े ही छोड़ा है। जिसको देखो यही कहता था कि इक्का नही ताँगा लाओ, आराम को न देखा। अब जान को नहीं देखते और मोटर-मोटर, टैक्सी-टैक्सी पुकारते है। हुज़ूर हमे क्या, हम तो दो दिन के मेहमान रह गये है, खुदा जो दिखायेगा देख लेंगे।

—ज़माना, सितम्बर १९२६

# शादी की वजह

यह सवाल टेढा है कि लोग क्यो शादी करते है ? औरत और मर्द को प्रकृत्या एक-दूसरे की जरूरत होती है लेकिन मौजूदा हालात मे आम तौर पर शादी की यह सच्ची वजह नही होती बल्कि शादी सभ्य जीवन की एक रस्म-सी हो गयी है। बहरहाल, मैने अक्सर शादीशुदा लोगो से इस बारे मे पूछा तो लोगो ने इतनी तरह के जवाब दिये कि मैं दग रह गया। उन जवाबो को पाठको के मनोरजन के लिए नीचे लिखा जाता है —

एक साहब का तो बयान है कि मेरी शादी बिलकुल कमसिनी मे हुई और उसकी जिम्मेदारी पूरी तरह मेरे माँ-बाप पर है। दूसरे साहब को अपनी खूबसूरती पर बड़ा नाज है। उनका खयाल है कि उनकी शादी उनके सुन्दर रूप की बदौलत हुई। तीसरे साहब फ़रमाते है कि मेरे पड़ोस मे एक मुशी साहब रहते थे जिनके एक ही लडकी थी। मैने सहानुभूतिवश खुद ही बातचीत करके शादी कर ली। एक साहब को अपने उत्तराधिकारी के रूप मे एक लड़के की जरूरत थी। चुनाचे आपने इसी धुन मे शादी कर ली। मगर बदकिस्मती से अब तक उनकी सात लड़कियाँ हो चुकी है और लडके का कहीं पता नही। आप कहते है कि मेरा खयाल है कि यह शरारत मेरी बीवी की है जो मुझे इस तरह कुढाना चाहती है। एक साहब बड़े पैसेवाले है और उनको अपनी दौलत खर्च करने का कोई तरीका ही मालूम न था इसलिए उन्होने अपनी शादी कर ली। एक और साहब कहते है कि मेरे आत्मीय और स्वजन हर वक़्त मुझे घेरे रहा करते थे इसलिए मैने शादी कर ली। और इसका नतीजा यह हुआ कि अब मुझे शान्ति है। अब मेरे यहाँ कोई नही आता। एक साहब तमाम उम्र दूसरों की शादी-ब्याह पर व्यवहार और भेट देते-देते परेशान हो गये तो आपने उनकी वापसी की गरज से आखिरकार खुद अपनी शादी कर ली।

और साहबो से जो मैने दर्याफ़्त किया तो उन्होने निम्नलिखित कारण बतलाये। यह जवाब उन्ही के शब्दों मे नम्बरवार नीचे दर्ज किये जाते है —

१ — मेरे ससुर एक दौलतमन्द आदमी थे और उनकी यह इकलौती बेटी थी, इसलिए मेरे पिता ने शादी की।

२ — मेरे बाप-दादा सभी शादी करते चले आये है इसलिए मुझे भी शादी करना पडी।

३ — मै हमेशा से खामोश और कम बोलनेवाला रहा हूँ, इनकार न कर सका।

४ — मेरे ससुर ने शुरू मे अपने धन-दौलत का बहुत प्रदर्शन किया इसलिए मेरे माँ-बाप ने फौरन मेरी शादी मजूर कर ली।

५ — नौकर अच्छे नही मिलते थे और अगर मिलते भी थे तो ठहरते नही थे। खास तौर पर खाना पकानेवाला अच्छा नही मिलता। शादी के बाद इस मुसीबत से छुटकारा मिल गया।

६ — मै अपना जीवन-बीमा कराना चाहता था और खानापूरी के वास्ते विधवा का नाम लिखना जरूरी था।

७ — मेरी शादी जिद मे हुई। मेरे ससुर शादी के लिए रजामन्द न होते थे मगर मेरे पिता को जिद हो गयी। इसलिए मेरी शादी हुई। आखिरकार मेरे ससुर को मेरी शादी करना ही पडी।

८ — मेरे ससुरालवाले बडे ऊँचे खानदान के है इसलिए मेरे माता-पिता ने कोशिश करके मेरी शादी की।

९ — मेरी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था न थी इसलिए मुझे शादी करना पड़ी।

१० — मेरे और मेरी बीवी के जनम के पहले ही हम दोनों के माँ-बाप मे शादी की बातचीत पक्की हो गयी थी।

११ — लोगो के आग्रह से पिता ने शादी कर दी।

१२ — नस्ल और खानदान चलाने के लिए शादी की।

१३ — मेरी माँ का देहान्त हो गया था और कोई घर को देखनेवाला न था इसलिए मजबूरन शादी करना पडी।

१४ — मेरी बहनें अकेली थी, इस वास्ते शादी कर ली।

१५ — मै अकेला था, दफ्तर जाते वक़्त मकान मे ताला लगाना पड़ता था इसलिए शादी कर ली।

१६ — मेरी माँ ने कसम दिलायी थी इसलिए शादी की।

१७ — मेरी पहली बीवी की औलाद को परवरिश की जरूरत थी, इसलिए शादी की।

१८ — मेरी माँ का खयाल था कि वह जल्द मरनेवाली है और मेरी शादी

अपने ही सामने कर देना चाहती थीं, इसलिए मेरी शादी हो गयी। लेकिन शादी को दस साल हो रहे है और भगवान की दया से माँ के आशीष की छाया अभी तक कायम है।

१९ —तलाक देने को जी चाहता था इसलिए शादी की।

२० —मै मरीज रहता हूँ और कोई तीमारदार नही है इसलिए मैंने शादी कर ली।

२१ —केवल सयोग से मेरा विवाह हो गया।

२२ —जिस साल मेरी शादी हुई उस साल बहुत बड़ी सहालग थी। सबकी शादी होती थी, मेरी भी हो गयी।

२३ —बिला शादी के कोई अपना हाल पूछनेवाला न था।

२४ —मैने शादी नही की है, एक आफत मोल ले ली है।

२५ —पैसेवाले चर्चा की अवज्ञा न कर सका।

२६ —मै बुड्ढा होने लगा था, अगर अब शादी न करता तो कब करता।

२७ —लोक-हित के ख़याल से शादी की।

२८ —पड़ोसी बुरा समझते थे इसलिए निकाह कर लिया।

२९ —डाक्टरों ने शादी के लिए मजबूर किया।

३० —मेरी कविताओं की कोई दाद न देता था।

३१ —मेरे दाँत गिरने लगे थे और बाल सफेद हो गये थे इसलिए शादी कर ली।

३२ —फ़ौज मे शादीशुदा लोगों को तनख्वाह ज्यादा मिलती थी इसलिए मैंने भी शादी कर ली।

३३ —कोई मेरा गुस्सा बर्दाश्त न करता था इसलिए मैंने शादी कर ली।

३४ —बीवी से ज्यादा कोई अपना समर्थक नही होता इसलिए मैंने शादी कर ली।

३५ —मै खुद हैरान हूँ कि शादी क्यो की।

३६ —शादी भाग्य मे लिखी थी इसलिए कर ली।

इसी तरह जितने मुँह उतनी बाते सुनने मे आयी।

—ज़माना, मार्च १९२७

# मोटेराम जी शास्त्री

१

पण्डित मोटेराम जी शास्त्री को कौन नही जानता? आप अधिकारियो का रुख़ देखकर काम करते है। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में आपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनो में भी आपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर भी उनकी तकदीर की मीठी नीद न टूटी, और अध्यापन-कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त में आपने एक नयी तदबीर सोची। घर में जाकर धर्मपत्नी जी से बोले — इन बूढे तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूँ?

धर्मपत्नी ने चिंतित होकर कहा — भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए?

मोटेराम — तुम्हे जब देखो, पेट ही की फिक्र पडी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमत्रण न मिलते हो, और चाहे कोई निन्दा ही करे, पर मै परोसा लिये बिना नही आता हूँ। क्या आज ही सब यजमान मरे जाते है? मगर जन्म भर पेट ही जिलाया तो क्या किया। ससार का कुछ सुख भी तो भोगना चाहिए। मैने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा — वैद्य कैसे बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है?

मोटे० — वैद्यक पढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार मे विद्या का इतना महत्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके है, बस और कुछ नही है। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूँगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नहीं। किसी को क्या गरज़ पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूँगा। उस पर यह शब्द लिखे होगे — 'यहाँ स्त्री-पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है।' दो-चार पैसे का हड़-बहेड़ा-आँवला कूट-छानकर रख लूँगा। बस इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हाँ, समाचारपत्रों मे विज्ञापन दूँगा और नोटिस बँटवाऊँगा। उसमे लका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियाँ दर्ज की जायँगी।

ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होगे। जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानो मे इन नामो के मनुष्य रहते भी है, या नही। फिर देखो वैद्यक कैसी चलती है।

स्त्री — लेकिन बिना जाने-बूझे दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी?

मोटे० — फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परास्त करने का ठेका नही लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पडते है, सभी तो नही मर जाते। मेरा तो यह कहना है कि जिन्हे कोई औषधि नही दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर आप ही अच्छे हो जाते है। वैद्यो को बिना माँगे यश मिलता है। पाँच रोगियों मे एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोडे ही आवेगे। मैने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नही है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूँ, पत्रों मे आयुर्वेद-महत्व पर दो-चार लेख लिख दूँगा, उनमे जहाँ-तहाँ दो-चार कवित्त भी जोड़ दूँगा और लिखूँगा भी ज़रा चटपटी भाषा मे। फिर देखो कितने उल्लू फँसते है। यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूँ। मै नगर के सफल वैद्यो की चालो का अवलोकन करता रहा हूँ और इतने दिनो के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पाँव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा — मैं इस उम्र मे भला क्या गहने पहनूँगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओ कि तुम्हे दवाएँ बनानी भी तो नही आती, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नही हो?

मोटे० — प्रिये! तुम वास्तव मे बडी मूर्खा हो। अरे वैद्यो के लिए इन बातो मे से एक की भी आवश्यकता नही। वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाट-बाट की। एक बडा-सा कमरा चाहिए, उसमे एक दरी हो, ताखों पर दस-पाँच शीशियाँ-बोतले हो। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नही, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बडा प्रभाव पडेगा, तुम देख लेना। अलकारो का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नही दीखता जो अलकारों के विषय मे मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनो घास तो नहीं खोदी है! दस-पाँच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहाँ आया-जाया

करेंगे। बस वही मेरे दल्लाल होंगे। उन्ही की मार्फत मेरे पास रोगी आवेंगे। मै आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नही, नायिका-ज्ञान के बल पर धडल्ले से वैद्यक करूँगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा — मुझे तो डर लगता है कि कही यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जायें। न इधर के रहो न उधर के। तुम्हारे भाग्य मे तो लडके पढ़ाना लिखा है, और चारो ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हे वही तोते रटाने पडेंगे।

मोटे० — तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यो नही आता ?

स्त्री — इसलिए कि तुम वहाँ भी धूर्तता करोगे। मै तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूँ। तुम जो कुछ नही हो और नही हो सकते, वह क्यो बनना चाहते हो ? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ है। मैं चाहती हूँ कि तुम भले आदमी बनकर रहो। निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो ?

मोटे० — आखिर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा ?

स्त्री — किसी रईस की मुसाहिबी क्यो नही कर लेते ? जहाँ दो-चार सुन्दर कवित्त सुना दोगे वह खुश हो जायगा और कुछ न कुछ दे ही मरेगा। वैद्यक का ढोग क्यो रचते हो !

मोटे० — मुझे ऐसे-ऐसे गुर मालूम है जो वैद्यों के बाप-दादो को भी न मालूम होंगे। और सभी वैद्य एक-एक, दो-दो रुपये पर मारे-मारे फिरते है, मैं अपनी फीस पाँच रुपये रक्खूँगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बडे वैद्य है नही तो इतनी फ़ीस क्यों होती ?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया, बोली — इतनी देर मे तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहाँ तुम्हारा रग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे० — (हँसकर) क्या मैं इतना भी नही जानता। लखनऊ मे अड्डा जमेगा अपना। साल भर में वह धाक बाँध दूँ कि सारे वैद्य गर्द हो जायँ। मुझे और भी कितने ही मत्र आते है। मै रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूँगा। कहूँगा, मै जब तक रोगी की प्रकृति को भलीभाँति पहचान न लूँ, उसकी दवा नही कर सकता। बोलो कैसी रहेगी ?

स्त्री की बाँछें खिल गयी, बोली — अब मैं तुम्हे मान गयी। अवश्य चलेगी

तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई सदेह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नही तो धोखा खाओगे।

२

साल भर गुजर गया।

भिषगाचार्य पण्डित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ मे धूम मच गयी। अलंकारो का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगो के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागे। पण्डित जी उन्हे कवित्त सुनाते, हँसाते और बलकारक औषधियाँ खिलाते, और वह रईसो मे, जिन्हे पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफो के पुल बाँधते। साल ही भर में वैद्यजी का वह रग जमा, कि बायद व शायद। गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ मे एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवा रानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसो मे आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियो के झमेले में न फँसो, नही एक दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये-बुझाये। पडितजी के उपासको मे बिड़हल की रानी भी थीं। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग मे ग्रस्त थी। पण्डितजी उनके यहाँ दिन में पाँच-पाँच बार जाते। रानी साहिबा उन्हे एक क्षण के लिए भी अपने पास से हटने न देना चाहती थीं। पण्डितजी के पहुँचने मे ज़रा भी देर हो जाती तो बेचैन हो जाती। एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खडी रहती थी। अब पण्डित जी ने खूब केचुल बदली थी। तजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाँधते और पप जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार मे नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसे टालती।

मगर चर्खे जफाकार और ही षड्यन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी, रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज़ देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने मे कई आदमी सोटे लिये हुए कमरे में घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी ने भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिये।

पण्डितजी पर बेभाव पड़ने लगी। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे मे कई आदमियो ने घर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैर पकड़ते, कभी उसका। हाय! हाय! का शब्द निरन्तर मुँह से निकल रहा था पर उन बेरहमो को उन पर जरा भी दया न आती थी। एक आदमी ने एक लात जमाकर कहा — इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला — इसके मुँह मे कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा — क्यो वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मजूर है? नाक कटवाओगे या मुँह मे कालिख लगवाओगे?

पण्डित — हाय, हाय, मर गया और जो चाहे करो, मगर नाक न काटो!

एक — अब तो फिर इधर न आवेगा?

पडित — भूलकर भी नही, सरकार। हाय मर गया!

दूसरा — आज ही लखनऊ से रफूरैट हो जाओ नहीं तो बुरा होगा।

पडित — सरकार, मैं आज ही चला जाऊँगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ। आप यहाँ मेरी सूरत न देखेगे।

तीसरा — अच्छा भाई, सब कोई इसे पाँच-पाँच लाते लगाकर छोड दो।

पडित — अरे सरकार, मर जाऊँगा, दया करो।

चौथा — तुम जैसे पाखडियों का मर जाना ही अच्छा है। हाँ तो शुरू हो।

पँचलत्ती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजे आने लगी। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज़ निकल आती थी, मानो उसकी प्रतिध्वनि हो।

पँचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेराम जी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया। चलते-चलते चेतावनी दे दी, कि प्रात.काल से पहले भाग खडे होना, नही तो और ही इलाज किया जायगा।

## ३

मोटेराम जी लँगड़ाते, कराहते, लकडी टेकते घर मे गये और धम से चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा—कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है!

मोटे० — हाय भगवन, मर गया।

स्त्री—कहाँ दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबडी न खाओ। लवण-भास्कर ले आऊँ?

मोटे०—हाय, दुष्टो ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल लिया।

स्त्री—तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हाँ पिटे तो हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहाँ मत आया-जाया करो। मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे०—हाय, हाय! रॉड, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातो-रात लखनऊ से भाग जाना है। नही तो सबेरे प्राण न बचेगे।

स्त्री—नही, अभी तुम्हारा पेट नही भरा। अभी कुछ दिन और यहाँ की हवा खाओ! कैसे मजे से लडके पढ़ाते थे, हाँ, नही तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की?

पण्डित—हाय, हाय, वह चुडैल तो भाग गयी। उसी के कारण! क्या जानता था कि यह हाल होगा, नही तो उसकी चिकित्सा ही क्यो करता?

स्त्री—हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैद्यकी चल गयी थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश मार दिया। आखिर फिर वही पढौनी करना पड़ी। हो तक़दीर के खोटे।

× × ×

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खडा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रो मे एक भी नजर न आता था। पण्डितजी पडे कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

—माधुरी, जनवरी १९२८

# पर्वत-यात्रा

प्रात.काल मुं० गुलबाजखाँ ने नमाज़ पढी, कपडे पहने और महरी से किराये की गाड़ी लाने को कहा। शीरी बेगम ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे कहाँ जाने का इरादा है?

गुल — जरा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

शीरी — तो पैदल क्यों नही चले जाते? कौन बडी दूर है।

गुल — जो बात तुम्हारी समझ मे न आये, उसमे जबान न खोला करो।

शीरी — पूछती तो हूँ पैदल चले जाने मे क्या हरज है? गाड़ीवाला एक रुपये से कम न लेगा।

गुल — (हँसकर) हुक्काम किराया नही देते। उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया माँगे! चालान करवा दूँ।

शीरीं — तुम तो हाकिम भी नहीं हो, तुम्हे वह क्यों ले जाने लगा!

गुल — हाकिम कैसे नहीं हूँ? हाकिम के क्या सीग-पूँछ होती है, जो मेरे नही है? हाकिम का दोस्त हाकिम से कम रोब नहीं रखता। अहमक नही हूँ कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करता हूँ। यह इसी की बरक्त है कि पुलिस, माल, दीवानी के अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते है। थानेदार ने कल जो सौगात भेजी थी, वह किसलिए? मै उनका दामाद तो नही हूँ! सब मुझसे डरते है।

इतने में महरी एक ताँगा लायी। खाँ साहब ने फौरन साफ़ा बाँधा और चले। शीरी ने कहा — अरे तो, पान तो खाते जाओ!

गुल—हाँ, लाओ हाथ मे मेहदी भी लगा दो। अरी नेकबख्त, हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बेअदबी है।

शीरी — आओगे कब तक? खाना तो यही खाओगे!

गुल — तुम मेरे खाने की फिक्र न करना, शायद कुँअर साहब के यहाँ चला जाऊँ। कोई मुझे पूछे तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गये है।

खाँ साहब आकर ताँगे पर बैठे। ताँगेवाले ने पूछा — हुजूर कहाँ चलूँ?

गुल — छोटे साहब के बँगले पर। सरकारी काम से जाना है।

ताँगे० — हुजूर को वहाँ कितनी देर लगेगी?

गुल — यह मै कैसे बता दूँ, यह तो हो नही सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहे, और मै उठकर चला आऊँ। सरकारी काम है, न जाने कितनी देर लगे। बड़े अच्छे आदमी है बेचारे। मजाल नही कि जो बात कह दूँ, उससे इनकार कर दें। आदमी को ग़रूर न करना चाहिए। गरूर करना शैतान का काम है। मगर कई थानेदारो से जवाब तलब करा चुका हूँ। जिसको देखा कि रिआया को ईज़ा पहुँचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूँ।

ताँगे० — हुजूर, पुलिस बड़ा अधेर करती है। जब देखो बेगार, कभी आधी रात को बुला भेजा, कभी फजिर को। मरे जाते है हुजूर। उस पर हर मोड़ पर सिपाहियों को पैसे चाहिए। न दें, तो झूठा चालान कर दे।

गुल — सब जानता हूँ जी, अपनी झोपडी में बैठा सारी दुनिया की सैर किया करता हूँ। वही बैठे-बैठे बदमाशों की खबर लिया करता हूँ। देखो, ताँगे को बँगले के भीतर न ले जाना। बाहर फाटक पर रोक देना।

ताँगे० — अच्छा हुजूर। अच्छा अब देखिए वह सिपाही मोड पर खड़ा है। पैसे के लिए हाथ फैलायेगा। न दूँ तो ललकारेगा। मगर आज कसम कुरान की, टका-सा जवाब दे दूँगा। हुजूर बैठे है, तो क्या कर सकता है।

गुल — नही, नही, जरा-जरा-सी बात पर मैं इन छोटे आदमियों से नही लड़ता। पैसे दे देना। मैं तो पीछे से बचा की ख़बर लूँगा। मुअत्तल न करा दूँ तो सही। दूबदू गाली-गलौज करना, इन छोटे आदमियो के मुँह लगना मेरी आदत नहीं।

ताँगेवाले को भी यह बात पसन्द आयी। मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिये। ताँगा साहब के बँगले पर पहुँचा। ख़ाँ साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर चौकन्नी आँखों से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बँगले के बरामदे में जाकर खड़े हो गये। बैरा बरामदे मे बैठा था। आपने उसे देखते ही सलाम किया।

बैरा — हुजूर तो अधेर करते है। सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते है।

गुल — अजी इन बातों मे क्या रक्खा है। खुदा की निगाह में सब इन्सान बराबर है।

बैरा—हुजूर को अल्लाह सलामत रक्खे, क्या बात कही है। हक तो यही है, पर आदमी अपने को कितना भूल जाता है! यहाँ तो छोटे-छोटे अमले भी इतज़ार करते रहते है कि यह हाथ उठावे। साहब को इत्तला कर दूं?

गुल—आराम मे हो तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नही।

बैरा—जी नही हुजूर, हाजिरी पर से तो कभी उठ चुके, कागज-वागज़ पढते होगे।

गुल—अब इसका तुम्हें अख्तियार है, जैसा मौका हो वैसा करो। मौका-महल पहचानना तुम्ही लोगों का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लडकी तो खैरियत से है न?

बैरा—हाँ हुजूर, अब बहुत मजे मे है। जब से हुजूर ने उसके घरवालो को बुलाकर डाँट दिया है, तब से किसी ने चूँ भी नही किया। लड़की हुजूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब को खाँ साहब की इत्तला की, और एक क्षण मे खाँ साहब जूते उतारकर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फर्श पर बैठ गये। साहब का नाम काटन था।

काटन—ओ! ओ! यह आप क्या करता है, कुर्सी पर बैठिए, कुर्सी पर बैठिए।

खाँ—बहुत मजे मे बैठा हूँ हुजूर। आपके बराबर भला बैठ सकता हूँ! आप बादशाह, मैं रैयत।

काटन—नही, नही आप हमारा दोस्त है।

खाँ—हुजूर चाहे मेरे को आफताब बना दे, पर मैं तो अपनी हकीकत समझता हूँ। बदा उन लोगों मे नहीं है जो हुजूर के करम से चार हरफ पढ़कर ज़मीन पर पाँव नही रखते और हुजूर लोगों की बराबरी करने लगते है।

काटन—खाँ साहब, आप बहुत अच्छा आदमी है। हम आज के पाँचवे दिन नैनीताल जा रहा है। वहाँ से लौटकर आपसे मुलाकात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहाँ जाता है।

खाँ साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गये थे, पर इस समय कैसे कह देते कि मैं वहाँ कभी नही गया। साहब की नज़रो से गिर न जाते। साहब समझते कि यह रईस नही, कोई चरकटा है। बोले—हाँ हुजूर, कई बार हो आया हूँ।

काटन — आप कई बार हो आया है ? हम तो पहली दफा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है ?

खाँ — बहुत बडा शहर है हुजूर, मगर कुछ ऐसा बडा भी नही है।

काटन — आप कहाँ ठहरता है। वहाँ होटलो मे तो बहुत पैसा लगता है।

खाँ — मेरी हुजूर न पूछे, कभी कही ठहर गया, कभी कही ठहर गया। हुजूर के अकबाल से सभी जगह दोस्त है।

काटन — आप वहाँ किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मेरे ठहरने का बदोबस्त कर दे। हम किफायत से काम करना चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नही चलता।

खाँ साहब बडी मुश्किल मे फँसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पडा — जैसा हुजूर का हुक्म, हुजूर के साथ ही चला चलूँगा। मगर मुझे अभी ज़रा देर है हुजूर।

काटन — ओ कुछ परवाह नही, हम आपके लिए एक हफ़्ता ठहर सकता है। अच्छा सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इंतजाम करने को लिख दे। आज के सातवे दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे स्टेशन पर मिलेगा।

खाँ साहब ने सलाम किया, और बाहर निकले। ताँगेवाले से कहा — कुँअर शमशेरसिह की कोठी पर चलो।

## २

कुँअर शमशेरसिह खानदानी रईस थे। उन्हे अभी तक अँग्रेजी रहन-सहन की हवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहिबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-एक बजे रात तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया मे क्या होता है, इसकी उन्हे कुछ खबर न होती थी। या हुई भी तो सुनी-सुनायी। खाँ साहब उनके दोस्तों मे थे।

जिस वक़्त खाँ साहब कोठी में पहुँचे दस बज गये थे, कुँअर साहब बाहर निकल आये थे, मित्रगण जमा थे। खाँ साहब को देखते ही कुँअर साहब ने पूछा — कहिए खाँ साहब, किधर से ?

खाँ साहब — जरा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा,

मगर फुर्सत ही न मिलती थी। आज उनका आदमी ज़बर्दस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहाँ तक बेरुखी करूँ।

कुँअर — यार, तुम न जाने अफसरो पर क्या जादू कर देते हो कि जो आता है तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मंत्र क्यों नही सिखा देते।

खाँ — मुझे खुद ही नही मालूम कि क्यो हुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते है। आपको यक़ीन न आवेगा, मेरी आवाज सुनते ही कमरे के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये और ले जाकर अपनी ख़ास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुँअर — अपनी ख़ास कुर्सी पर?

खाँ — हाँ साहब, हैरत मे आ गया, मगर बैठना ही पडा। फिर सिगार मँगवाया, इलाइची, मेवे, चाय सभी कुछ आ गये। यों कहिए कि ख़ासी दावत हो गयी। यह मेहमानदारी देख कर मै दंग रह गया।

कुँअर — तो वह सब दोस्ती भी करना जानते है।

खाँ — अजी दूसरा क्या खा के दोस्ती करेगा। अब हद हो गयी कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुँअर — सच!

खाँ — कसम कुरान की। हैरान था कि क्या जवाब दूँ। मगर जब देखा कि किसी तरह नही मानते, तो वादा करना ही पडा। आज ही के दिन कूच है।

कुँअर — क्यों यार, मै भी चला चलूँ तो क्या हरज है?

ख़ाँ — सुभानअल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुँअर — भई, लोग तरह-तरह की बाते करते है, इससे जाते डर लगता है। आप तो हो आये होगे?

खाँ — कई बार हो आया हूँ। हाँ, इधर कई साल से नही गया।

कुँअर — क्यों साहब, पहाड़ो पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा?

राधाकान्त व्यास बोले — धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ भी जाइए, पर पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोडता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते है, उनमे बहुत कम जीते लौटते है और सग्रहणी तो प्राय: सभी को हो जाती है।

कुँअर — हाँ, सुना तो हमने भी है कि पहाडो का पानी बहुत लगता है।

लाला सुखदयाल ने हामी भरी — गोसाईं जी ने भी तो पहाड़ के पानी की निन्दा की है —

लागत अति पहाड कर पानी।
बड़ दुख होत न जाइ बखानी।।

खाँ — तो यह इतने अँग्रेज वहाँ क्यों जाते है साहब? ये लोग अपने वक्त के लुकमान है। इनका कोई काम मसलहत से खाली नही होता। पहाड़ो की सैर से कोई फायदा न होता तो क्यो जाते, ज़रा यह तो सोचिए।

व्यास — यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे है। उनकी देखा-देखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आँखे नही खुलती।

लाला — मेरे पिता जी एक बार किसी अँग्रेज के साथ पहाड़ पर गये। वहाँ से लौटे तो मुझे वसीयत की कि खबरदार कभी पहाड़ पर न जाना। आखिर कोई बात देखी होगी, जभी तो यह वसीयत की।

वाजिद — हुजूर, खाँ साहब जाते है जाने दीजिए, आपको मै जाने की सलाह न दूँगा। जरा सोचिए, कोसो की चढाई, फिर रास्ता इतना खतरनाक कि खुदा की पनाह! ज़रा-सी पगडंडी और दोनों तरफ कोसो का खड्ड। नीचे देखा और थरथराकर आदमी गिर पड़ा और जो कही पत्थरो मे आग लग गयी, तो चलिए वारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गये।

खाँ — और जो लाखों आदमी पहाडों पर रहते है?

वाजिद — उनकी और बात है भाई साहब।

खाँ — और बात कैसी? क्या वे आदमी नही है?

वाजिद — लाखों आदमी दिनभर हल जोतते है, फावडे चलाते है, लकडी फाड़ते है, आप करेंगे? है आपमे इतना दम? हुजूर उस चढाई पर चढ सकते है?

खाँ — क्यों नहीं टट्टुओं पर जायँगे।

वाजिद — टट्टुओं पर छ. कोस की चढाई! होश की दवा कीजिए।

कुँअर — टट्टू पर! भई हमसे न जाया जायगा। कही टट्टू भडके तो कही के न रहे।

लाला — गिरे तो हड्डियाँ तक न मिले!

व्यास — प्राण तक चूर-चूर हो जाय।

वाजिद — खुदावद, एक ज़रा-सी ऊँचाई पर से आदमी देखता है, तो काँपने लगता है, न कि पहाड़ की चढ़ाई।

कुँअर — वहाँ सड़कों पर इधर-उधर ईंट या पत्थर की मुँडेर नही बनी हुई है?

वाजिद — खुदावद, मञ्जिलों के रास्ते में मुंडेर कैसी !

कुँअर — आदमी का काम तो नही है।

लाला — सुना वहाँ घेघा निकल आता है।

कुँअर — अरे भई, यह बुरा रोग है। तब मैं वहाँ जाने का नाम भी न लूँगा।

ख़ाँ — आप लाला साहब से पूछे कि साहब लोग जो वहाँ रहते हैं, उनको घेघा क्यों नही हो जाता।

लाला — वह लोग ब्रांडी पीते है। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते है भला। फिर उनका अकबाल !

वाजिद — मुझे तो यकीन नही आता कि ख़ाँ साहब कभी नैनीताल गये हों। इस वक़्त डीग मार रहे है। क्यों साहब, आप कितने दिन वहाँ रहे ?

ख़ाँ — कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद — आप वहाँ किस मुहल्ले में रहते थे ?

ख़ाँ — (गड़बड़ाकर) जी—मै।

वाजिद — आखिर आप चार बरस कहाँ रहे ?

ख़ाँ — देखिए याद आ जाय तो कहूँ।

वाजिद — जाइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हाँक दी कि वहाँ चार बरस तक रहे !

ख़ाँ — अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मै कभी नैनीताल नही गया। बस अब तो खुश हुए।

कुँअर — आखिर आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहाँ ठहरे थे।

वाजिद — कभी गये हों, तब न बताये।

ख़ाँ — कह तो दिया कि मैं नही गया, चलिए छुट्टी हुई। अब आप फ़रमाइए कुँअर साहब, आपको चलना है या नहीं ? ये लोग जो कहते है सब ठीक। वहाँ घेघा निकल आता है, वहाँ का पानी इतना ख़राब कि खाना बिलकुल नही हज़म होता, वहाँ हर रोज़ दस-पाँच आदमी खड्ड में गिरा करते है। अब आप क्या फैसला करते है ? वहाँ जो मजे है वह यहाँ ख्वाब मे भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाज़े पर घटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नही होती, उनसे वहाँ चौबीसो घटो का साथ रहेगा। मिसो के साथ झील मे सैर करने का मज़ा अगर मिल सकता है तो वहीं। अजी सैकड़ों अँग्रेज़ों से दोस्ती हो जायगी। तीन महीने वहाँ

रहकर आप इतना नाम हासिल कर सकते है जितना यहाँ जिन्दगी भर भी न होगा। बस, और क्या कहूँ।

कुँअर —वहाँ बड़े बडे अँग्रेजों से मुलाकात हो जायगी ?

खाँ — जनाब, दावतो के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुँअर — जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आये।

खाँ — तो बस तैयारी कीजिए।

सभाजन ने जब देखा कि कुँअर साहब नैनीताल जाने के लिए तैयार हो गये तो सब के सब हाँ मे हाँ मिलाने लगे।

व्यास — पर्वत-कदराओं मे कभी-कभी योगियो के दर्शन हो जाते है।

लाला — हाँ साहब, सुना है — दो-दो सौ साल के योगी वहाँ मिलते है। जिसकी ओर एक बार आँख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गये।

वाजिद — मगर हुज़ूर चले, तो इस ठाठ से चले कि वहाँ के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आये है।

लाला — लक्ष्मी हथिनी को जरूर ले चलिए। वहाँ कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे और गगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दग हो जायँगे।

व्यास — एक डका भी हो, तो क्या पूछना।

कुँअर — नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेस बनाना चाहिए।

लाला — हाँ, डके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घटा जरूर हो।

खाँ — जब तक वहाँ किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बँगला ठीक कर रक्खे। छोटे साहब को भी उसी मे ठहरा लेंगे।

कुँअर — वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफ़सर है।

खाँ — उनको लाने का जिम्मा हमारा। खीच-खाँचकर किसी न किसी तरह ले ही आऊँगा।

कुँअर — अगर उनके साथ ठहरने का मौका मिले, तब तो मैं समझूँ नैनीताल का जाना पारस हो गया।

३

एक हफ़्ता गुजर गया। सफर की तैयारियाँ हो गयीं। प्रातःकाल काटन साहब

का खत आया कि आप हमारे यहाँ आयेगे या मुझसे स्टेशन पर मिलेगे। कुँअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन का रास्ता इसी तरफ से है। मै तैयार रहूँगा। यह खत लिखवाकर कुँअर साहब अन्दर गये तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरी देवी बैठी हुई है। उन्हे देखकर बोली—क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे है?

कुँअर — जी हाँ, आज रात को तैयारी है।

रामेश्वरी—अरे! आज ही रात को! यह नही हो सकता। कल बच्चा का मुडन है। मै एक न मानूँगी। आप ही न होगे तो और लोग आकर क्या करेगे।

कुँअर — तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया, पहले से मालूम होता तो मै कल जाने का इरादा ही क्यो करता।

रामेश्वरी — तो इसमे लाचारी की कौन-सी बात है, कल न सही दो-चार दिन बाद सही।

कुँअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोली — हाँ और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना, क्या साइत टली जाती है।

कुँअर — आह! छोटे साहब से वादा कर चुका हूँ, वह रात ही को मुझे लेने आयँगे। आखिर वह अपने दिल मे क्या कहेंगे?

रामेश्वरी — ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते है। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गये नही हो।

कुँअर — मैं क्या कहूँ कि कितना मजबूर हूँ! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी — तो गोया जो कुछ है वह छोटे साहब ही है, मैं कुछ भी नही।

कुँअर — आखिर साहब से क्या कहूँ, कौन बहाना करूँ?

रामेश्वरी — कह दो कि हमारे भतीजे का मुडन है, हम एक सप्ताह तक नही चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुँअर — (हँसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या को। ऐसा हो सकता है कही। कही मुँह दिखाने लायक न रहूँगा।

सुशीला — क्यों, हो सकने को क्या हुआ? तुम उसके गुलाम तो नही हो?

कुँअर — तुम लोग बाहर तो निकलती-पैठती नही हो, तुम्हे क्या मालूम कि अँग्रेजो के विचार कैसे होते है।

रामेश्वरी — अरे भगवान! आखिर उसके कोई लडका-बाला है, या निगोड़ा नाठा है? त्योहार और ब्योहार हिन्दू-मुसलमान सबके यहाँ होते है।

कुँअर — भई हमसे कुछ करते-धरते नही बनता।

रामेश्वरी — हमने कह दिया, हम जाने नही देगे। अगर तुम चले गये तो मुझे बड़ा रज होगा। तुम्ही लोगो से तो महफ़िल की शोभा होगी और अपना कौन बैठा हुआ है।

कुँअर — अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौका नहीं है। वह दफ़्तर चले गये होगे। मेरा सब असबाब बँध चुका है। नौकरों को पेशगी रुपया दे चुका कि चलने की तैयारी करे। अब कैसे रुक सकता हूँ।

रामेश्वरी — कुछ भी हो, जाने न पाओगे।

सुशीला — दो-चार दिन बाद जाने मे ऐसी कौन-सी बडी हानि हुई जाती है? वहाँ कौन लड्डू धरे हुए है?

कुँअर साहब बडे धर्म-संकट मे पड़े, अगर नही जाते तो छोटे साहब से झूठे पडते है। वह अपने दिल में कहेगे कि अच्छे बेहूदे आदमी के साथ पाला पडा। अगर जाते है तो स्त्री से बिगाड़ होता है, साली मुँह फुलाती है। इसी चक्कर में पडे हुए बाहर आये तो मियाँ वाजिद बोले — हुजूर इस वक़्त कुछ उदास मालूम होते है।

व्यास — मुद्रा तेजहीन हो गयी है।

कुँअर — भई, कुछ न पूछो, बड़े संकट मे हूँ।

वाजिद — क्या हुआ हुजूर, कुछ फरमाइए तो?

कुँअर — यह भी एक विचित्र ही देश है।

व्यास — धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है।

लाला — क्या कहना है, ससार मे ऐसा देश दूसरा नही।

कुँअर — जी हाँ, आप जैसे गौखे और किस देश मे होगे। बुद्धि तो हम लोगो को छू भी नही गयी।

वाजिद — हुजूर, अक़्ल के पीछे तो हम लोग लट्ठ लिये फिरते है।

व्यास — धर्मावतार, कुछ कहते नही बनता। बडी हीन दशा है।

कुँअर — नैनीताल जाने को तैयार था। अब बड़ी साली कहती है कि मेरे बच्चे का मुंडन है, मै न जाने दूँगी, चले जाओगे तो मुझे रंज होगा। बतलाइए, अब क्या करूँ। ऐसी मूर्खता और कहाँ देखने में आयेगी। पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखनेवालों की शहर में कमी नही, एक मैं न हूँगा न सही, मगर उनको कौन समझावे।

व्यास — दीनबन्धु, नारि-हठ तो लोकप्रसिद्ध ही है।

कुँअर — अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जायगा।

वाजिद — बडा नाजुक मुआमला आ पडा हुजूर।

लाला — हाकिम का नाराज हो जाना बुरा है।

वाजिद — हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।

कुँअर — मैं तो बडी मुसीबत मे फँस गया।

लाला — हुजूर अब बाहर न बैठें। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेगे।

वाजिद — अजी, पसीने की जगह खून गिरा देगे। नमक खाया है कि दिल्लगी है।

कुँअर — हाँ, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिए बीमार हो गये है।

अभी यही बाते हो रही थी कि खिदमतगार ने आकर हाँफते हुए कहा — सरकार कोऊ आवा है, तौन सरकार का बलावत है।

कुँअर — कौन है पूछा नहीं ?

खिद० — कोऊ रँगरेज है सरकार, लाल-लाल मुँह है, घोड़ा पर सवार है।

कुँअर — कहीं छोटे साहब तो नही है, भई मै तो भीतर जाता हूँ। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुँअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। वाजिदअली ने खिडकी से झाँककर देखा, तो छोटे साहब खडे थे। हाथ-पाँव फूल गये। अब साहब के सामने कौन जाय ? किसी की हिम्मत नही पड़ती। एक दूसरे को ठेल रहा है।

लाला — बढ़ जाओ वाजिदअली। देखो क्या कहते है ?

वाजिद — आप ही क्यों नहीं चले जाते ?

लाला — आदमी ही तो वह भी है, कुछ खा तो न जायगा।

वाजिद — तो चले क्यों नहीं जाते !

काटन साहब दो-तीन मिनट खडे रहे। जब यहाँ से कोई न निकला तो बिगड़-कर बोले — यहाँ कौन आदमी है ? कुँअर साहब से बोलो, काटन साहब खड़ा है।

मियाँ वाजिद बौखलाये हुए आगे बढ़े और हाथ बाँधकर बोले — खुदावद, कुँअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गयी है। इस वक्त आराम में है, बाहर नही आ सकते।

काटन — ओह ! तुम यह क्या बोलता है। वह तो हमारे साथ नैनीताल जानेवाला था। उसने हमको ख़त लिखा था।

वाजिद — हाँ, हुजूर, जानेवाले तो थे, पर बीमार हो गये।

काटन — बहुत रज हुआ।

वाजिद — हुजूर इत्तफ़ाक है।

काटन — हमको बहुत अफसोस है। कुँअर साहब से जाकर बोलो, हम उनको देखना माँगता है।

वाजिद — हुजूर, बाहर नही आ सकते।

काटन — कुछ परवा नही, हम अदर जाकर देखेगा।

कुँअर साहब दरवाजे से चिमटे हुए काटन साहब की बाते सुन रहे थे। नीचे की साँस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब को घोडे से उतरकर दरवाज़े की तरफ आते देखा, तो गिरते-पडते दौड़े और सुशीला से बोले — दुष्ट मुझे देखने घर मे आ रहा है। मै चारपाई पर लेट जाता हूँ, चटपट लिहाफ निकलवाओ और मुझे ओढ़ा दो। दस पाँच शीशियाँ लाकर इस गोलमेज पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा — महरी, जरा दरवाजा खोल दो, साहब बहादुर कुँअर साहब को देखना चाहते है। सुशीला ने लिहाफ माँगा, पर गर्मी के दिन थे, जाडे के कपडे सन्दूकों में बन्द पडे थे। चटपट सन्दूक खोलकर दो-तीन मोटे-मोटे लिहाफ लाकर कुँअर साहब को ओढा दिये। फिर आलमारी से कई शीशियाँ और कई बोतल निकालकर मेज पर चुन दिये और महरी से कहा — जाकर किवाड खोल दो, मैं ऊपर चली जाती हूँ।

काटन साहब ज्यों ही कमरे मे पहुँचे, कुँअर साहब ने लिहाफ से मुँह निकाल लिया और कराहते हुए बोले — बड़ा कष्ट है हुजूर। सारा शरीर फुँका जाता है।

काटन — आप दोपहर तक तो अच्छा था, खाँ साहब हमसे कहता था कि आप तैयार हैं, कहाँ दरद है ?

कुँअर — हुजूर, पेट में बहुत दर्द है। बस यही मालूम होता है कि दम निकल जायगा।

काटन — हम जाकर सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबरायें नही, सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया तो कुँअर साहब फिर बाहर आ बैंठे। रोजा बख्शाने गये थे, नमाज गले पडी। अब यह फिक्र पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुँअर — भई, यह तो नयी बला गले पड़ी।

वाजिद — यहाँ तो हुजूर, हमारी अक्ल भी काम नही करती।

कुँअर — कोई जाकर खाँ साहब को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए। ऐसा न हो कि वह देर करे और सिविल सर्जन यहाँ सिर पर सवार हो जाय।

लाला — सिविल सर्जन की फीस भी बहुत होगी ?

कुँअर — अजी तुम्हे फीस की पड़ी है, यहाँ जान आफत में है। अगर सौ दो सौ देकर गला छूट जाय तो अपने को भाग्यवान समझूँ।

वाजिदअली ने फिटन तैयार करायी और खाँ साहब के घर पहुँचे। देखा तो वह असबाब बँधवा रहे है। उनसे सारा किस्सा बयान किया और कहा — अभी चलिए। आपको बुलाया है।

खाँ — मामला बहुत टेढा है। बडी दौड़-धूप करनी पडेगी। कसम खुदा की, तुम सबके सब गर्दन मार देने के लायक हो। जरा देर के लिए मै टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड दिया।

वाजिद — खाँ साहब हमसे तो उड़िए नही। कुँअर साहब बौखलाये हुए है। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

खाँ — चलो, शायद कोई तदबीर सूझ जाय।

दोनो आदमी सिविल सर्जन के बँगले की तरफ़ चले। वहाँ मालूम हुआ कि साहब कुँअर साहब के मकान पर गये है। फौरन फिटन घुमा दी, और कुँअर साहब की कोठी पर पहुँचे। देखा तो सर्जन साहब एनेमा लिये हुए कुँअर साहब की चारपाई के सामने बैठे हुए है।

खाँ — मैं तो हुजूर के बँगले से चला आ रहा हूँ। कुँअर साहब का क्या हाल है ?

डाक्टर — पेट मे दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायगा।

कुँअर — हुजूर, अब दर्द बिलकुल नही है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज हो जाता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है।

डाक्टर — ओ, आप डरता है। डरने का कोई बात नही है। आप एक मिनट मे अच्छा हो जायगा।

कुँअर — हुजूर मै बिलकुल अच्छा हूँ। अब कोई शिकायत नही है।

डाक्टर — डरने की कोई बात नही, यह सब आदमी यहाँ से हट जाय, हम एक मिनट मे अच्छा कर देगा।

खाँ साहब ने डाक्टर के कान मे कहा — हुजूर, अपनी रात की डबल फ़ीस और

गाड़ी का किराया लेकर चले जायँ, इन रईसो के फेर मे न पडे, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते है। एक हफ़्ते तक आकर एक बार देख लिया कीजिए।

डाक्टर साहब की समझ मे यह बात आ गयी। कल फिर आने का वादा करके चले गये। लोगो के सिर से बला टली। खॉ साहब की कारगुजारी की तारीफें होने लगी।

कुँअर — ख़ाँ साहब आप बडे वक़्त पर काम आये। जिन्दगी भर आपका एहसान मानूँगा।

खॉ — जनाब, दो सौ चटाने पडे। कहता था छोटे साहब का हुक्म है। मैं बिला पिचकारी लगाये न जाऊँगा। अग्रेजो का हाल तो आप जानते है। बात के पक्के होते है।

कुँअर — यह भी कह दिया न कि छोटे साहब को मेरी बीमारी की इत्तला कर दे और कह दे, वह सफर करने लायक नही है।

खाँ — हाँ साहब, और रुपये दिये किसलिए, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था? मगर छोटे साहब को होगी बडी तकलीफ। बेचारे ने आपके बॅगले के आसरे पर होटल का इतजाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुँअर — तो भई, मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

खॉ — यह चाल उल्टी पडी। जिस वक़्त काटन साहब यहॉ आये थे, आपको उनसे मिलना चाहिए था। साफ कह देते, आज एक सख्त जरूरत से रुकना पडा। लेकिन खैर मैं साहब के साथ रहूँगा, कोई न कोई इंतजाम हो ही जायगा।

कुँअर — क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे है। हलफ़ से कहता हूँ, मैं आपको न जाने दूँगा, यहॉ न जाने कैसी पडे, कैसी न पडे। मियाँ वाजिद देखो, आपके घर कहला दो, बाहर न जायँगे।

खॉ — आप अपने साथ मुझे भी डुबाना चाहते है। छोटे साहब आपसे नाराज़ भी हो जायँ तो क्या कर लेंगे, लेकिन मुझसे नाराज़ हो गये, तो खराब ही कर डालेंगे।

कुँअर — जब तक हम ज़िन्दा हैं भाई साहब, आपको कोई तिर्छी नजर से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुँअर साहब की हालत अच्छी नही, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ से भी उसका दिल साफ़ हो जायगा और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और भी इज्जत करने लगेगा।

खाँ — अब वह इज़्ज़त करे या न करे, जब आप इतना इसरार कर रहे है तो मैं भी इतना बे-मुरौवत नहीं हूँ कि आपको छोड़कर चला जाऊँ। यह तो हो ही

नहीं सकता। जरा देर के लिए घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा। नैनीताल चला जाऊँ तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुँअर — मजे से दो-चार दिन जल्से देखेंगे, नैनीताल में यह मजे कहाँ मिलते। व्यास जी, अब तो यों नहीं बैठा जाता। देखिए, आपके भंडार में कुछ है, दो-चार बोतलें निकालिए, कुछ रंग जमे।[१]

— माधुरी, अप्रैल १९२९

[१] रतननाथ सरशार-कृत 'सैरे कोहसार' के आधार पर।

# कवच

बहुत दिनो की बात है, मै एक बडी रियासत का एक विश्वस्त अधिकारी था। जैसी मेरी आदत है, मै रियासत की धडेबन्दियो से पृथक रहता, न इधर, न उधर, अपने काम से काम रखता। काजी की तरह शहर के अदेशे से दुबला न होता था। महल मे आये दिन नये-नये शिगूफे खिलते रहते थे, नये-नये तमाशे होते रहते थे, नये-नये षड्यन्त्रो की रचना होती रहती थी, पर मुझे किसी पक्ष से सरोकार न था। किसी की बात में दखल न देता था, न किसी की शिकायत करता, न किसी की तारीफ। शायद इसीलिए राजा साहब की मुझ पर कृपादृष्टि रहती थी। राजा साहब शीलवान, दयालु, निर्भीक, उदार और कुछ स्वेच्छाचारी थे। रेजीडेण्ट की खुशामद करना उन्हे पसन्द न था। जिन समाचारपत्रो से दूसरी रियासते भयभीत रहती थी और अपने इलाके मे उन्हें आने न देती थी, वे सब हमारी रियासत मे बेरोक-टोक आते थे। एक-दो बार रेजीडेण्ट ने इस बारे मे कुछ इशारा भी किया था, लेकिन राजा साहब ने इसकी बिलकुल परवा न की। अपने आन्तरिक शासन में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप न चाहते थे, इसीलिए रेजीडेण्ट भी उनसे मन ही मन द्वेष करता था।

लेकिन इसका यह आशय नही है कि राजा साहव प्रजावत्सल, दूरदर्शी, नीति-कुशल या मितव्ययी शासक थे। यह बात न थी। वे बडे ही विलासप्रिय, रसिक और दुर्व्यसनी थे। उनका अधिकाश समय विषय-वासना की ही भेंट होता था। रनवास में दर्जनों रानियाॅ थी, फिर भी आये दिन नयी-नयी चिड़ियाॅ आती रहती थीं। इस मद मे लेशमात्र भी किफायत या कजूसी न की जाती थी। सौन्दर्य की उपासना उनका गौण स्वभाव-सा हो गया था। इसके लिए वह दीन और ईमान तक की हत्या करने को तैयार रहते थे। वे स्वच्छन्द रहना चाहते थे, और चूॅकि सरकार उन्हे बन्धनों में डालना चाहती थी, वे उन्हें चिढाने के लिए ऐसे मामले मे असाधारण अनुराग और उत्साह दिखाते थे, जिनमें उन्हे प्रजा की सहायता और सहानुभूति का पूरा विश्वास होता था, इसीलिए प्रजा उनके दुर्गुणों को भी सद्‌गुण समझती थी, और अख़बारवाले भी सदैव उनकी निर्भीकता और प्रजा-प्रेम के राग अलापते रहते थे।

इधर कुछ दिनों से एक पजाबी औरत रनवास मे दाखिल हुई थी। उसके विषय में तरह-तरह की अफवाहे फैली हुई थी। कोई कहता था, मामूली वेश्या है, कोई ऐक्ट्रेस बतलाता था, कोई भले घर की लडकी। न वह बहुत रूपवती थी, न बहुत तरहदार, फिर भी राजा साहब उस पर दिलोजान से फिदा थे। राज-काज से उन्हे यों ही बहुत प्रेम न था, मगर अब तो वे उसी के हाथो बिक गये थे, वही उनके रोम-रोम मे व्याप्त हो गयी थी। उसके लिए एक नया राज-प्रासाद बन रहा था। नित नये-नये उपहार आते रहते थे। भवन की सजावट के लिए योरोप से नयी-नयी सामग्रियाँ मँगवायी थी। उसे गाना और नाचना सिखाने के लिए इटली, फ्रास, और जर्मनी के उस्ताद बुलाये गये थे। सारी रियासत मे उसी का डका बजता था। लोगों को आश्चर्य होता था कि इस रमणी मे ऐसा कौन-सा गुण है, जिसने राजा साहब को इतना आसक्त और आकर्षित कर रखा है।

एक दिन रात को मै भोजन करके लेटा ही था कि राजा साहब ने याद फर्माया। मन मे एक प्रकार का सशय हुआ कि इस समय खिलाफ मामूल क्यों मेरी तलबी हुई! मैं राजा साहब के अन्तरग मत्रियों मे से न था, इसलिए भय हुआ कि कही कोई विपत्ति तो नही आनेवाली है। रियासतो मे ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर होती रहती है। जिसे प्रात काल राजा साहब की बगल मे बैठे हुए देखिए, उसे सध्या समय अपनी जान लेकर रियासत के बाहर भागते हुए भी देखने मे आया है। मुझे सन्देह हुआ, किसी ने मेरी शिकायत तो नही कर दी! रियासतो मे निष्पक्ष रहना भी खतरनाक है। ऐसे आदमी का अगर कोई शत्रु नही होता तो कोई मित्र भी नही होता। मैने तुरन्त कपड़े पहने और मन मे तरह-तरह की दुष्कल्पनाएँ करता हुआ राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। लेकिन पहली ही निगाह मे मेरे सारे सशय मिट गये। राजा साहब के चेहरे पर क्रोध की जगह विषाद और नैराश्य का गहरा रग झलक रहा था। आँखो मे एक विचित्र याचना झलक रही थी। मुझे देखते ही उन्होने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, और बोले — 'क्यो जी सरदार साहब, तुमने कभी प्रेम किया है? किसी के प्रेम मे अपने आप को खो बैठे हो?'

मै समझ गया कि इस वक़्त अदब और लिहाज़ की जरूरत नही। राजा साहब किसी व्यक्तिगत विषय मे मुझसे सलाह करना चाहते है। नि सकोच होकर बोला — 'दीनबन्धु, मैं तो कभी इस जाल में नहीं फँसा।'

राजा साहब ने मेरी तरफ खासदान बढ़ाकर कहा — 'तुम बड़े भाग्यवान हो,

अच्छा हुआ कि तुम इस जाल में नहीं फँसे। यह आँखों को लुभानेवाला सुनहरा जाल है, यह मीठा किन्तु घातक विष है, यह वह मधुर संगीत है जो कानों को तो भला मालूम होता है, पर हृदय को चूर-चूर कर देता है, यह वह मायामृग है, जिसके पीछे आदमी अपने प्राण ही नही, अपनी इज्जत तक खो बैठता है।'

उन्होने गिलास में शराब उँडेली और एक चुस्की लेकर बोले — जानते हो मैने इस सरफराज के लिए कैसी-कैसी परेशानियाँ उठायी ? मै उसके भौहों के एक इशारे पर अपना यह सिर उसके पैरो पर रख सकता था, यह सारी रियासत उसके चरणों पर अर्पित कर सकता था। इन्ही हाथो से मैने उसका पलग बिछाया है, उसे हुक्का भर-भरकर पिलाया है, उसके कमरे मे झाड़ू लगायी है। वह पलंग से उतरती थी, तो मैं उसकी जूती सीधी करता था। इस खिदमतगुजारी में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता था, तुमसे बयान नही कर सकता। मै उसके सामने जाकर उसके इशारों का गुलाम हो जाता था। प्रभुता और रियासत का ग़रूर मेरे दिल से लुप्त हो जाता था। उसकी सेवा-शुश्रूषा मे मुझे तीनों लोक का राज मिल जाता था, पर इस जालिम ने हमेशा मेरी उपेक्षा की। शायद वह मुझे अपने योग्य ही नही समझती थी। मुझे यह अभिलाषा ही रह गयी कि वह एक बार अपनी उन मस्ताना रसीली आँखो से, एक बार उन ईंगुर भरे हुए होठो से मेरी तरफ़ मुस्कराती। मैने समझा था शायद वह उपासना की ही वस्तु है, शायद वह प्रकृति ही से निष्ठुर है, शायद वह प्रणय के भाव से ही वचित है, शायद उसे इन रहस्यों का ज्ञान ही नही। हाँ, मैने समझा था, शायद अभी अल्हडपन उसके प्रेमोद्गारो पर मुहर लगाये हुए है। मै इस आशा से अपने व्यथित हृदय को तसकीन देता था कि कभी तो मेरी अभिलाषाएँ पूरी होंगी, कभी तो उसकी सोयी हुई कल्पना जागेगी।

राजा साहब एकाएक चुप हो गये। फिर कदे आदम शीशे की तरफ देखकर शान्त भाव से बोले — मैं इतना कुरूप तो नही हूँ कि कोई रमणी मुझसे इतनी घृणा करे।

राजा साहब बहुत ही रूपवान आदमी थे। ऊँचा कद था, भरा हुआ बदन, सेब का-सा रग, चेहरे से तेज झलकता था।

मैने निर्भीक होकर कहा — इस विषय मे तो प्रकृति ने हुजूर के साथ बड़ी उदारता के साथ काम लिया है।

राजा साहब के चेहरे पर एक क्षीण उदास मुस्कराहट दौड़ गयी, मगर फिर वही नैराश्य छा गया। बोले — सरदार साहब, मैंने इस बाजार की खूब सैर की है।

सम्मोहन और वशीकरण के जितने लटके है, उन सबो से परिचित हूँ, मगर जिन मत्रो से मैने अब तक हमेशा विजय पायी है, वे सब इस अवसर पर निरर्थक सिद्ध हुए। अन्त को मैने यही निश्चय किया कि यह कुआँ ही अन्धा है, इसमे प्यास को शान्त करने की सामर्थ्य नही। मगर शोक, कल मुझ पर इस निष्ठुरता और उपेक्षा का रहस्य खुल गया। आह! काश, यह रहस्य कुछ दिन और मुझसे छिपा रहता, कुछ दिन और मै इसी भ्रम, इसी अज्ञान अवस्था मे पडता रहता।

राजा साहब का उदास चेहरा एकाएक कठोर हो गया, उन शीतल नेत्रो मे ज्वाला-सी चमक उठी, बोले — 'देखिए, ये वह पत्र है, जो कल गुप्त रूप से मेरे हाथ लगे है। मैं इस वक्त इस बात की जाँच-पडताल करना व्यर्थ समझता हूँ कि ये पत्र मेरे पास किसने भेजे? उसे ये कहाँ मिले? अवश्य ही ये सरफराज की अहित कामना के इरादे से भेजे गये होगे। मुझे तो केवल यह निश्चय करना है कि ये पत्र असली है या नकली, मुझे तो उनके असली होने मे अणुमात्र भी सन्देह नही है। मैने सरफराज की लिखावट देखी है, उसकी बातचीत के अन्दाज़ से अनभिज्ञ नही हूँ, उसकी ज़बान पर जो वाक्य चढे हुए है, उन्हें खूब जानता हूँ। इन पत्रो मे वही लिखावट है, बाल बराबर भी फ़र्क नही, वही अन्दाज़ है, वही शैली है, वही वाक्य है। कितनी भीषण परिस्थिति है। इधर मै तो एक मधुर मुस्कान, एक मीठी अदा के लिए तरसता हूँ, उधर प्रेमियो के नाम प्रेमपत्र लिखे जाते है, वियोग-वेदना का वर्णन किया जाता है। मैने इन पत्रो को पढा है, पत्थर-सा दिल करके पढ़ा है, खून का घूँट पी-पीकर पढ़ा है और अपनी बोटियो को नोच-नोचकर पढ़ा है। आँखों से रक्त की बूँदे निकल-निकल आयी है। यह दगा! यह त्रिया-चरित्र!! मेरे महल मे रहकर, मेरी कामनाओं को पैरों से कुचलकर, मेरी आशाओ को ठुकराकर ये क्रीड़ाएँ होती है! मेरे लिए खारे पानी की एक बूँद भी नही, दूसरे पर सुधा-जल की वर्षा हो रही है! मेरे लिए एक चुटकी भर आटा नही, दूसरे के लिए षट्रस पदार्थ परसे जा रहे है। तुम अनुमान नहीं कर सकते कि इन पत्रो को पढ़कर मेरी क्या दशा हुई।

'पहला उद्वेग जो मेरे हृदय मे उठा, वह यह था कि इसी वक्त तलवार लेकर जाऊँ और उस बेदर्द के सामने यह कटार अपनी छाती मे भोक लूँ। उसी की आँखों के सामने एड़ियाँ रगड़-रगड़कर मर जाऊँ। शायद मेरे बाद मेरे प्रेम की क़द्र करे, शायद मेरे खून के गर्म छींटे उसके वज्र-कठोर हृदय को द्रवित करते, लेकिन अन्तस्तल के न मालूम किस प्रदेश से आवाज आयी — यह सरासर नादानी

है। तुम मर जाओगे और यह छलनी तुम्हारे प्रेमोपहारो से दामन भरे, दिल मे तुम्हारी मूर्खता पर हँसती हुई, दूसरे ही दिन अपने प्रियतम के पास चली जायगी। दोनो तुम्हारी दौलत के मजे उडायेगे और तुम्हारी वचित-दलित आत्मा को तडपायेगे।

'सरदार साहब, विश्वास मानिए, यह आवाज मुझे अपने ही हृदय के किसी स्थल से सुनायी दी। मैने उसी वक्त तलवार निकालकर कमर से रख दी। आत्म-हत्या का विचार जाता रहा, और एक ही क्षण में बदले का प्रबल उद्वेग हृदय मे चमक उठा। देह का एक-एक परमाणु एक आन्तरिक ज्वाला से उत्तप्त हो उठा। एक-एक रोएँ से आग-सी निकलने लगी। इसी वक्त जाकर उसकी कपट-लीला का अन्त कर दूँ। जिन आँखो की एक निगाह के लिए अपने प्राण तक निछावर करता था, उन्हे सदैव के लिए ज्योतिहीन कर दूँ। उन विषाक्त अधरों को सदैव के लिए स्वरहीन कर दूँ। जिस हृदय मे इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता और इतना कपट भरा हुआ हो, उसे चीरकर पैरो से कुचल डालूँ। खून-सा सिर पर सवार हो गया। सरफराज की सारी महत्ता, सारा माधुर्य, सारा भाव-विलास दूषित मालूम होने लगा। उस वक्त अगर मुझे मालूम हो जाता कि सरफराज की किसी ने हत्या कर डाली है, तो शायद मै उस हत्यारे के पैरों का चुम्बन करता। अगर सुनता कि वह मरणासन्न है, तो उसके दम तोडने का तमाशा करता। खून का दृढ सकल्प करके मैने दुहरी तलवारे कमर मे लगायी और उसके शयनागार में दाखिल हुआ। जिस द्वार पर जाते ही आशा और भय का सग्राम होने लगता था, वहाँ पहुँचकर इस वक्त मुझे वह आनन्द हुआ जो शिकारी को शिकार करने मे होता है। सरदार साहब, उन भावनाओं और उद्गारो का जिक्र न करूँगा, जो उस समय मेरे हृदय को आन्दोलित करने लगे। अगर वाणी मे इतनी सामर्थ्य हो भी, तो मन को इस चर्चा से उद्विग्न नही करना चाहता। मैने दबे पाँव कमरे में कदम रखा। सरफ़राज विलासमय निद्रा मे मग्न थी। मगर उसे देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र करुणा उत्पन्न हुई। जी हाँ, वह क्रोध और उत्ताप न जाने कहाँ गायब हो गया। उसका क्या अपराध है? यह प्रश्न आकस्मिक रूप से मेरे हृदय में पैदा हुआ। उसका क्या अपराध है? अगर उसका वही अपराध है, जो इस समय मैं कर रहा हूँ, तो मुझे उससे बदला लेने का क्या अधिकार है? अगर वह अपने प्रियतम के लिए उतनी ही विकल, उतनी ही अधीर, उतनी ही आतुर है, जितना मैं हूँ, तो उसका क्या दोष है? जिस तरह मै अपने दिल से

मजबूर हूँ, क्या वह भी अपने दिल से मजबूर नही हो सकती? अगर मुझे कोई औरत बन्धन में डाल दे और बहुमूल्य रत्नो से मेरे प्रेम को विसाहना चाहे, तो क्या मै उसके प्रेम मे अनुरक्त हो जाऊँगा? शायद नही। मै मौका पाते ही भाग निकलूँगा। यह मेरा अन्याय है। अगर मुझमे वह गुण होते, जो इसके अज्ञात प्रियतम मे है, तो उसकी तबीयत क्यो मेरी ओर आकर्षित न होती? मुझमे वे बाते नही है कि मै उसका जीवन-सर्वस्व बन सकूँ। अगर मुझे कोई कडवी चीज अच्छी नही लगती, तो मै स्वभावत. हलवाई की दुकान की तरफ जाऊँगा, जो मिठाइयाँ बेचता है। सम्भव है धीरे-धीरे मेरी रुचि बदल जाय और मै कड़वी चीजे पसन्द करने लगूँ, लेकिन बलात् तलवार की नोक पर कोई कडवी चीज मेरे मुँह मे नही डाल सकता।

'इन विचारो ने मुझे पराजित कर दिया। वह सूरत, जो एक क्षण पहले मुझे काटे खाती थी, उसमे पहले से शतगुणा आकर्षण था। अब तक मैने उसको निद्रा-मग्न न देखा था। निद्रावस्था मे उसका रूप और भी निष्कलक और अनिन्द्य मालूम हुआ। जागृति मे निगाह कभी आँखो के दर्शन करती, कभी अधरो के, कभी कपोलो के। इस नीद मे उसका रूप अपनी सम्पूर्ण कलाओ से चमक रहा था। रूप-छटा का एक दीपक जल रहा था।'

राजा साहब ने फिर प्याला मुँह से लगाया, और बोले — सरदार साहब, मेरा जोश ठण्डा हो गया। जिससे प्रेम हो गया, उससे द्वेष नही हो सकता, चाहे वह हमारे साथ कितना ही अन्याय क्यो न करे। जहाँ प्रेमिका प्रेमी के हाथो कत्ल हो, वहाँ समझ लीजिए कि प्रेम न था, केवल विषय-लालसा थी। मै वहाँ से चला आया, लेकिन चित्त किसी तरह शान्त नही होता। तब से अब तक मैंने क्रोध को जीतने की भरसक कोशिश की, मगर असफल रहा। जब तक वह शैतान ज़िन्दा है, मेरे पहलू मे एक काँटा-सा खटकता रहेगा, मेरी छाती पर साँप लोटता रहेगा। वही काला नाग फन उठाये हुए उस रत्न-राशि पर बैठा हुआ है, वही मेरे और सरफ़राज के बीच में लोहे की दीवार बना हुआ है, वही इस दूध की मक्खी है। उस साँप का सिर कुचलना होगा, उस दीवार को जड से खोदकर फेंक देना होगा, उस मक्खी को निकाल देना होगा, जब तक मै अपनी आँखो से उसकी धज्जियाँ बिखरते न देखूँगा, मेरी आत्मा को सतोष न होगा। परिणाम की कोई चिन्ता नहीं, कुछ भी हो, मगर उस नर-पिशाच को जहन्नुम वासिल करके दम लूँगा।

यह कहकर राजा साहब ने मेरी ओर पूर्ण नेत्रो से देखकर कहा — बतलाइए आप मेरी क्या मदद कर सकते है?

मैने विस्मय से कहा — मै?

राजा साहब ने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा — हाँ, आप। आप जानते है, मैने इतने आदमियो को छोडकर आपको क्यों अपना विश्वासपात्र बनाया और क्यों आपसे यह भिक्षा माँगी? यहाँ ऐसे आदमियो की कमी नही है, जो मेरा इशारा पाते ही उस दुष्ट के टुकड़े उडा देगे, सरे बाजार उसके रक्त से भूमि को रँग देगे। जी हाँ, एक इशारे से उसकी हड्डियों का बुरादा बना सकता हूँ, उसके नहो मे कीलें ठुकवा सकता हूँ, मगर मैने सबको छोडकर आपको छाँटा, जानते हो क्यो? इसलिए कि मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है। वह विश्वास, जो मुझे अपने निकटतम आदमियों पर भी नही। मै जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय मे यह भेद उतना ही गुप्त रहेगा, जितना मेरे। मुझे विश्वास है कि प्रलोभन अपनी चरम शक्ति का उपयोग करके भी तुम्हें नही डिगा सकता। पाशविक अत्याचार भी तुम्हारे अधरों को नही खोल सकते। तुम बेवफाई न करोगे, दग़ा न करोगे, इस अवसर से अनुचित लाभ न उठाओगे। जानते हो, इसका पुरस्कार क्या होगा? इसके विषय मे तुम कुछ भी शका न करो। मुझमें और चाहे कितने ही दुर्गुण हो, कृतघ्नता का दोष नही है। बड़े से बड़ा पुरस्कार जो मेरे अधिकार मे है, वह तुम्हे दिया जायगा। मनसब, जागीर, धन, सम्मान — सब तुम्हारी इच्छानुसार दिये जायँगे। इसका सम्पूर्ण अधिकार तुमको दिया जायगा, कोई दखल न देगा। तुम्हारी महत्वाकाक्षा को उच्चतम शिखर तक उड़ने की आज़ादी होगी। तुम ख़ुद फ़रमान लिखोगे और मैं उस पर आँखे बन्द करके दस्तख़त करूँगा। बोलो, कब जाना चाहते हो? उसका नाम और पता इस कागज पर लिखा हुआ है, इसे अपने हृदय पर अकित कर लो, और काग़ज फाड़ डालो। तुम खुद समझ सकते हो कि मैंने कितना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर रखा है। मेरी आबरू, मेरी जान, तुम्हारी मुट्ठी मे है। मुझे विश्वास है कि तुम इस काम को सुचारु रूप से पूरा करोगे। जिन्हे अपना सहयोगी बनाओगे, वे भरोसे के आदमी होगे। तुम्हें अधिकतम बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और धैर्य से काम लेना पडेगा। एक असयत शब्द, एक क्षण का विलम्ब, ज़रा-सी लापरवाही मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए प्राणघातक होगी। दुश्मन घात में बैठा हुआ है, 'कर तो डर, न कर तो डर' का मामला है। यों ही गद्दी से उतारने के मसूबे सोचे जा रहे है, इस रहस्य के खुल जाने पर क्या दुर्गति होगी, इसका अनुमान

तुम आप कर सकते हो। मैं बर्मा में नजरबन्द कर दिया जाऊँगा, रियासत गैरों के हाथ मे चली जायगी और मेरा जीवन नष्ट हो जायगा। मै चाहता हूँ कि आज ही चले जाओ। यह इम्पीरियल बैंक का चैक बुक है। मैंने चैकों पर दस्तखत कर दिये है, जब जितने रुपयों की ज़रूरत हो, ले लेना।

मेरा दिमाग सातवे आसमान पर जा पहुँचा। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रलोभन में ईमान को बिगाड़ने की कितनी शक्ति होती है। मुझे जैसे कोई नशा हो गया। मैंने एक किताब में पढ़ा था कि अपने भाग्य-निर्माण का अवसर हर एक आदमी को मिलता है, और एक ही वार। जो इस अवसर को दोनों हाथों से पकड लेता है, वह मर्द है, जो आगा-पीछा मे पड़कर उसे छोड़ देता है, वह कायर है। एक को धन, यश, गौरव नसीब होता है और दूसरा खेद, लज्जा और दुर्दशा मे रो-रोकर ज़िन्दगी के दिन काटता है। फैसला करने के लिए केवल एक क्षण का समय मिलता है। वह समय कितना बहुमूल्य होता है। मेरे जीवन मे यह वही अवसर था। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़ने का निश्चय कर लिया। सौभाग्य अपनी सर्वोत्तम सिद्धियो का थाल लिये मेरे सामने हाजिर है, वह सारी विभूतियाँ, जिनके लिए आदमी जीता-मरता है, मेरा स्वागत करने के लिए खडी है। अगर इस समय मै उनकी उपेक्षा करूँ, तो मुझ जैसा अभागा आदमी ससार मे न होगा। माना कि बडे जोखिम का काम है, लेकिन पुरस्कार तो देखो। दरिया मे गोता लगाने ही से तो मोती मिलता है, तख्त पर बैठे हुए कायरों के लिए कौडियों और घोघो के सिवा और क्या है? माना कि बेगुनाह के खून से हाथ रँगना पडेगा। क्या मुजायका! बलिदान से ही वरदान मिलता है। ससार समर भूमि है। यहाँ लाशों का जीना बनाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना पडता है। खून के नालों मे तैरकर ही विजय-तट मिलता है। ससार का इतिहास देखो, सफल पुरुषों का चरित्र रक्त के अक्षरों मे लिखा हुआ है। वीरों ने सदैव खून के दरिया मे गोते लगाये है, खून की होलियाँ खेली है। खून का डर दुर्बलता और कमहिम्मती का चिह्न है। कर्मयोगी की दृष्टि लक्ष्य पर रहती है, मार्ग पर नही, शिखर पर रहती है, मध्यवर्ती चट्टानों पर नही। मैंने खड़े होकर अर्ज की — गुलाम इस खिदमत के लिए हाज़िर है।

राजा साहब ने सम्मान की दृष्टि से देखकर कहा — मुझे तुमसे यही आशा थी। तुम्हारा दिल कहता है कि यह काम पूरा कर आओगे?

'मुझे विश्वास है।'

'मेरा भी यही विचार था। देखो, एक-एक क्षण का समाचार भेजते रहना।

'ईश्वर ने चाहा तो हुजूर को शिकायत का कोई मौका न मिलेगा।'

'ईश्वर का नाम न लो, ईश्वर ऐसे मौके के लिए नही है। ईश्वर की मदद उस वक़्त माँगो, जब अपना दिल कमजोर हो। जिसकी बाँहो मे शक्ति, मन मे सकल्प, बुद्धि मे बल, और साहस है, वह ईश्वर का आश्रय क्यो ले? अच्छा जाओ और जल्द सुर्ख़रू होकर लौटो, आँखे तुम्हारी तरफ लगी रहेंगी।'

२

मैने आत्मा की आलोचनाओ को सिर तक न उठाने दिया। उस दुष्ट को क्या अधिकार था कि वह सरफराज से ऐसा कुत्सित सम्बन्ध रखे, जब उसे मालूम था कि राजा साहब ने उसे अपने हरम मे दाखिल कर लिया है? यह लगभग उतना ही गर्हित अपराध है, जितना किसी विवाहिता स्त्री को भगा ले जाना। सरफराज एक प्रकार से विवाहिता है, ऐसी स्त्री से पत्र-व्यवहार करना और उस पर डोरे डालना किसी दशा में भी क्षम्य नही हो सकता। ऐसे सगीन अपराध की सज़ा भी उतनी ही सगीन होनी चाहिए। अगर मेरे हृदय मे उस वक्त तक कुछ दुर्बलता, कुछ सशय, कुछ अविश्वास था, तो इस तर्क ने उसे दूर कर दिया। सत्य का विश्वास सत्-साहस का मत्र है। अब वह खून मेरी नजरो मे पापमय हत्या नही, जायज खून था और उससे मुँह मोडना लज्जाजनक कायरता।

गाडी के जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। रात भर का सफ़र था, लेकिन भोजन की ओर बिलकुल रुचि न थी। मैंने सफर की तैयारी शुरू की। बाजार से एक नकली दाढ़ी लाया, ट्रक मे दो रिवालवर रख लिये, फिर सोचने लगा, किसे अपने साथ ले चलूँ? यहाँ से किसी को ले जाना तो नीति-विरुद्ध है। फिर क्या अपने भाई साहब को तार दूँ? हाँ, यही उचित है। उन्हें लिख दूँ कि मुझसे बम्बई मे आकर मिले, लेकिन नही, भाई साहब को क्यों फँसाऊँ? कौन जाने क्या हो? बम्बई में ऐसे आदमी की क्या कमी? एक लाख रुपये का लालच दूँगा। चुटकियों में काम हो जायगा। वहाँ एक से एक शातिर पडे है, जो चाहें तो फरिश्तो का भी खून कर आयें। बस, इन महाशय को किसी हिकमत से किसी वेश्या के कमरे में बुलाया जाय और वहीं उनका काम तमाम कर दिया जाय। या समुद्र के किनारे जब वह हवा खाने निकले, तो वही मारकर लाश समुद्र मे डाल दी जाय।

अभी चूँकि देर थी, मैने सोचा, लाओ सन्ध्या कर लूँ। ज्योही सन्ध्या के कमरे मे क़दम रखा, माता जी के तिरगे चित्र पर नजर पडी। मै मूर्तिपूजक नही

हूँ, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति भी नही है, न कभी कोई व्रत रखता हूँ, लेकिन न जाने क्यों, उस चित्र को देखकर अपनी आत्मा मे एक प्रकाश का अनुभव करता हूँ। उन आँखो मे मुझे अब भी वही वात्सल्यमय ज्योति, वही दैवी आशीर्वाद मिलता है, जिसकी बाल-स्मृति अब भी मेरे हृदय को गद्गद कर देती है। वह चित्र मेरे लिए चित्र नही, बल्कि सजीव प्रतिमा है, जिसने मेरी सृष्टि की है और अब भी मुझे जीवन प्रदान कर रही है। उस चित्र को देखकर मै यकायक चौक पडा, जैसे कोई आदमी उस वक्त चोर के कधे पर हाथ रख दे जब वह सेध मार रहा हो। इस चित्र को रोज ही देखा करता था, दिन मे कई बार उस पर निगाह पड़ती थी, पर आज मेरे मन की जो दशा हुई, वह कभी न हुई थी। मालूम हुआ कि वह आँखे मुझे धिक्कार रही है। उनमे कितनी वेदना थी, कितनी लज्जा और कितना क्रोध ! मानो वह कह रही थी, मुझे तुझसे ऐसी आशा न थी। मै उस तरफ़ ताक न सका। फौरन आँखे झुका ली। उन आँखो के सामने खडे होने की हिम्मत मुझे न हुई। वह तसवीर की आँखे न थीं, सजीव, तीव्र और ज्वालामय, हृदय मे पैठनेवाली, नोकदार भाले की तरह हृदय मे चुभनेवाली आँखे थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गिर पडूँगा। मै वही फर्श पर बैठ गया। मेरा सिर आप ही आप झुक गया। बिलकुल अज्ञातरूप से मानो किसी दैवी प्रेरणा से मेरे सकल्प मे एक क्रान्ति-सी हो गयी। उस सत्य के पुतले, उस प्रकाश की प्रतिमा ने मेरी आत्मा को सजग कर दिया। मन मे क्या-क्या भाव उत्पन्न हुए, क्या-क्या विचार उठे, इसकी मुझे खबर नही। मै इतना ही जानता हूँ कि मै एक सम्मोहित दशा मे घर से निकला, मोटर तैयार करायी और दस बजे राजा साहब की सेवा मे जा पहुँचा। मेरे लिए उन्होने विशेषरूप से ताकीद कर दी थी कि जिस वक्त चाहूँ, उनसे मिल सकूँ। कोई अड़चन न पड़ी। मै जाकर नम्र भाव से बोला — हुजूर, कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।

राजा साहब अपने विचार मे इस समस्या को सुलझाकर इस वक्त इत्मीनान की साँस ले रहे थे। मुझे देखकर उन्हे किसी नयी उलझन का सन्देह हुआ। त्योरियों पर बल पड़ गये, मगर एक ही क्षण मे नीति ने विजय पायी, मुसकराकर बोले — हाँ हाँ, कहिए, कोई खास बात ?

मैने निर्भीक होकर कहा — मुझे क्षमा कीजिए, मुझसे यह काम न होगा।

राजा साहब का चेहरा पीला पड़ गया, मेरी ओर विस्मय से देखकर बोले — इसका मतलब ?

'मै यह काम न कर सकूँगा।'

'क्यो ?'

'मुझमे वह सामर्थ्य नही है।'

राजा साहब ने व्यगपूर्ण नेत्रो से देखकर कहा — शायद आत्मा जागृत हो गयी, क्यो ? वही बीमारी, जो कायरों और नामर्दो को हुआ करती है। अच्छी बात है, जाओ।

'हुजूर, आप मुझसे नाराज न हों, मै अपने मे वह. . .।'

राजा साहब ने सिंह की भाँति आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरजकर कहा — मत बको, नमक. . .

फिर कुछ नम्र होकर बोले — तुम्हारे भाग्य मे ठोकरें खाना ही लिखा है। मैने तुम्हें वह अवसर दिया था, जिसे कोई दूसरा आदमी दैवी वरदान समझता, मगर तुमने उसकी क़द्र न की। तुम्हारी तकदीर तुमसे फिरी हुई है। हमेशा गुलामी करोगे और धक्के खाओगे। तुम जैसे आदमियों के लिए गेरुए बाने है और कमण्डल तथा पहाड की एक गुफा। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर विचार करने के लिए उसी वैराग्य की जरूरत है। ससार मर्दो के लिए है।

मै पछता रहा था कि मैने पहले ही क्यों न इनकार कर दिया।

राजा साहब ने एक क्षण के बाद फिर कहा — अब भी मौका है, फिर सोचो।

मैने उसी निःशक तत्परता के साथ कहा — हुजूर, मैने खूब सोच लिया है।

राजा साहब होंठ दाँतो से काटकर बोले — बेहतर है, जाओ और आज ही रात को मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जाओ। शायद कल तुम्हे इसका अवसर न मिले। मै न मालूम क्या समझकर तुम्हारी जान बख्शिश कर रहा हूँ। न जाने कौन मेरे हृदय मे बैठा हुआ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। मैं इस वक्त अपने आप मे नही हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारी शराफत पर भरोसा है। मुझे अब भी विश्वास है कि इस मामले को तुम दीवार के सामने भी जबान पर न लाओगे।

मैं चुपके से निकल आया, और रातों-रात राज्य के बाहर पहुँच गया। मैंने उस चित्र के सिवा और कोई चीज अपने साथ न ली।

इधर सूर्य ने पूर्व की सीमा मे पदार्पण किया, उधर मै रियासत की सीमा से निकलकर अग्रेज़ी इलाके में आ पहुँचा।

— विशाल भारत, दिसबर १९२९

# दूसरी शादी

जब मै अपने चार साल के लडके रामसरूप को गौर से देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि उसमे वह भोलापन और आकर्षण नही रहा जो कि दो साल पहले था। वह मुझे अपनी सुर्ख और रजीदा आँखो से घूरता हुआ नज़र आता है। उसकी इस हालत को देखकर मेरा कलेजा काँप उठता है और मुझे वह वादा याद आ जाता है जो मैने दो साल हुए उसकी माँ के साथ, जब कि वह मृत्यु-शैया पर थी, किया था। आदमी इतना स्वार्थी और अपनी इन्द्रियो का इतना गुलाम है कि अपना फर्ज किसी-किसी वक़्त ही महसूस करता है।

उस दिन जब कि डाक्टर नाउम्मीद हो चुके थे, उसने रोते हुए मुझसे पूछा था — क्या तुम दूसरी शादी कर लोगे ? ज़रूर कर लेना। फिर चौककर कहा — मेरे राम का क्या बनेगा ? उसका खयाल रखना, अगर हो सके।

मैने कहा — हाँ-हाँ, मैं वादा करता हूँ कि मै कभी दूसरी शादी न करूँगा और रामसरूप, तुम उसकी फिक्र न करो, क्या तुम अच्छी न होगी ?

उसने मेरी तरफ हाथ फेक दिया, जैसे कहा, लो अलविदा।

दो मिनट बाद दुनिया मेरी आँखों मे अँधेरी हो गयी। रामसरूप बे माँ का हो गया। दो-तीन दिन उसको कलेजे से चिमटाये रखा।

आखिर छुट्टी पूरी होने पर उसको पिता जी के सुपुर्द करके मै फिर अपनी ड्यूटी पर चला गया।

दो-तीन महीने दिल बहुत उदास रहा। नौकरी की, क्योंकि उसके सिवाय चारा न था। दिल मे कई मसूबे बाँधता रहा। दो-तीन साल नौकरी करके रुपया लेकर दुनिया की सैर को निकल जाऊँगा, यह करूँगा, वह करूँगा, अब कही दिल नही लगता।

घर से ख़त बराबर आ रहे थे कि फ़लाँ फलाँ जगह से नाते आ रहे है, आदमी बहुत अच्छे है, लड़की अकल की तेज और खूबसूरत है, फिर ऐसी जगह नही मिलेगी। आख़िर करना है ही, कर लो। हर बात मे मेरी राय पूछी जाती थी।

लेकिन मैं बराबर इनकार किये जाता था। मैं हैरान था कि इसान किस तरह

दूसरी शादी पर आमादा हो सकता है! जब कि उसकी सुन्दर और पतिप्राणा स्त्री को, जो कि उसके लिए स्वर्ग की एक भेट थी, भगवान ने एक बार छीन लिया!

वक़्त बीतता गया। फिर यार-दोस्तो के तकाजे शुरू हो गये। कहने लगे, जाने भी दो, औरत पैर की जूती है, जब एक फट गयी, दूसरी बदल ली। स्त्री का कितना भयानक अपमान है, यह कहकर मै उनका मुँह बन्द कर दिया करता था। जब हमारी सोसायटी जिसका इतना बड़ा नाम है, हिन्दू विधवा को दुबारा शादी कर लेने की इजाजत नही देती तो मुझको शोभा नही देता कि मैं दुबारा एक कुँवारी से शादी कर लूँ। जब तक यह कलक हमारी कौम से दूर नही हो जाता, मै हर्गिज, कुँवारी तो दूर की बात है, किसी विधवा से भी ब्याह न करूँगा। खयाल आया, चलो नौकरी छोड़कर इसी बात का प्रचार करे। लेकिन मच पर अपने दिल के खयालात ज़बान पर कैसे लाऊँगा। भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने मे, चरित्र मजबूत बनाने मे, जो कहना उसे करके दिखाने मे, हममे कितनी कमी है, यह मुझे उस वक़्त मालूम हुआ जब कि छ. माह बाद मैंने एक कुँवारी लड़की से शादी कर ली।

घर के लोग खुश हो रहे थे कि चलो किसी तरह माना। उधर उस दिन मेरी बिरादरी के दो-तीन पढ़े-लिखे रिश्तेदारों ने डॉट बतायी — तुम तो कहा करते थे मैं बेवा से ही शादी करूँगा, लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया करते थे, अब वह तमाम बाते किधर गयी? तुमने तो एक उदाहरण भी न रखा जिस पर हम चल सकते।

मुझ पर जैसे घडो पानी फिर गया। आँखे खुल गयीं। जवानी के जोश में क्या कर गुज़रा। पुरानी भावनाएँ फिर उभर आयीं और आज भी मैं उन्ही विचारों में डूबा हुआ हूँ।

सोचा था — नौकर लड़के को नही सम्हाल सकता, औरतें ही इस काम के लिए ठीक हैं। ब्याह कर लेने पर, जब औरत घर मे आयेगी तो रामसरूप को अपने पास बाहर रख सकूँगा और उसका खास खयाल रखूँगा लेकिन वह सब कुछ ग़लत अक्षर की तरह मिट गय।। रामसरूप को आज फिर वापस गाँव पिता जी के पास भेजने पर मजबूर हूँ। क्यों, यह किसी से छिपा नही। औरत का अपने सौतेले बेटे से प्यार करना एक असम्भव बात है। ब्याह के मौके पर सुना था लडकी बड़ी नेक है, स्वजनों का खास ख़याल रखेगी और उसे अपने बेटे की तरह समझेगी

लेकिन सब झूठ। औरत चाहे कितनी नेकदिल हो वह कभी अपने सौतेले बच्चे से प्यार नही कर सकती।

और यह हार्दिक दुख वह वादा तोड़ने की सजा है जो कि मैने एक नेक बीवी से उसके आखिरी वक़्त मे किया था।

—चन्दन, सितम्बर १९३१

# सौत

जब रजिया के दो-तीन बच्चे होकर मर गये और उम्र ढल चली, तो रामू का प्रेम उससे कुछ कम होने लगा और दूसरे ब्याह की धुन सवार हुई। आये दिन रजिया से झकझक होने लगी। रामू एक-न-एक बहाना खोजकर रजिया पर बिगडता और उसे मारता। और अन्त को वह नयी स्त्री ले ही आया। इसका नाम था दासी। चम्पई रग था, बड़ी-बड़ी आँखे, जवानी की उम्र। पीली, कृशागी रजिया भला इस नवयौवना के सामने क्या जँचती! फिर भी वह जाते हुए स्वामित्व को, जितने दिन हो सके, अपने अधिकार मे रखना चाहती थी। गिरते हुए छप्पर को थूनियो से सम्हालने की चेष्टा कर रही थी। इस घर को उसने मर-मरकर बनाया है। उसे सहज ही मे नही छोड सकती। वह इतनी बेसमझ नही है कि घर छोडकर चली जाय और दासी राज करे।

२

एक दिन रजिया ने रामू से कहा — मेरे पास साडी नही है, जाकर ला दो।

रामू उसके एक दिन पहले दासी के लिए अच्छी-सी चुँदरी लाया था। रजिया की माँग सुनकर बोला — मेरे पास अभी रुपया नहीं है।

रजिया को साडी की उतनी चाह न थी, जितनी रामू और दसिया के आनन्द में विघ्न डालने की। बोली — रुपये नही थे, तो कल अपनी चहेती के लिए चुँदरी क्यो लाये? चुँदरी के बदले उसी दाम में दो साड़ियाँ लाते, तो एक मेरे काम न आ जाती?

रामू ने स्वेच्छा भाव से कहा — मेरी इच्छा, जो चाहूँगा, करूँगा, तू बोलने वाली कौन है? अभी उसके खाने-खेलने के दिन हैं। तू चाहती है, उसे अभी से नोन-तेल की चिन्ता मे डाल दूँ। यह मुझसे न होगा। तुझे ओढने-पहनने की साध है तो काम कर, भगवान ने क्या हाथ-पैर नहीं दिये। पहले तो घडी रात उठकर काम-धधे में लग जाती थी। अब उसकी डाह में पहर दिन तक पडी रहती है। तो रुपये क्या आकाश से गिरेगे? मै तेरे लिए अपनी जान थोडे ही दे दूँगा!

रजिया ने कहा — तो क्या मै उसकी लौडी हूँ कि वह रानी की तरह पड़ी

रहे और मै घर का सारा काम करती रहूँ। इतने दिनो छाती फाडकर काम किया, उसका यह फल मिला, तो अब मेरी बला काम करने जाती है।

'मैं जैसे रखूँगा, वैसे ही तुझे रहना पडेगा।'

'मेरी इच्छा होगी रहूँगी, नही अलग हो जाऊँगी।'

'जो तेरी इच्छा हो, कर, मेरा गला छोड।'

'अच्छी बात है। आज से तेरा गला छोडती हूँ। समझ लूँगी, विधवा हो गयी।'

३

रामू दिल मे इतना तो समझता था कि यह गृहस्थी रजिया की जोडी हुई है, चाहे उसके रूप मे उसके लोचन-विलास के लिए आकर्षण न हो। सम्भव था, कुछ देर के बाद वह जाकर रजिया को मना लेता, पर दासी भी कूटनीति मे कुशल थी। उसने गर्म लोहे पर चोटे जमाना शुरू की। बोली — आज देवी जी किस बात पर बिगड़ रही थी?

रामू ने उदास मन से कहा — तेरी चुँदरी के पीछे रजिया महाभारत मचाये हुए है। अब कहती है, अलग रहूँगी। मैने कह दिया, तेरी जो इच्छा हो कर।

दसिया ने आँखे मटकाकर कहा — यह सब नखरे है कि आकर हाथ-पाँव जोडे, मनावन करे, और कुछ नही। तुम चुपचाप बैठे रहो। दो चार दिन मे आप ही गरमी उतर जायगी। तुम कुछ बोलना नही, नही उनका मिजाज और आसमान पर चढ़ जायगा।

रामू ने गम्भीर भाव से कहा — दासी, तुम जानती नही हो, वह कितनी घमडिन है। वह मुँह से जो बात कहती है, उसे करके छोडती है।

रजिया को भी रामू से ऐसी कृतघ्नता की आशा न थी। वह अब पहले की-सी सुन्दरी नही, इसलिए रामू को अब उससे प्रेम नही है! पुरुष-चरित्र मे यह कोई असाधारण बात न थी, लेकिन रामू उससे अलग रहेगा, इसका उसे विश्वास न आता था। यह घर उसी ने पैसा-पैसा जोडकर बनवाया। गृहस्थी भी उसी की जोडी हुई है। अनाज का लेन-देन उसी ने शुरू किया। इस घर मे आकर उसने कौन-कौन से कष्ट नही झेले, इसीलिए तो कि पौरुख थक जाने पर एक टुकडा चैन से खायगी और पड़ी रहेगी, और आज वह इतनी निर्दयता से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेक दी गयी! रामू ने इतना भी नही कहा — तू अलग नहीं रहने पायेगी। मै या खुद मर जाऊँगा या तुझे मार डालूँगा, पर तुझे अलग न होने दूँगा। तुझसे मेरा ब्याह हुआ है। हँसी-ठट्ठा नही है। तो जब रामू को उसकी परवाह

नही है, तो वह रामू की क्यों परवाह करे? क्या सभी स्त्रियों के पुरुष बैठे होते हैं? सभी के माँ-बाप, बेटे-पोते होते है? आज उसके लडके जीते होते, तो मजाल थी कि यह नयी स्त्री लाते, और मेरी यह दुर्गति करते? इस निर्दयी को मेरे ऊपर इतनी भी दया नही आयी!

नारी-हृदय की सारी परवशता इस अत्याचार से विद्रोह करने लगी। वही आग जो मोटी लकड़ी को स्पर्श भी नही कर सकती, फूस को जलाकर भस्म कर देती है।

४

दूसरे दिन रजिया एक दूसरे गाँव मे चली गयी। उसने अपने साथ कुछ न लिया। जो साड़ी उसकी देह पर थी, वही उसकी सारी सम्पत्ति थी। विधाता ने उसके बालकों को पहले ही छीन लिया था! आज घर भी छीन लिया!

रामू उस समय दासी के साथ बैठा हुआ आमोद-विनोद कर रहा था। रजिया को जाते देखकर शायद वह समझ न सका कि वह चली जा रही है। रजिया ने यही समझा। इस तरह चोरो की भाँति वह जाना भी न चाहती थी। वह दासी को, उसके पति को और सारे गॉव को दिखा देना चाहती थी कि वह इस घर से धेले की भी चीज नही ले जा रही है। गॉववालों की दृष्टि मे रामू का अपमान करना ही उसका लक्ष्य था। उसके चुपचाप चले जाने से तो कुछ भी न होगा। रामू उलटा सबसे कहेगा, रजिया घर की सारी सम्पदा उठा ले गयी।

उसने रामू को पुकारकर कहा — सम्हालो अपना घर। मै जाती हूँ। तुम्हारे घर की कोई भी चीज अपने साथ नही ले जाती।

रामू एक क्षण के लिए कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया। क्या कहे, उसकी समझ मे न आया। उसे आशा न थी कि वह यों जायगी। उसने सोचा था, जब-वह घर ढोकर ले जाने लगेगी, तब वह गॉववालो को दिखाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करेगा। अब क्या करे।

दसिया बोली — जाकर गाँव में ढिंढोरा पीट आओ। यहाँ किसी का डर नहीं है। तुम अपने घर से ले ही क्या आयी थीं, जो कुछ लेकर जाओगी।

रजिया ने उसके मुँह न लगकर रामू ही से कहा — सुनते हो, अपनी चहेती की बातें। फिर भी मुँह नही खुलता। मै तो जाती हूँ, लेकिन दस्सो रानी, तुम

भी बहुत दिन राज न करोगी। ईश्वर के दरबार में अन्याय नही फलता। वह बड़े-बडे घमडियों का घमंड चूर कर देते है।

दसिया ठट्ठा मारकर हँसी, पर रामू ने सिर झुका लिया। रजिया चली गयी।

५

रजिया जिस नये गाँव में आयी थी, वह रामू के गाँव से मिला ही हुआ था, अतएव यहाँ के लोग उससे परिचित है। वह कैसी कुशल गृहिणी है, कैसी मेहनती, कैसी बात की सच्ची, यह यहाँ किसी से छिपा न था। रजिया को मजूरी मिलने में कोई बाधा न हुई। जो एक लेकर दो का काम करे, उसे काम की क्या कमी ?

तीन साल तक रजिया ने कैसे काटे, कैसे एक नयी गृहस्थी बनायी, कैसे खेती शुरू की, इसका बयान करने बैठें, तो पोथी हो जाय। सचय के जितने मन्त्र हैं, जितने साधन है, वे रजिया को खूब मालूम थे। फिर अब उसे लाग हो गयी थी और लाग में आदमी की शक्ति का वारापार नहीं रहता। गाँववाले उसका परिश्रम देखकर दाँतों उँगली दबाते थे। वह रामू को दिखा देना चाहती है — मैं तुझसे अलग होकर भी आराम से रह सकती हूँ। वह अब पराधीन नारी नही है। अपनी कमाई खाती है।

रजिया के पास बैलो की एक अच्छी जोडी है। रजिया उन्हे केवल खली-भूसी देकर नहीं रह जाती, रोज़ दो-दो रोटियाँ भी खिलाती है। फिर उन्हे घटों सहलाती है। कभी-कभी उनके कंधों पर सिर रखकर रोती है, और कहती है, अब बेटे हो तो, पति हो तो तुम्ही हो। मेरी लाज अब तुम्हारे ही हाथ है। दोनों बैल शायद रजिया की भाषा और भाव समझते है। वे मनुष्य नही, बैल है। दोनों सिर नीचा करके रजिया का हाथ चाटकर उसे आश्वासन देते है। वे उसे देखते ही कितने प्रेम से उसकी ओर ताकने लगते है, कितने हर्ष से कधा झुलाकर उस पर जुवा रखवाते है और कैसा जी तोड़ काम करते है, यह वे ही लोग समझ सकते है, जिन्होंने बैलों की सेवा की है और उनके हृदय को अपनाया है।

रजिया इस गॉव की चौधराइन है। उसकी बुद्धि जो पहिले नित्य आधार खोजती रहती थी और स्वच्छन्द रूप से अपना विकास न कर सकती थी, अब छाया से निकलकर प्रौढ़ और उन्नत हो गयी है।

एक दिन रजिया घर लौटी, तो एक आदमी ने कहा — तुमने नही सुना, चौधराइन, रामू तो बहुत बीमार है। सुना दस लघन हो गये है।

रजिया ने उदासीनता से कहा — जूडी है क्या ?

'जूडी नही, कोई दूसरा रोग है। बाहर खाट पर पडा था। मैने पूछा, कैसा जी है रामू ? तो रोने लगा। बुरा हाल है। घर में एक पैसा भी नही कि दवा-दारू करे। दसिया के एक लडका हुआ है। वह तो पहले भी काम-धन्धा न करती थी और अब तो लडकोरी है, कैसे काम करने जाय। सारी मार रामू के सिर जाती है। फिर गहने चाहिए, कपडे चाहिए, नयी दुलहिन यों कैसे रहे।'

रजिया ने घर मे जाते हुए कहा — जो जैसा करेगा, आप भोगेगा।

लेकिन अन्दर उसका जी न लगा। वह एक क्षण मे फिर बाहर आयी। शायद उस आदमी से कुछ पूछना चाहती थी और इस अन्दाज से पूछना चाहती थी, मानो उसे कुछ परवाह नही है।

पर वह आदमी चला गया था। रजिया ने पूरब-पच्छिम जा-जाकर देखा। वह कही न मिला। तब रजिया द्वार के चौखट पर बैठ गयी। उसे वे शब्द याद आये, जो उसने तीन साल पहले रामू के घर से चलते समय कहे थे। उस वक़्त जलन में उसने वह शाप दिया था। अब वह जलन न थी। समय ने उसे बहुत कुछ शान्त कर दिया था। रामू और दासी की हीनावस्था अब ईर्ष्या के योग्य नही, दया के योग्य थी।

उसने सोचा, रामू को दस लघन हो गये है, तो अवश्य ही उसकी दशा अच्छी न होगी। कुछ ऐसा मोटा-ताज़ा तो पहले भी न था, दस लघन ने तो बिलकुल ही घुला डाला होगा। फिर इधर खेती-बारी में भी टोटा ही रहा। खाने-पीने को भी ठीक-ठीक न मिला होगा ......

पडोस की एक स्त्री ने आग लेने के बहाने आकर पूछा — सुना, रामू बहुत बीमार है। जो जैसा करेगा, वैसा पायेगा। तुम्हे इतनी बेदर्दी से निकाला कि कोई अपने बैरी को भी न निकालेगा।

रजिया ने टोका — नही दीदी, ऐसी बात न थी। वे तो बेचारे कुछ बोले ही नही। मै चली तो सिर झुका लिया। दसिया के कहने में आकर वह चाहे जो कुछ कर बैठे हो, यो मुझे कभी कुछ नहीं कहा। किसी की बुराई क्यो करूँ। फिर कौन मर्द ऐसा है जो औरतों के बस नही हो जाता। दसिया के कारण उनकी यह दसा हुई है।

पडोसिन ने आग न माँगी, मुँह फेरकर चली गयी।

रजिया ने कलसा और रस्सी उठायी और कुएँ पर पानी खीचने गयी। बैलो को सानी-पानी देने की बेला आ गयी थी, पर उसकी आँखे उस रास्ते की ओर लगी हुई थी, जो मलसी (रामू का गाँव) को जाता था। कोई उसे बुलाने अवश्य आ रहा होगा। नही, बिना बुलाये वह कैसे जा सकती है। लोग कहेगे, आखिर दौडी आयी न!

मगर रामू तो अचेत पडा होगा। दस लघन थोडे नही होते। उसकी देह मे था ही क्या। फिर उसे कौन बुलायेगा? दसिया को क्या गरज पडी है। कोई दूसरा घर कर लेगी। जवान है। सौ गाहक निकल आवेगे। अच्छा वह आ तो रहा है कोई। हाँ, आ रहा है। कुछ घबराया-सा जान पडता है। कौन आदमी है, इसे तो कभी मलसी मे नही देखा, मगर उस वक्त से मलसी कभी गयी भी तो नही। दो-चार नये आदमी आकर बसे ही होगे।

बटोही चुपचाप कुएँ के पास से निकला। रजिया ने कलसा जगत पर रख दिया और उसके पास जाकर बोली — रामू महतो ने भेजा है तुम्हे? अच्छा तो चलो घर, मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। नही, अभी मुझे कुछ देर है, बैलो को सानी-पानी देना है, दिया-बत्ती करनी है। तुम्हे रुपये दे दूँ, जाकर दसिया को दे देना। कह देना, कोई काम हो तो बुला भेजे।

बटोही रामू को क्या जाने। किसी दूसरे गाँव का रहनेवाला था। पहले तो चकराया, फिर समझ गया। चुपके से रजिया के साथ चला गया और रुपये लेकर लम्बा हुआ। चलते-चलते रजिया ने पूछा — अब क्या हाल है उनका?

बटोही ने अटकल से कहा — अब तो कुछ सम्हल रहे है।

'दसिया बहुत रो-धो तो नही रही है?'

'रोती तो नही थी।'

'वह क्यों रोयेगी। मालूम होगा पीछे।'

बटोही चला गया, तो रजिया ने बैलो का सानी-पानी किया, पर मन रामू ही की ओर लगा हुआ था। स्नेह-स्मृतियाँ छोटी-छोटी तारिकाओ की भाँति मन में उदित होती जाती थी। एक बार जब वह बीमार पड़ी थी, वह बात याद आयी। दस साल हो गये। वह कैसे रात-दिन उसके सिरहाने बैठा रहता था। खाना-पीना तक भूल गया था। उसके मन मे आया क्यो न चलकर देख ही आवे। कोई क्या कहेगा? किसका मुँह है, जो कुछ कहे। चोरी करने नही जा रही हूँ। उस

आदमी के पास जा रही हूँ, जिसके साथ पन्द्रह-बीस साल रही हूँ। दसिया नाक सिकोड़ेगी। सिकोडे। मुझे उससे क्या मतलब।

रजिया ने किवाड बंद किये, घर मजूर को सहेजा, और रामू को देखने चली, काँपती, झिझकती, क्षमा का दान लिये हुए।

६

रामू को थोड़े ही दिनों मे मालूम हो गया कि उसके घर की आत्मा निकल गयी है, और वह चाहे कितना जोर करे, कितना ही सिर खपाये, उसमें स्फूर्ति नही आती। दासी सुन्दरी थी, शौकीन थी और फूहड थी। जब पहला नशा उतरा, तो ठाँय ठाँय शुरू हुई। खेती की उपज कम होने लगी, और जो होती भी थी, वह ऊटपटाँग खर्च होती थी। ऋण लेना पडता था। इसी चिन्ता और शोक में उसका स्वास्थ्य बिगडने लगा। शुरू में कुछ परवाह न की। परवाह करके ही क्या करता। पर मे पैसे न थे। अताइयों की चिकित्सा ने बीमारी की जड और मजबूत कर दी और आज दस-बारह दिन से उसका दाना-पानी छूट गया था। मौत के इंतजार मे खाट पर पडा कराह रहा था। और अब वह दशा हो गयी थी जब हम भविष्य से निश्चिन्त होकर अतीत में विश्राम करते है, जैसे कोई गाड़ी आगे का रास्ता बन्द पाकर पीछे लौटे। रजिया को याद करके वह बार-बार रोता और दासी को कोसता — तेरे ही कारण मैंने उसे घर से निकाला। वह क्या गयी, लक्ष्मी चली गयी। मैं जानता हूँ, अब भी बुलाऊँ तो दौडी आयेगी, लेकिन बुलाऊँ किस मुँह से! एक बार वह आ जाती और उससे अपने अपराध क्षमा करा लेता, फिर मै खुशी से मरता। और लालसा नही है।

सहसा रजिया ने आकर उसके माथे पर हाथ रखते हुए पूछा — कैसा जी है तुम्हारा? मुझे तो आज हाल मिला।

रामू ने सजल नेत्रों से उसे देखा, पर कुछ कह न सका। दोनों हाथ जोडकर उसे प्रणाम किया, पर हाथ जुडे ही रह गये, और आँख उलट गयी।

७

लाश घर में पड़ी थी। रजिया रोती थी, दसिया चिन्तित थी। घर में रुपये का नाम नही। लकड़ी तो चाहिए ही, उठानेवाले भी जलपान करेंगे ही, कफ़न के बग़ैर लाश उठेगी कैसे। दस से कम का खर्च न था। यहाँ घर में दस पैसे

भी नही। डर रही थी कि आज गहनों पर आफ़त आयी। ऐसे कीमती भारी गहने ही कौन थे। किसान की बिसात ही क्या, दो-तीन नग बेचने से दस मिल जायँगे। मगर और हो ही क्या सकता है। उसने चौधरी के लड़के को बुलाकर कहा— देवर जी, यह बेड़ा कैसे पार लगे ! गाँव मे कोई धेले का भी विश्वास करनेवाला नही। मेरे गहने है। चौधरी से कहो, इन्हे गिरों रखकर आज का काम चलाये, फिर भगवान मालिक है।

'रजिया से क्यों नही माँग लेती ?'

सहसा रजिया आँखे पोंछती हुई आ निकली। कान मे भनक पडी। पूछा— क्या है जोखू, क्या सलाह कर रहे हो ? अब मिट्टी उठाओगे कि सलाह की बेला है ?

'हाँ उसी का सराजाम कर रहा हूँ।'

'रुपये-पैसे तो यहाँ होगे नही। बीमारी में खरच हो गये होगे। इस बेचारी को तो उन्होने बीच मँझधार मे लाकर छोड दिया। तुम लपककर उस घर चले जाओ भैया ! कौन दूर है, कुजी लेते जाओ। मजूर से कहना, भडार से पचास रुपया निकाल दे। कहना, ऊपर की पटरी पर रखे है।

वह तो कुंजी लेकर उधर गया, इधर दसिया राजो के पैर पकडकर रोने लगी। बहनापे के ये शब्द उसके हृदय में बैठ गये। उसने देखा, रजिया मे कितनी दया, कितनी क्षमा है।

रजिया ने उसे छाती से लगाकर कहा— क्यों रोती है बहन ? वह चला गया। मै तो हूँ। किसी बात की चिन्ता न कर। इसी घर मे हम और तुम दोनों उसके नाम पर बैठेंगी। मै वहाँ भी देखूँगी यहाँ भी देखूँगी। धाप भर की बात ही क्या ? कोई तुमसे गहने-पाते माँगे तो मत देना।

दसिया का जी होता था सिर पटककर मर जाय। इसे उसने कितना जलाया, कितना रुलाया और घर से निकालकर छोड़ा।

रजिया ने पूछा— जिस-जिस के रुपये हों, सुरत करके मुझे बता देना। मैं झगड़ा नही रखना चाहती। बच्चा दुबला क्यों हो रहा है ?

दसिया बोली— मेरे दूध होता ही नहीं। गाय जो तुम छोड गयी थी, वह मर गयी। दूध नही पाता।

'राम राम ! बेचारा मुरझा गया। मैं कल ही गाय लाऊँगी। सभी गृहस्थी उठा लाऊँगी। वहाँ क्या रक्खा है।'

लाश धूम से उठी। रजिया उसके साथ गयी। दाहकर्म किया। भोज हुआ। कोई दो सौ रुपये खर्च हो गये। किसी से माँगने न पडे।

दसिया के जौहर भी इस त्याग की आँच मे निकल आये। विलासिनी सेवा की मूर्ति बन गयी।

८

आज रामू को मरे सात साल हुए है। रजिया घर सम्हाले हुए है। दसिया को वह सौत नही, बेटी समझती है। पहले उसे पहनाकर तब आप पहनती है। उसे खिलाकर आप खाती है। जोखू पढने जाता है। उसकी सगाई की बातचीत पक्की हो गयी है। इस जाति मे बचपन मे ही ब्याह हो जाता है। दसिया ने कहा — बहन, गहने बनवाकर क्या करोगी। मेरे गहने तो धरे ही है।

रजिया ने कहा — नही री, उसके लिए नये गहने बनवाऊँगी। अभी तो मेरा हाथ चलता है। जब थक जाऊँ, तो जो चाहे करना। तेरे अभी पहनने-ओढने के दिन हैं, तू अपने गहने रहने दे।

नाइन ठकुरसोहाती करके बोली — आज जोखू के बाप होते, तो कुछ और ही बात होती।

रजिया ने कहा — वे नही है, तो मै तो हूँ। वे जितना करते, मै उसका दूना करूँगी। जब मैं मर जाऊँ, तब कहना जोखू का बाप नही है!

ब्याह के दिन दसिया को रोते देखकर रजिया ने कहा — बहू, तुम क्यो रोती हो? अभी तो मै जीती हूँ। घर तुम्हारा है। जैसे चाहो रहो। मुझे एक रोटी दे दो, बस। और मुझे क्या करना है। मेरा आदमी मर गया। तुम्हारा तो अभी जीता है।

दसिया ने उसकी गोद में सिर रख दिया और खूब रोई — जीजी, तुम मेरी माता हो। तुम न होती, तो मै किसके द्वार पर खड़ी होती। घर मे तो चूहे लोटते थे। उनके राज मे मुझे दुख ही दुख उठाने पडे। सोहाग का सुख तो मुझे तुम्हारे राज मे मिला। मै दुख से नही रोती, रोती हूँ भगवान की दया पर कि कहाँ मै और कहाँ यह खुसियाली!

रजिया मुस्कराकर रो दी।

— विशाल भारत, दिसबर १९३१

## देवी

बूढो में जो एक तरह की बच्चो की-सी बेशर्मी आ जाती है वह इस वक्त भी तुलिया मे न आयी थी, यद्यपि उसके सिर के बाल चाँदी हो गये थे और गाल लटक-कर दाढो के नीचे आ गये थे। वह खुद तो निश्चित रूप से अपनी उम्र न बता सकती थी, लेकिन लोगों का अनुमान था कि वह सौ की सीमा को पार कर चुकी है। और अभी तक वह चलती तो अचल से सिर ढॉककर, आँखे नीची किये हुए, मानो नवेली बहू है। थी तो चमारिन, पर क्या मजाल कि किसी के घर का पकवान देखकर उसका जी ललचाय। गॉव में ऊँची जातो के बहुत से घर थे। तुलिया का सभी जगह आना-जाना था। सारा गॉव उसकी इज्जत करता था और गृहिणियाँ तो उसे श्रद्धा की आँखो से देखती थीं। उसे आग्रह के साथ अपने घर बुलाती, उसके सिर मे तेल डालती, माँग मे सेंदुर भरती, कोई अच्छी चीज पकायी होती, जैसे हलवा या खीर या पकौड़ियाँ, तो उसे खिलाना चाहती, लेकिन बुढ़िया को जीभ से सम्मान कही प्यारा था। कभी न खाती। उसके आगे-पीछे कोई न था। उसके टोले के लोग कुछ तो गॉव छोड़कर भाग गये थे, कुछ प्लेग और मलेरिया की भेट हो गये थे और अब थोड़े से खँडहर मानो उनकी याद मे नगे सिर, खड़े छाती-सी पीट रहे थे। केवल तुलिया की मँडैया ही जिन्दा बच रही थी, और यद्यपि तुलिया जीवन-यात्रा की उस सीमा के निकट पहुँच चुकी थी, जहाँ आदमी धर्म और समाज के सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है और अब श्रेष्ठ प्राणियो को भी उससे उसकी जात के कारण कोई भेद न था, सभी उसे अपने घर में आश्रय देने को तैयार थे, पर मान-प्रिय बुढ़िया क्यो किसी का एहसान ले, क्यों अपने मालिक की इज्जत में बट्टा लगाये, जिसकी उसने सौ बरस पहले केवल एक बार सूरत देखी थी। हाँ, केवल एक बार!

तुलिया की जब सगाई हुई तो वह केवल पाँच साल की थी और उसका पति अठारह साल का बलिष्ठ युवक था। विवाह करके वह पूरब कमाने चला गया। सोचा, अभी इस लड़की के जवान होने मे दस-बारह साल की देर है। इतने दिनों मे क्यों न कुछ धन कमा लूँ और फिर निश्चिन्त होकर खेती-बारी करूँ। लेकिन

तुलिया जवान भी हुई, बूढ़ी भी हो गयी, वह लौटकर घर न आया। पचास साल तक उसके ख़त हर तीसरे महीने आते रहे। खत के साथ जवाब के लिए एक पता लिखा हुआ लिफाफा भी होता था और तीस रुपये का मनीआर्डर। ख़त मे वह बराबर अपनी विवशता, पराधीनता और दुर्भाग्य का रोना रोता था—क्या करूँ तूला, मन मे तो बडी अभिलाषा है कि अपनी मँडैया को आबाद कर देता और तुम्हारे साथ सुख से रहता, पर सब कुछ नसीब के हाथ है, अपना कोई बस नही। जब भगवान लावेगे तब आऊँगा। तुम धीरज रखना। मेरे जीते जी तुम्हे कोई कष्ट न होगा। तुम्हारी बाँह पकडी है तो मरते दम तक निबाह करूँगा। जब आँखे बन्द हो जायेगी तब क्या होगा, कौन जाने? प्राय: सभी पत्रों में थोडे से फेर-फार के साथ यही शब्द और यही भाव होते थे। हाँ, जवानी के पत्रो में विरह की जो ज्वाला होती थी, उसकी जगह अब निराशा की राख ही रह गयी थी। लेकिन तुलिया के लिए सभी पत्र एक-से प्यारे थे, मानो उसके हृदय के अग हो। उसने एक ख़त भी कभी न फाड़ा था—ऐसे शगुन के पत्र कही फाड़े जाते है—उनका एक छोटा-सा पोथा जमा हो गया था। उनके काग़ज़ का रग उड़ गया था, स्याही भी उड गयी थी, लेकिन तुलिया के लिए वे अभी उतने ही सजीव, उतने ही सतृष्ण, उतने ही व्याकुल थे। सब के सब उसकी पेटारी मे, लाल डोरे से बँधे हुए, उसके दीर्घ जीवन के सचित सोहाग की भाँति, रखे हुए थे। इन पत्रो को पाकर तुलिया गद्‌गद हो जाती। उसके पाँव जमीन पर न पड़ते, उन्हें बार-बार पढ़वाती और बार-बार रोती। उस दिन वह अवश्य केशों मे तेल डालती, सिन्दूर से माँग भरवाती, रगीन साडी पहनती, अपनी पुरखिनों के चरन छूती और आशीर्वाद लेती। उसका सोहाग जाग उठता था। गाँव की बिरहिनियों के लिए पत्र पत्र नही, जो पढकर फेंक दिया जाता है, अपने प्यारे परदेसी के प्राण है, देह से मूल्यवान। उनमे देह की कठोरता नही, कलुषता नही, आत्मा की आकुलता और अनुराग है। तुलिया पति के पत्रों ही को शायद पति समझती थी। पति का कोई दूसरा रूप उसने कहाँ देखा था?

रमणियाँ हँसी से पूछती—क्यों बुआ, तुम्हे फूफा की कुछ याद आती है—तुमने उनको देखा तो होगा? और तुलिया के झुर्रियों से भरे हुए मुखमण्डल पर यौवन चमक उठता, आँखों में लाली आ जाती। पुलककर कहती—याद क्यो नही आती बेटा, उनकी सूरत तो आज भी मेरी आँखों के सामने है। बड़ी-बड़ी आँखें, लाल-लाल ऊँचा माथा, चौड़ी छाती, गठी हुई देह, ऐसा तो अब यहाँ कोई

पट्ठा ही नही है। मोतियो के से दाँत थे बेटा। लाल-लाल कुरता पहने हुए थे। जब ब्याह हो गया तो मैने उनसे कहा, मेरे लिए बहुत से गहने बनवाओगे न, नही मै तुम्हारे घर नही रहूँगी। लड़कपन था बेटा, सरम-लिहाज कुछ थोडा ही था। मेरी बात सुनकर वह बड़े जोर से ठट्ठा मारकर हँसे और मुझे अपने कधे पर बैठा-कर बोले — मै तुझे गहनो से लाद दूँगा, तुलिया कितने गहने पहनेगी। मै परदेस कमाने जाता हूँ, वहाँ से रुपये भेजूँगा, तू बहुत से गहने बनवाना। जब वहाँ से आऊँगा तो अपने साथ भी सन्दूक भर गहने लाऊँगा। मेरा डोला हुआ था बेटा, माँ-बाप की ऐसी हैसियत कहाँ थी कि उन्हे बारात के साथ अपने घर बुलाते। उन्ही के घर मेरी उनसे सगाई हुई और एक ही दिन मे मुझे वह कुछ ऐसे भाये कि जब वह चलने लगे तो मै उनके गले लिपटकर रोती थी और कहती थी कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो, मै तुम्हारा खाना पकाऊँगी, तुम्हारी खाट बिछाऊँगी, तुम्हारी धोती छाँटूँगी। वहाँ उन्ही के उमर के दो-तीन लडके और बैठे हुए थे। उन्ही के सामने वह मुस्कराकर मेरे कान मे बोले — और मेरे साथ सोयेगी नही ? बस, मै उनका गला छोड़कर अलग खडी हो गयी और उनके ऊपर एक ककड़ फेककर बोली — मुझे गाली दोगे तो कहे देती हूँ, हाँ !

और यह जीवन-कथा नित्य के सुमिरन और जाप से जीवन-मन्त्र बन गयी थी। उस समय कोई उसका चेहरा देखता ! खिला पड़ता था। घूँघट निकालकर, भाव बताकर, मुँह फेरकर हँसती हुई, मानो उसके जीवन मे दुख जैसी कोई चीज है ही नही। वह अपने जीवन की इस पुण्य स्मृति का वर्णन करती, अपने अन्तस्तल के इस प्रकाश को दर्शाती जो सौ बरसो से उसके जीवन-पथ को काँटों और गढ़ों से बचाता आता था। कैसी अनन्त अभिलाषा थी, जिसे जीवन-सत्यो ने ज़रा भी धूमिल न कर पाया था।

२

वह दिन भी थे, जब तुलिया जवान थी, सुन्दर थी और पतगों को उसके रूप-दीपक पर मँडराने का नशा सवार था। उनके अनुराग और उन्माद तथा समर्पण की कथाएँ जब वह काँपते हुए स्वरो और सजल नेत्रो से कहती तो शायद उन शहीदों की आत्माएँ स्वर्ग मे आनन्द से नाच उठती होंगी, क्योकि जीते जी उन्हे जो कुछ न मिला वही अब तुलिया उन पर दोनो हाथो से निछावर कर रही थी। उसकी उठती हुई जवानी थी। जिधर से निकल जाती युवक समाज कलेजे पर हाथ रख-कर रह जाता। तब बसीसिह नाम का एक ठाकुर था, बड़ा छैला, बड़ा रसिया

गाँव का सबसे मनचला जवान, जिसकी तान रात के सन्नाटे में कोस भर से सुनायी पडती थी। दिन मे सैंकडो बार तुलिया के घर के चक्कर लगाता। तालाब के किनारे, खेत मे, खलिहान मे, कुएँ पर, जहाँ वह जाती, परछाई की तरह उसके पीछे लगा रहता। कभी दूध लेकर उसके घर जाता, कभी घी लेकर। कहता, तुलिया, मैं तुझसे कुछ नही चाहता, बस जो कुछ मैं तुझे भेट किया करूँ, वह ले लिया कर। तू मुझसे नही बोलना चाहती मत बोल, मेरा मुँह नही देखना चाहती, मत देख, लेकिन मेरा चढावो को ठुकरा मत। बस, मै इसी से सन्तुष्ट हो जाऊँगा। तुलिया ऐसी भोली न थी, जानती थी यह उँगली पकडने की बाते है, लेकिन न जाने कैसे वह एक दिन उसके धोखे मे आ गयी — नही, धोखे मे नही आयी — उसकी जवानी पर उसे दया आ गयी। एक दिन वह पके हुए कलमी आमो की एक टोकरी लाया। तुलिया ने कभी कलमी आम न खाये थे। टोकरी उससे ले ली। फिर तो आये दिन आम की डालियाँ आने लगी। एक दिन जब तुलिया टोकरी लेकर घर में जाने लगी तो बसी ने धीरे से उसका हाथ पकडकर अपने सीने पर रख लिया और चट उसके पैरो पर गिर पड़ा। फिर बोला — तुलिया, अगर अब भी तुझे मुझ पर दया नही आती तो आज मुझे मार डाल। तेरे हाथो से मर जाऊँ, बस यही साध है।

तुलिया ने टोकरी पटक दी, अपने पाँव छुडाकर एक पग पीछे हट गयी और रोषभरी आँखो से ताकती हुई बोली — अच्छा ठाकुर, अब यहाँ से चले जाव, नही तो या तो तुम न रहोगे या मै न रहूँगी। तुम्हारे आमो मे आग लगे, और तुमको क्या कहूँ! मेरा आदमी काले कोसो मेरे नाम पर बैठा हुआ है, इसीलिए कि मैं यहाँ उसके साथ कपट करूँ? वह मर्द है, चार पैसे कमाता है, क्या वह दूसरी न रख सकता था? क्या औरतो की ससार मे कमी है? लेकिन वह मेरे नाम पर बैठा हुआ है, मर्द होकर बैठा हुआ है। तुमसे कम पट्ठा नही है, तुम्हारा जैसा बाँका चाहे न हो। पढ़ोगे उसकी चिट्ठियाँ जो वह मेरे नाम भेजता है? आप चाहे जिस दशा मे हो, मै कौन यहाँ बैठी देखती हूँ, लेकिन मेरे पास बराबर रुपये भेजता है। इसीलिए कि मैं यहाँ दूसरों से विहार करूँ? जब तक वह मुझको अपनी और अपने को मेरा समझता रहेगा, तुलिया उसी की रहेगी, मन से भी, करम से भी। जब उससे मेरा ब्याह हुआ तब मै पाँच साल की अल्हड़ छोकरी थी। उसने मेरे साथ कौन-सा सुख उठाया? बाँह पकड़ने की लाज ही तो निभा रहा है! जब वह मर्द होकर प्रीत निभाता है तो मैं औरत होकर उसके साथ दगा करूँ!

यह कहकर वह भीतर गयी और पत्रो की पिटारी लाकर ठाकुर के सामने पटक दी। मगर ठाकुर की आँखो से आँसुओ का तार बँधा हुआ था, ओठ बिचके जा रहे थे। ऐसा जान पडता था कि भूमि मे धँसा जा रहा है।

एक क्षण के बाद उसने हाथ जोडकर कहा — मुझसे बहुत बड़ा अपराध हो गया तुलिया। मैने तुझे पहचाना न था। अब इसकी यही सजा है कि इसी क्षण मुझे मार डाल। ऐसे पापी के उद्धार का यही एक मार्ग है।

तुलिया को उस पर दया नही आयी। वह समझती थी कि यह अभी तक शरारत किये जाता है। झल्लाकर बोली — मरने को जी चाहता है तो मर जाव। क्या ससार मे कुएँ-तालाब नही हैं, या तुम्हारे पास तलवार-कटार नही है। मैं किसी को क्यों मारूँ ?

ठाकुर ने हताश आँखों से देखा।

'तो यही तेरा हुक्म है ?'

'मेरा हुक्म क्यों होने लगा ? मरनेवाले किसी से हुक्म नहीं माँगते।'

ठाकुर चला गया और दूसरे दिन उसकी लाश नदी मे तैरती हुई मिली। लोगों ने समझा तड़के नहाने आया होगा, पाँव फिसल गया होगा। महीनो तक गाँव मे इसकी चर्चा रही, पर तुलिया ने जबान तक न खोली, उधर का आना-जाना बन्द कर दिया।

बसीसिंह के मरते ही छोटे भाई ने जायदाद पर कब्जा कर लिया और उसकी स्त्री और बालक को सताने लगा। देवरानी ताने देती, देवर ऐब लगाता। आखिर अनाथ विधवा एक दिन जिन्दगी से तंग आकर घर से निकल पड़ी। गाँव में सोता पड़ गया था। तुलिया भोजन करके हाथ मे लालटेन लिये गाय को रोटी खिलाने निकली थी। प्रकाश मे उसने ठकुराइन को दबे पाँव जाते देखा। सिसकती और अंचल से आँसू पोंछती जाती थी। तीन साल का बालक गोद में था।

तुलिया ने पूछा — इतनी रात गये कहाँ जाती हो ठकुराइन ? सुनो, बात क्या है, तुम तो रो रही हो।

ठकुराइन घर से जा तो रही थी, पर उसे खुद न मालूम था कहाँ। तुलिया की ओर एक बार भीत नेत्रों से देखकर बिना कुछ जवाब दिये आगे बढ़ी। जवाब कैसे देती ? गले में तो आँसू भरे हुए थे और इस समय न जाने क्यों और उमड़ आये थे।

तुलिया सामने आकर बोली — जब तक तुम बता न दोगी, मैं एक पग भी आगे न जाने दूँगी।

ठकुराइन खड़ी हो गयी और आँसू-भरी आँखों मे क्रोध भरकर बोली — तू क्या करेगी पूछकर ? तुझसे मतलब ?

'मुझसे कोई मतलब ही नही ? क्या मै तुम्हारे गाँव में नही रहती ? गाँव-वाले एक दूसरे के दुख-दर्द में साथ न देंगे तो कौन देगा ?'

'इस ज़माने में कौन किसका साथ देता है तुलिया ? जब अपने घरवालो ने ही साथ नही दिया और तेरे भैया के मरते ही मेरे खून के प्यासे हो गये, तो फिर मैं और किससे आशा रखूँ ? तुझसे मेरे घर का हाल कुछ छिपा है ? वहाँ मेरे लिए अब जगह नही है। जिस देवर-देवरानी के लिए मै प्राण देती थी, वही अब मेरे दुश्मन है। चाहते है कि यह एक रोटी खाय और अनाथों की तरह पडी रहे। मै रखेली नहीं हूँ, उढ़री नही हूँ, ब्याहता हूँ, दस गाँव के बीच में ब्याह के आयी हूँ। अपनी रत्ती भर जायदाद न छोडूँगी। आज कोई न दे, मै दुखिया हूँ, लेकिन चाहे मेरी आबरू जाय, इनको मिटा के छोडूँगी और अपना आधा लेकर रहूँगी।'

'तेरे भैया', ये दो शब्द तुलिया को इतने प्यारे लगे कि उसने ठकुराइन को गले लगा लिया और उसका हाथ पकड़कर बोली — तो बहिन, मेरे घर मे चलकर रहो। और कोई साथ दे या न दे, तुलिया मरते दम तक तुम्हारा साथ देगी। मेरा घर तुम्हारे रहने लायक नही है, लेकिन घर मे और कुछ नही शान्ति तो है और मैं कितनी ही नीच हूँ, तुम्हारी बहिन तो हूँ।

ठकुराइन ने तुलिया के चेहरे पर अपनी विस्मय भरी आँखे जमा दी।

'ऐसा न हो मेरे पीछे मेरा देवर तुम्हारा भी दुश्मन हो जाय।'

'मै दुश्मनों से नहीं डरती, नही इस टोले मे अकेली न रहती।'

'लेकिन मै तो नही चाहती कि मेरे कारन तुझ पर आफत आवे।'

'तो उनसे कहने ही कौन जाता है, और किसे मालूम होगा कि अन्दर तुम हो।'

ठकुराइन को ढाढ़स बँधा। सकुचाती हुई तुलिया के साथ अन्दर आयी। उसका हृदय भारी था। जो एक विशाल पक्के भवन की स्वामिनी थी, आज इस झोंपडी मे पड़ी हुई है।

घर में एक ही खाट थी, ठकुराइन बच्चे के साथ उस पर सोती। तुलिया ज़मीन पर पड़ रहती। एक ही कम्बल था, ठकुराइन उसको ओढ़ती, तुलिया टाट का टुकडा ओढ़कर रात काटती। मेहमान का क्या सत्कार करे, कैसे रक्खे, यही सोचा करती। ठकुराइन के जूठे बरतन माँजना, कपडे छाँटना, उसके बच्चे को खिलाना, ये सारे काम वह इतने उमंग से करती, मानो देवी की उपासना कर रही हो। ठकुराइन

इस विपत्ति में भी ठकुराइन थी, गर्विणी, विलासप्रिय, कल्पनाहीन। इस तरह रहती थी मानो उसी का घर है और तुलिया पर इस तरह रोब जमाती थी मानो वह उसकी लौडी है। लेकिन तुलिया अपने अभागे प्रेमी के साथ प्रीति की रीति का निबाह कर रही थी, उसका मन कभी न मैला होता, माथे पर कभी न बल पडता।

एक दिन ठकुराइन ने कहा — तूला, तुम बच्चे को देखती रहना, मैं दो-चार दिन के लिए जरा बाहर जाऊँगी। इस तरह तो यहाँ जिन्दगी भर तुम्हारी रोटियाँ तोडती रहूँगी, पर दिल की आग कैसे ठण्डी होगी ? इस बेहया को इसकी लाज कहाँ कि उसकी भावज कहाँ चली गयी। वह तो दिल मे खुश होगा कि अच्छा हुआ उसके मार्ग का काँटा हट गया। ज्यों ही पता चला कि मै अपने मैके नही गयी, कहीं और पडी हूँ, वह तुरन्त मुझे बदनाम कर देगा और तब सारा समाज उसी का साथ देगा। अब मुझे कुछ अपनी फिक्र करनी चाहिए।

तुलिया ने पूछा — कहाँ जाना चाहती हो बहिन ? कोई हर्ज न हो तो मैं भी साथ चलूँ। अकेली कहाँ जाओगी ?

'उस साँप को कुचलने के लिए कोई लाठी खोजूँगी।'

तुलिया इसका आशय न समझ सकी। उसके मुख की ओर ताकने लगी।

ठकुराइन ने निर्लज्जता के साथ कहा — तू इतनी मोटी-सी बात भी नहीं समझी ! साफ-साफ ही सुनना चाहती है ? अनाथ स्त्री के पास अपनी रक्षा का अपने रूप के सिवा दूसरा कौन अस्त्र है ? अब उसी अस्त्र से काम लूँगी। जानती है, इस रूप के क्या दाम होंगे ? इस भेडिये का सिर। इस परगने का हाकिम जो कोई भी हो उसी पर मेरा जादू चलेगा। और ऐसा कौन मर्द है जो किसी युवती के जादू से बच सके, चाहे वह ऋषि ही क्यों न हो। धर्म जाता है जाय, मुझे परवाह नहीं। मै यह नहीं देख सकती कि मैं बन-बन की पत्तियाँ तोडूँ और वह शोहदा मूँछो पर ताव देकर राज करे।

तुलिया को मालूम हुआ कि इस अभिमानिनी के हृदय पर कितनी गहरी चोट है। इस व्यथा को शान्त करने के लिए वह जान ही पर नही खेल रही है, धर्म पर खेल रही है जिसे वह प्राणो से भी प्रिय समझती है। बसीसिंह की वह प्रार्थी मूर्ति उसकी आँखों के सामने आ खडी हुई। वह बलिष्ठ था, अपनी फौलादी शक्ति से वह बडी आसानी के साथ तुलिया पर बल प्रयोग कर सकता था, और उस रात के सन्नाटे मे उस अनाथा की रक्षा करनेवाला ही कौन बैठा हुआ था। पर उसकी सतीत्व-भरी भर्त्सना ने बसीसिह को किस तरह मोहित कर लिया, जैसे कोई काला

भयंकर नाग महुअर का सुरीला राग सुनकर मस्त हो गया हो। उसी सच्चे सूरमा की कुल-मर्यादा आज सकट में है। क्या तुलिया उस मर्यादा को लुटने देगी और कुछ न करेगी ? नही-नहीं ! अगर बसीसिंह ने उसके सत् को अपने प्राणों से प्रिय समझा तो वह भी उसकी आबरू को अपने धर्म से बचायेगी।

उसने ठकुराइन को तसल्ली देते हुए कहा — अभी तुम कही मत जाओ बहिन, पहले मुझे अपनी शक्ति आजमा लेने दो। मेरी आबरू चली भी गयी तो कौन हँसेगा। तुम्हारी आबरू के पीछे तो एक कुल की आबरू है।

ठकुराइन ने मुस्कराकर उसको देखा। बोली — तू यह कला क्या जाने तुलिया ?

'कौन-सी कला ?'

'यही मर्दों को उल्लू बनाने की।'

'मैं नारी नहीं हूँ ?'

'लेकिन पुरुषों का चरित्र तो नही जानती ?'

'यह तो हम-तुम दोनों माँ के पेट से सीखकर आयी है।'

'कुछ बता तो क्या करेगी ?'

'वही जो तुम करने जा रही हो। तुम परगने के हाकिम पर अपना जादू डालना चाहती हो, मै तुम्हारे देवर पर जाल फेकूँगी।'

'बडा घाघ है तुलिया।'

'यही तो देखना है।'

३

तुलिया ने बाकी रात कार्यक्रम और उसका विधान सोचने में काटी। कुशल सेनापति की भाँति उसने धावे और मार-काट की एक योजना-सी मन में बना ली। उसे अपनी विजय का विश्वास था। शत्रु निश्शक था, इस धावे की उसे ज़रा भी ख़बर न थी।

बसीसिंह का छोटा भाई गिरधर कधे पर छ. फ़ीट का मोटा लट्ठ रखे अकड़ता चला आता था कि तुलिया ने पुकारा — ठाकुर, तनिक यह घास का गट्ठा उठाकर मेरे सिर पर रख दो। मुझसे नहीं उठता।

दो पहर हो गया था। मज़दूर खेतों से लौटकर आ चुके थे। बगूले उठने लगे थे। तुलिया एक पेड़ के नीचे घास का गट्ठा रखे खड़ी थी। उसके माथे से पसीने की धार बह रही थी।

ठाकुर ने चौककर तुलिया की ओर देखा। उसी वक़्त तुलिया का अचल खिसक गया और नीचे की लाल चोली झलक पडी। उसने झट अचल सम्हाल लिया, पर उतावली मे जूड़े में गुँथी हुई फूलो की बेनी बिजली की तरह आँखो में कौद गयी। गिरधर का मन चचल हो उठा। आँखों मे हल्का-सा नशा पैदा हुआ और चेहरे पर हल्की-सी सुर्खी और हल्की-सी मुस्कराहट। नस-नस में संगीत-सा गूंज उठा।

उसने तुलिया को हजारों बार देखा था, प्यासी आँखों से, ललचायी आँखों से, मगर तुलिया अपने रूप और सत् के घमण्ड में उसकी तरफ कभी आँखे तक न उठाती थी। उसकी मुद्रा और ढंग में कुछ ऐसी रुखाई, कुछ ऐसी निठुरता होती थी कि ठाकुर के सारे हौसले पस्त हो जाते थे, सारा शौक ठण्डा पड़ जाता था। आकाश में उड़नेवाले पछी पर उसके जाल और दाने का क्या असर हो सकता था ? मगर आज वह पछी सामनेवाली डाली पर आ बैठा था और ऐसा जान पड़ता था कि भूखा है। फिर वह क्यों न दाना और जाल लेकर दौडे⊥

उसने मस्त होकर कहा — मैं पहुँचाये देता हूँ तुलिया, तू क्यो सिर पर उठायेगी।

'और कोई देख ले तो यही कहे कि ठाकुर को क्या हो गया है ?'

'मुझे कुत्तों के भूँकने की परवा नहीं है।'

'लेकिन मुझे तो है।'

ठाकुर ने न माना। गट्ठा सिर पर उठा लिया और इस तरह आकाश में पॉव रखता चला मानो तीनो लोक का खजाना लूटे लिये जाता हो।

४

एक महीना गुज़र गय।। तुलिया ने ठाकुर पर मोहिनी डाल दी थी और अब उसे मछली की तरह खेला रही थी। कभी बसी ढीली कर देती, कभी कड़ी। ठाकुर शिकार करने चला था, खुद जाल में फँस गया। अपना ईमान और धर्म और प्रतिष्ठा सब कुछ होम करके वह देवी का वरदान न पा सकता था। तुलिया आज भी उससे उतनी ही दूर थी जितनी पहले।

एक दिन वह तुलिया से बोला — इस तरह कब तक जलायेगी तुलिया। चल कही भाग चले।

तुलिया ने फदे को और कसा — हाँ, और क्या। जब तुम मुँह फेर लो तो कहीं की न रहूँ। दीन से भी जाऊँ, दुनिया से भी !

ठाकुर ने शिकायत के स्वर में कहा — अब भी तुझे मुझ पर विश्वास नहींआता ?

'भौरे फूल का रस लेकर उड जाते है।'

'और पतगे जलकर राख नही हो जाते ?'

'पतियाऊँ कैसे ?'

'मैंने तेरा कोई हुक्म टाला है ?'

'तुम समझते होगे कि तुलिया को एक रगीन साड़ी और दो-एक छोटे-मोटे गहने देकर फँसा लूँगा। मै ऐसी भोली नही हूँ।'

तुलिया ने ठाकुर के दिल की बात भाँप ली थी। ठाकुर हैरत मे आकर उसका मुँह ताकने लगा।

तुलिया ने फिर कहा — आदमी अपना घर छोडता है तो पहले कही बैठने का ठिकाना कर लेता है।

ठाकुर प्रसन्न होकर बोला — तो तू चलकर मेरे घर मे मालकिन बनकर रह। मै तुझसे कितनी बार कह चुका।

तुलिया आँखे मटकाकर बोली — आज मालकिन बनकर रहूँ, कल लौडी बनकर भी न रहने पाऊँ, क्यों ?

'तो जिस तरह तेरा मन भरे वह कर। मै तो तेरा गुलाम हूँ।'

'बचन देते हो ?'

'हाँ, देता हूँ। एक बार नही, सौ बार, हज़ार बार।'

'फिर तो न जाओगे ?'

'वचन देकर फिर जाना नामर्दो का काम है।'

'तो अपनी आधी जमीन-जायदाद मेरे नाम लिख दो।'

ठाकुर अपने घर की एक कोठरी, दस-पाँच बीघे खेत, गहने-कपडे तो उसके चरणों पर चढ़ा देने को तैयार था, लेकिन आधी जायदाद उसके नाम लिख देने का साहस उसमें न था। कल को तुलिया उससे किसी बात पर नाराज हो जाय, तो उसे आधी जायदाद से हाथ धोना पडे। ऐसी औरत का क्या एतबार ! उसे गुमान तक न था कि तुलिया उसके प्रेम की इतनी कड़ी परीक्षा लेगी। उसे तुलिया पर क्रोध आया। यह चमार की बिटिया जरा सुन्दर क्या हो गयी है कि समझती है, मैं अप्सरा हूँ। उसकी मुहब्बत केवल उसके रूप का मोह थी। वह मुहब्बत, जो अपने को मिटा देती है और मिट जाना ही अपने जीवन की सफलता समझती है, उसमें न थी।

उसने माथे पर बल लाकर कहा — मै न जानता था, तुझे मेरी ज़मीन-जायदाद से प्रेम है तुलिया, मुझसे नही !

तुलिया ने छूटते ही जवाब दिया — तो क्या मैं न जानती थी कि तुम्हे मेरे रूप और जवानी ही से प्रेम है, मुझसे नही !

'तू प्रेम को बाजार का सौदा समझती है ?'

'हाँ, समझती हूँ। तुम्हारे लिए प्रेम चार दिन की चाँदनी होगी, मेरे लिए तो अँधेरा पाख हो जायगा। मैं जब अपना सब कुछ तुम्हे दे रही हूँ तो उसके बदले में सब कुछ लेना भी चाहती हूँ। तुम्हे अगर मुझसे प्रेम होता तो तुम आधी क्या पूरी जायदाद मेरे नाम लिख देते। मै जायदाद क्या सिर पर उठा ले जाऊँगी। लेकिन तुम्हारी नीयत मालूम हो गयी। अच्छा ही हुआ। भगवान न करे कि ऐसा कोई समय आवे, लेकिन दिन किसी के बराबर नही जाते, अगर ऐसा कोई समय आया कि तुमको मेरे सामने हाथ पसारना पड़ा तो तुलिया दिखा देगी कि औरत का दिल कितना उदार हो सकता है।'

तुलिया झल्लायी हुई वहाँ से चली गयी, पर निराश न थी, न बेदिल। जो कुछ हुआ वह उसके सोचे हुए विधान का एक अग था। इसके आगे क्या होने-वाला है, इसके बारे मे भी उसे कोई सन्देह न था।

## ५

ठाकुर ने जायदाद तो बचा ली थी, पर बड़े मँहगे दामों। उसके दिल का इत्मीनान गायब हो गया था। जिन्दगी मे जैसे कुछ रह ही न गया हो। जायदाद आँखों के सामने थी, तुलिया दिल के अन्दर। तुलिया जब रोज सामने आकर अपनी तिर्छी चितवनो से उसके हृदय में बाण चलाती थी, तब वह ठोस सत्य थी। अब जो तुलिया उसके हृदय मे बैठी हुई थी, वह स्वप्न थी जो सत्य से कही ज्यादा मादक है, विदारक है।

कभी-कभी तुलिया स्वप्न की एक झलक-सी नजर आ जाती, और स्वप्न ही की भाँति विलीन भी हो जाती। गिरधर उससे अपने दिल का दर्द कहने का अवसर ढूँढ़ता रहता लेकिन तुलिया उसके साये से भी परहेज करती। गिरधर को अब अनुभव हो रहा था कि उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए उसकी जायदाद जितनी ज़रूरी है, उससे कही ज़्यादा जरूरी तुलिया है। उसे अब अपनी कृपणता पर क्रोध आता। जायदाद क्या तुलिया के नाम रही, क्या उसके नाम। इस जरा-सी बात में

क्या रक्खा है। तुलिया तो इसलिए अपने नाम लिखा रही थी कि कहीं मैं उसके साथ बेवफ़ाई कर जाऊँ तो वह अनाथ न हो जाय। जब मैं उसका बिना कौड़ी का गुलाम हूँ तो बेवफाई कैसी ? मैं उसके साथ बेवफाई करूँगा, जिसकी एक निगाह के लिए, एक शब्द के लिए तरसता रहता हूँ। कही उससे एक बार एकान्त मे भेंट हो जाती तो उससे कह देता — तूला, मेरे पास जो कुछ है, वह सब तुम्हारा है। कहो बखशिशनामा लिख दूँ, कहो बयनामा लिख दूँ। मुझसे जो अपराध हुआ उसके लिए नादिम हूँ। जायदाद से मनुष्य को जो एक सस्कार-गत प्रेम है, उसी ने मेरे मुँह से वह शब्द निकलवाये। यही रिवाजी लोभ मेरे और तुम्हारे बीच में आकर खड़ा हो गया। पर अब मैने जाना कि दुनिया मे वही चीज़ सबसे कीमती है जिससे जीवन में आनन्द और अनुराग पैदा हो। अगर दरिद्रता और वैराग्य मे आनन्द मिले तो वही सबसे प्रिय वस्तु है, जिस पर आदमी जमीन और मिल्कियत सब कुछ होम कर देगा। आज भी लाखों माई के लाल है जो ससार के सुखों पर लात मारकर जगलों और पहाड़ों की सैर करने में मस्त है। और उस वक्त मै इतनी मोटी-सी बात न समझा। हाय रे दुर्भाग्य !

६

एक दिन ठाकुर के पास तुलिया ने पैगाम भेजा — मै बीमार हूँ, आकर देख जाव, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ।

इधर कई दिन से ठाकुर ने तुलिया को न देखा था। कई बार उसके द्वार के चक्कर भी लगाये, पर वह न दीख पड़ी। अब जो यह संदेशा मिला तो वह जैसे पहाड़ से नीचे गिर पडा। रात के दस बजे होगे। पूरी बात भी न सुनी और दौड़ा। छाती धड़क रही थी और सिर उड़ा जाता था। तुलिया बीमार है ! क्या होगा भगवान ! तुम मुझे क्यों नही बीमार कर देते ? मैं तो उसके बदले मरने को भी तैयार हूँ। दोनो ओर के काले-काले वृक्ष मौत के दूतों की तरह दौड़े चले आते थे। रह-रहकर उसके प्राणों से एक ध्वनि निकलती थी, हसरत और दर्द मे डूबी हुई — तुलिया बीमार है !

उसकी तुलिया ने उसे बुलाया है। उस कृतघ्नी, अधम, नीच, हत्यारे को बुलाया है कि आकर मुझे देख जाओ, कौन जाने बचूँ कि न बचूँ। तू अगर न बचेगी तुलिया तो मैं भी न बचूँगा, हाय, न बचूँगा ! दीवार से सिर फोड़कर मर जाऊँगा। फिर मेरी और तेरी चिता एक साथ बनेगी, दोनो के जनाज़े एक साथ निकलेगे।

उसने क़दम और तेज किये। आज वह अपना सब कुछ तुलिया के कदमो पर रख देगा। तुलिया उसे बेवफा समझती है। आज वह दिखायेगा, वफा किसे कहते है। जीवन मे अगर उसने वफा न की तो मरने के बाद करेगा। इस चार दिन की जिन्दगी में जो कुछ न कर सका वह अनन्त युगो तक करता रहेगा। उसका प्रेम कहानी बनकर घर-घर फैल जायगा।

मन में शका हुई, तुम अपने प्राणों का मोह छोड़ सकोगे? उसने ज़ोर से छाती पीटी और चिल्ला उठा — प्राणो का मोह किसके लिए? और प्राण भी तो वही है, जो बीमार है। देखूँ मौत कैसे प्राण ले जाती है, और देह को छोड़ देती है।

उसने धड़कते हुए दिल और थरथराते हुए पाँवो से तुलिया के घर मे कदम रक्खा। तुलिया अपनी खाट पर एक चादर ओढे सिमटी पड़ी थी, और लालटेन के अन्धे प्रकाश में उसका पीला मुख मानों मौत की गोद मे विश्राम कर रहा था।

उसने उसके चरणों पर सिर रख दिया और आँसुओ में डूबी हुई आवाज से बोला — तूला, यह अभागा तुम्हारे चरणो पर पडा हुआ है। क्या आँखे न खोलोगी?

तुलिया ने आँखें खोल दी और उसकी ओर करुण दृष्टि डालकर कराहती हुई बोली — तुम हो गिरधर सिंह, तुम आ गये? अब मैं आराम से मरूँगी। तुम्हें एक बार देखने के लिए जी बहुत बेचैन था। मेरा कहा-सुना माफ कर देना और मेरे लिए रोना मत। इस मिट्टी की देह मे क्या रक्खा है गिरधर! वह तो मिट्टी में मिल जायगी। लेकिन मैं कभी तुम्हारा साथ न छोडूंगी। परछाईं की तरह नित्य तुम्हारे साथ रहूँगी। तुम मुझे देख न सकोगे, मेरी बाते सुन न सकोगे, लेकिन तुलिया आठों पहर सोते-जागते तुम्हारे साथ रहेगी। मेरे लिए अपने को बदनाम मत करना गिरधर! कभी किसी के सामने मेरा नाम जबान पर न लाना। हाँ, एक बार मेरी चिता पर पानी के छीटे मार देना। इससे मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो जायगी।

गिरधर फूट-फूटकर रो रहा था। हाथ मे कटार होती तो इस वक्त जिगर में मार लेता और उसके सामने तड़पकर मर जाता।

जरा दम लेकर तुलिया ने फिर कहा — मैं बचूँगी नही गिरधर, तुमसे एक बिनती करती हूँ, मानोगे?

गिरधर ने छाती ठोंककर कहा — मेरी लाश भी तेरे साथ ही निकलेगी तुलिया। अब जीकर क्या करूँगा और जिऊँ भी तो कैसे? तू मेरा प्राण है तुलिया।

उसे ऐसा मालूम हुआ तुलिया मुस्करायी।

'नही-नही, ऐसी नादानी मत करना। तुम्हारे बाल-बच्चे है, उनका पालन करना। अगर तुम्हे मुझसे सच्चा प्रेम है, तो ऐसा कोई काम मत करना जिससे किसी को इस प्रेम की गन्ध भी मिले। अपनी तुलिया को मरने के पीछे बदनाम मत करना।'

गिरधर ने रोकर कहा — जैसी तेरी इच्छा ।

'मेरी तुमसे एक बिनती है।'

'अब तो जिऊँगा ही इसीलिए कि तेरा हुक्म पूरा करूँ। यही मेरे जीवन का ध्येय होगा।'

'मेरी यही बिनती है कि अपनी भाभी को उसी तरह मान-मर्यादा के साथ रखना जैसे वह बंसीसिंह के सामने रहती थी। उसका आधा उसको दे देना।'

'लेकिन भाभी तो तीन महीने से अपने मैके में है, और कह गयी है कि अब कभी न आऊँगी।'

'यह तुमने बुरा किया है गिरधर, बहुत बुरा किया है। अब मेरी समझ में आया कि क्यो मुझे बुरे-बुरे सपने आ रहे थे। अगर चाहते हो कि मै अच्छी हो जाऊँ, तो जितनी जल्द हो सके, लिखा-पढी करके काग़ज-पत्तर मेरे पास रख दो। तुम्हारी यह बददियानती ही मेरी जान का गाहक हो रही है। अब मुझे मालूम हुआ कि बंसीसिंह क्यो मुझे बार-बार सपना देते थे। मुझे और कोई रोग नहीं है। बसीसिंह ही मुझे सता रहे है। बस अभी जाओ। देर की तो मुझे जीता न पाओगे। तुम्हारी बेइन्साफी का दंड बसीसिंह मुझे दे रहे है।'

गिरधर ने दबी ज़बान से कहा — लेकिन रात को कैसे लिखा-पढी होगी तूला? स्टाम्प कहाँ मिलेगा? लिखेगा कौन? गवाह कहाँ है?

'कल साँझ तक भी तुमने लिखा-पढी कर ली तो मेरी जान बच जायगी, गिरधर। मुझे बसीसिंह लगे हुए है, वही मुझे सता रहे है, इसीलिए कि वह जानते है तुम्हें मुझसे प्रेम है। मै तुम्हारे ही प्रेम के कारन मारी जा रही हूँ। अगर तुमने देर की तो तुलिया को जीता न पाओगे।'

'मैं अभी जाता हूँ तुलिया। तेरा हुक्म सिर और आँखो पर। अगर तूने पहले ही यह बात मुझसे कह दी होती तो क्यों यह हालत होती? लेकिन कही ऐसा न हो, मैं तुझे देख न सकूँ और मन की लालसा मन मे ही रह जाय।'

'नही-नहीं, मैं कल साँझ तक नही मरूँगी, विश्वास रक्खो।'

गिरधर उसी छन वहाँ से निकला और रातों-रात पच्चीस कोस की मजिल काट दी। दिन निकलते-निकलते सदर पहुँचा, वकीलों से सलाह-मशविरा किया,

स्टाम्प लिया, भावज के नाम आधी जायदाद लिखी, रजिस्ट्री करायी, और चिराग जलते-जलते हैरान-परीशान, थका-माँदा, बेदाना-पानी, आशा और दुराशा से काँपता हुआ आकर तुलिया के सामने खड़ा हो गया। रात के दस बज गये थे। उस वक़्त न रेलें थी, न लारियाँ। बेचारे को पचास कोस की कठिन यात्रा करनी पड़ी। ऐसा थक गया था कि एक-एक पग पहाड मालूम होता था। पर भय था कि कहीं देर हो गयी तो अनर्थ हो जायगा।

तुलिया ने प्रसन्न मन से पूछा — तुम आ गये गिरधर? काम कर आये?

गिरधर ने कागज उसके सामने रख दिया और बोला — हाँ तूला, कर आया, मगर अब भी तुम अच्छी न हुई तो तुम्हारे साथ मेरी जान भी जायगी। दुनिया चाहे हँसे, चाहे रोये, मुझे परवाह नही है। क़सम ले लो, जो एक घूँट पानी भी पिया हो।

तुलिया उठ बैठी और कागज को अपने सिरहाने रखकर बोली — अब मैं बहुत अच्छी हूँ। सबेरे तक बिलकुल अच्छी हो जाऊँगी। तुमने मेरे साथ जो नेकी की है, वह मरते दम तक न भूलूँगी। लेकिन अभी-अभी मुझे जरा नीद आ गयी थी। मैंने सपना देखा कि बसीसिंह मेरे सिरहाने खड़े है और मुझसे कह रहे है, तुलिया तू ब्याहता है, तेरा आदमी हजार कोस पर बैठा तेरे नाम की माला जप रहा है। चाहता तो दूसरी कर लेता, लेकिन तेरे नाम पर बैठा हुआ है और जन्म भर बैठा रहेगा। अगर तूने उससे दगा की तो मैं तेरा दुश्मन हो जाऊँगा, और फिर जान लेकर ही छोड़ूँगा। अपना भला चाहती है तो अपने सत् पर रह। तूने उससे कपट किया, उसी दिन मै तेरी साँसत कर डालूँगा। बस यह कहकर वह लाल-लाल आँखों से मुझे तरेरते हुए चले गये।

गिरधर ने एक छन तुलिया के चेहरे की तरफ देखा, जिस पर इस समय एक दैवी तेज विराज रहा था, और एकाएक जैसे उसकी आँखों के सामने से पर्दा हट गया और सारी साजिश समझ मे आ गयी। उसने सच्ची श्रद्धा से तुलिया के चरणों को चूमा और बोला — समझ गया तुलिया, तू देवी है।

— चाँद, अप्रैल १९३५

# पैपुजी

१

सिद्धान्त का सबसे बडा दुश्मन है मुरौवत। कठिनाइयों, बाधाओं, प्रलोभनों का सामना आप कर सकते है दृढ सकल्प और आत्मबल से। लेकिन एक दिली दोस्त से बेमुरौवती तो नहीं की जाती, सिद्धान्त रहे या जाय। कई साल पहले मैंने जनेऊ हाथ मे लेकर प्रतिज्ञा की थी कि अब कभी किसी की बरात मे न जाऊँगा चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय। ऐसी विकट प्रतिज्ञा करने की जरूरत क्यों पड़ी, इसकी कथा लम्बी है और आज भी उसे याद करके मेरी प्रतिज्ञा को जीवन मिल जाता है। बरात थी कायस्थों की। समधी थे मेरे पुराने मित्र। बरातियो मे अधिकांश जान-पहचान के लोग थे। देहात मे जाना था। मैंने सोचा, चलो दो-तीन दिन देहात की सैर रहेगी, चल पड़ा। लेकिन मुझे यह देखकर हैरत हुई कि बरातियो की वहाँ जाकर बुद्धि ही कुछ भ्रष्ट हो गयी है। बात-बात पर झगड़ा-तकरार। सभी कन्या-पक्षवालों से मानों लड़ने को तैयार। यह चीज नही आयी, वह चीज नही भेजी, यह आदमी है या जानवर, पानी बिना बरफ़ के कौन पियेगा। गधे ने बरफ भेजी भी तो दस सेर। पूछो दस सेर बरफ लेकर ऑखो मे लगायें या किसी देवता को चढ़ाये! अजब चिल-पों मची हुई थी। कोई किसी की न सुनता था। समधी साहब सिर पीट रहे थे कि यहॉ उनके मित्रों की जितनी दुर्गति हुई, उसका उन्हें उम्र भर खेद रहेगा।। वह क्या जानते थे कि लड़कीवाले इतने गँवार है। गँवार क्यों, मतलबी कहिए। कहने को शिक्षित है, सभ्य है, भद्र है, धन भी भगवान की दया से कम नहीं, मगर दिल के इतने छोटे। दस सेर बरफ़ भेजते हैं! सिगरेट की एक डिबिया भी नहीं! फँस गया और क्या।

मैंने उनसे बिना सहानुभूति दिखाये कहा — सिगरेट नही भेजे तो कौन-सा बड़ा अनर्थ हो गया, खमीरा तम्बाकू तो दस सेर भेज दिया है, पीते क्यो नही घोल-घोल कर।

मेरे समधी मित्र ने विस्मयभरी आँखों से मुझे देखा मानों उन्हे अपने कानों पर विश्वास न हो। ऐसी अनीति!

बोले — आप भी अजीब आदमी है, खमीरा यहाँ कौन पीता है। मुद्दत हुई लोगों ने गुडगुड़ियाँ और फर्शियाँ गुदड़ी बाजार मे बेच डालीं। थोड़े से दकियानूसी अब भी हुक्का गुड़गुड़ाते है लेकिन बहुत कम। यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सभी नयी रोशनी, नये विचार, नये ज़माने के लोग है और कन्यावाले यह बात जानते हैं, फिर भी सिगरेट नहीं भेजी। यहाँ कई सज्जन आठ-दस डिबिया रोज पी जाते है। एक साहब तो बारह तक पहुँच जाते है। और चार-पाँच डिबिया तो आम बात है। इतने आदमियों के बीच मे पाँच सौ डिबिया भी न हो तो क्या हो। और बरफ़ देखी आपने, जैसे दवा के लिए भेजी है। यहाँ इतनी बरफ़ घर-घर आती है। मैं तो अकेला ही दस सेर पी जाता हूँ। देहातियों को कभी अकल न आयेगी, पढ़-लिख कितने ही जायँ।

मैंने कहा — तो आपको अपने साथ एक गाड़ी सिगरेट और टन भर बरफ लेते आना चाहिए था।

वह स्तम्भित हो गये — आप भंग तो नहीं खा गये ?

— जी नहीं, कभी उम्र भर नहीं खायी।

— तो फिर ऐसी ऊल-जलूल बातें क्यों करते हो ?

— मैं तो सम्पूर्णतः अपने होश में हूँ।

— होश में रहनेवाला आदमी ऐसी बात नहीं कर सकता। हम यहाँ लड़का ब्याहने आये है, लड़कीवालों को हमारी सारी फ़रमाइशें पूरी करनी पड़ेगी, सारी। हम जो कुछ माँगेंगे उन्हें देना पड़ेगा, रो-रोकर देना पड़ेगा। दिल्लगी नही है। नाकों चने न चबवा दें तो कहिएगा। यह हमारा खुला हुआ अपमान है। द्वार पर बुलाकर ज़लील करना। मेरे साथ जो लोग आये हैं वे नाई-कहार नहीं है, बडे-बडे आदमी है। मैं उनकी तौहीन नही देख सकता। अगर इन लोगों की यह जिद है तो बरात लौट जायगी।

मैंने देखा यह इस वक़्त ताव में है, इनसे बहस करना उचित नहीं। आज जीवन में पहली बार, केवल दो दिन के लिए, इन्हें एक आदमी पर अधिकार मिल गया है। उसकी गर्दन इनके पाँव के नीचे है। फिर इन्हे क्यों न नशा हो जाय, क्यों न सिर फिर जाय, क्यों न उस पर दिल खोलकर रोब जमायें। वरपक्षवाले कन्यापक्षवालों पर मुद्दतों से हुकूमत करते चले आये है, और उस अधिकार को त्याग देना आसान नही। इन लोगों के दिमाग़ में इस वक़्त यह बात कैसे आयेगी कि तुम कन्यापक्षवालो के मेहमान हो और वे तुम्हें जिस तरह रखना चाहें तुम्हें रहना पड़ेगा। मेहमान को जो

आदर-सत्कार, चूनी-चोकर, रूखा-सूखा मिले, उस पर उसे सन्तुष्ट होना चाहिए। शिष्टता यह कभी गवारा नही कर सकती कि वह जिनका मेहमान है, उनसे अपनी खातिरदारी का टैक्स वसूल करे। मैने वहाँ से टल जाना ही मुनासिब समझा।

लेकिन जब विवाह का मुहूर्त आया, इधर से एक दर्जन व्हिस्की की बोतलो की फरमाइश हुई और कहा गया कि जब तक बोतले न आ जायँगी, हम विवाह-सस्कार के लिए मडप मे न जायँगे, तब मुझसे न देखा गया। मैने समझ लिया कि ये सब पशु है, इसानियत से खाली। इनके साथ एक क्षण रहना भी अपनी आत्मा का खून करना है। मैने उसी वक्त प्रतिज्ञा की कि अब कभी किसी बरात मे न जाऊँगा और अपना बोरिया-बकचा लेकर उसी क्षण वहाँ से चल दिया।

इसलिए जब गत मगलवार को मेरे परम मित्र सुरेश बाबू ने मुझे अपने लड़के के विवाह का निमत्रण दिया तो मैने साहस को दोनो हाथो में पकड़कर कहा — जी नही, मुझे क्षमा कीजिए, मै न जाऊँगा।

उन्होंने खिन्न होकर कहा — आखिर क्यो ?

'मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि अब किसी बरात में न जाऊँगा।'

'अपने बेटे की बरात मे भी नही ?'

'बेटे की बरात में खुद अपना स्वामी रहूँगा।'

'तो समझ लीजिए यह आप ही का पुत्र है और आप यहाँ अपने स्वामी है।'

मै निरुत्तर हो गया। फिर भी मैंने अपना पक्ष न छोड़ा।

'आप लोग वहाँ कन्यापक्षवालों से सिगरेट, बर्फ, तेल, शराब आदि-आदि चीज़ो के लिए आग्रह तो न करेगे ?'

'भूलकर भी नही, इस विषय मे मेरे विचार वही है जो आपके।'

'ऐसा तो न होगा कि मेरे जैसे विचार रखते हुए भी आप वहाँ दुराग्रहियो की बातो में आ जायँ और वे अपने हथकडे शुरू कर दे ?'

'मैं आप ही को अपना प्रतिनिधि बनाता हूँ। आपके फ़ैसले की वहाँ कही अपील न होगी।'

दिल मे तो मेरे अब भी कुछ सशय था, लेकिन इतना आश्वासन मिलने पर और ज्यादा अड़ना असज्जनता थी। आखिर मेरे वहाँ जाने से यह बेचारे तर तो नही जायँगे। केवल मुझसे स्नेह रखने के कारण ही तो सब कुछ मेरे हाथो में सौप रहे है। मैंने चलने का वादा कर लिया। लेकिन जब सुरेश बाबू बिदा होने लगे तो मैंने घड़े को ज़रा और ठोका —

'लेन-देन का तो कोई झगड़ा नही है?'

'नाम को नही। वे लोग अपनी खुशी से जो कुछ देगे, वह हम ले लेगे। माँगने न माँगने का अधिकार आपको रहेगा।'

'अच्छी बात है, मै चलूँगा।'

शुक्रवार को बरात चली। केवल रेल का सफर था और वह भी पचास मील का। तीसरे पहर के एक्सप्रेस से चले और शाम को कन्या के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ हर तरह का सामान मौजूद था। किसी चीज के माँगने की ज़रूरत न थी। बरातियो की इतनी खातिरदारी भी हो सकती है, इसकी मुझे कल्पना भी न थी। घराती इतने विनीत हो सकते है, कोई बात मुँह से निकली नही कि एक की जगह चार आदमी हाथ बाँधे हाजिर!

लग्न का मुहूर्त आया। हम सभी मडप मे पहुँचे। वहाँ तिल रखने की जगह भी न थी। किसी तरह धँस-धँसाकर अपने लिए जगह निकाली। सुरेश बाबू मेरे पीछे खड़े थे। बैठने को वहाँ जगह न थी।

कन्या-दान सस्कार शुरू हुआ। कन्या का पिता, एक पीताम्बर पहने आकर वर के सामने बैठ गया और उसके चरणों को धोकर उन पर अक्षत, फूल आदि चढाने लगा। मै अब तक सैकड़ो बरातो मे जा चुका था, लेकिन विवाह-सस्कार देखने का मुझे कभी अवसर न मिला था। इस समय वर के सगे-सबधी ही जाते है। अन्य बराती जनवासे मे पड़े सोते है। या नाच देखते है, या ग्रामोफोन के रिकार्ड सुनते है। और कुछ न हुआ तो कई टोलियो में ताश खेलते है। अपने विवाह की मुझे याद नही। इस वक्त कन्या के वृद्ध पिता को एक युवक के चरणों की पूजा करते देखकर मेरी आत्मा को चोट लगी। यह हिन्दू विवाह का आदर्श है या उसका परिहास? जामाता एक प्रकार से अपना पुत्र है, उसका धर्म है कि अपने धर्मपिता के चरण धोये, उस पर पान-फूल चढ़ाये। यह तो नीति-संगत मालूम होता है। कन्या का पिता वर के पाँव पूजे यह तो न शिष्टता है,न धर्म,न मर्यादा। मेरी विद्रोही आत्मा किसी तरह शांत न रह सकी। मैने झल्लाये हुए स्वर मे कहा—यह क्या अनर्थ हो रहा है, भाइयो! कन्या के पिता का यह अपमान! क्या आप लोगों मे आदमियत रही ही नही?

मडप मे सन्नाटा छा गया। मैं सभी आँखों का केन्द्र बन गया। मेरा क्या आशय है, यह किसी की समझ मे न आया।

आखिर सुरेश बाबू ने पूछा—कैसा अपमान और किसका अपमान? यहाँ तो किसी का अपमान नहीं हो रहा है।

'कन्या का पिता वर के पाँव पूजे, यह अपमान नहीं तो क्या है ?'

'यह अपमान नहीं, भाई साहब, प्राचीन प्रथा है।'

कन्या के पिता महोदय बोले — यह मेरा अपमान नही है मान्यवर, मेरा अहो-भाग्य कि आज यह शुभ अवसर आया। आप इतने ही से घबरा गये। अभी तो कम से कम एक सौ आदमी पैंपुजी के इंतजार मे बैठे हुए है। कितने ही तरसते है कि कन्या होती तो वर के पाँव पूजकर अपना जन्म सफल करते।

मैं लाजवाब हो गया। समधी साहब पाँव पूज चुके तो स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह वर की तरफ उमड़ पड़ा और प्रत्येक प्राणी लगा उसके पाँव पूजने। जो आता था, अपनी हैसियत के अनुसार कुछ न कुछ चढ़ा जाता था। सब लोग प्रसन्न-चित्त और गद्गद नेत्रों से यह नाटक देख रहे थे और मै मन में सोच रहा था — जब समाज मे औचित्य ज्ञान का इतना लोप हो गया है और लोग अपने अपमान को अपना सम्मान समझते है तो फिर क्यों न स्त्रियों की समाज में यह दुर्दशा हो, क्यो न वे अपने को पुरुष के पाँव की जूती समझें, क्यों न उनके आत्मसम्मान का सर्वनाश हो जाय !

जब विवाह-संस्कार समाप्त हो गया और वर-वधू मडप से निकले तो मैने जल्दी से आगे बढकर उसी थाल से थोडे से फूल चुन लिये और एक अर्द्ध-चेतना की दशा मे, न जाने किन भावों से प्रेरित होकर, उन फूलों को वधू के चरणों पर रख दिया, और उसी वक़्त वहाँ से घर चल दिया।

—माधुरी, अक्तूबर १९३५

# क्रिकेट मैच

१ जनवरी १९३५

आज क्रिकेट मैच में मुझे जितनी निराशा हुई मैं उसे व्यक्त नही कर सकता। हमारी टीम दुश्मनो से कही ज़्यादा मज़बूत थी मगर हमें हार हुई और वे लोग जीत का डका बचाते हुए ट्रोफी उड़ा ले गये। क्यो? सिर्फ़ इसलिए कि हमारे यहाँ नेतृत्व के लिए योग्यता शर्त नही। हम नेतृत्व के लिए धन-दौलत ज़रूरी समझते है। हिज हाइनेस कप्तान चुने गये, क्रिकेट बोर्ड का फैसला सबको मानना पड़ा। मगर कितने दिलो में आग लगी, कितने लोगों ने हुक्मे हाकिम समझकर इस फैसले को मजूर किया, वह खेलनेवालो से पूछिए। और जहाँ सिर्फ मुँहदेखी है वहाँ उमंग कहाँ, जोश कहाँ, सकल्प कहाँ, खून की आख़िरी बूँद गिरा देने का उत्साह कहाँ। हम खेले और जाहिरा दिल लगाकर खेले। मगर यह सच्चाई के लिए जान देनेवालों की फौज न थी। खेल मे किसी का दिल न था।

मैं स्टेशन पर खड़ा अपना तीसरे दर्जे का टिकट लेने की फिक्र मे था कि एक युवती ने जो अभी कार से उतरी थी आगे बढ़कर मुझसे हाथ मिलाया और बोली — आप भी तो इसी गाडी से चल रहे है मिस्टर जफ़र?

मुझे हैरत हुई कि यह कौन लड़की है और इसे मेरा नाम क्योंकर मालूम हो गया। मुझे एक पल के लिए सकता-सा हो गया कि जैसे शिष्टाचार और अच्छे आचरण की सब बातें दिमाग से ग़ायब हो गयी हों। सौन्दर्य मे एक ऐसी शान होती है जो बड़ों-बड़ो का सिर झुका देती है। मुझे अपनी तुच्छता की ऐसी अनुभूति कभी न हुई थी। मैने निज़ाम हैदराबाद से, हिज़ एक्सलेन्सी वायसराय से, महाराज मैसूर से हाथ मिलाया, उनके साथ बैठकर खाना खाया मगर यह कमज़ोरी मुझ पर कभी न छायी थी। बस यही जी चाहता था कि अपनी पलकों से उसके पाँव चूम लूँ। यह वह सलोनापन न था जिस पर हम जान देते है, न वह नज़ाकत जिसकी कवि लोग कसमें खाते है। उस जगह बुद्धि की कांति थी, गभीरता थी, गरिमा थी, उमग थी और थी आत्म-अभिव्यक्ति की निस्सकोच लालसा। मैंने सवाल भरे अंदाज़ से कहा — जी हाँ।

यह कैसे पूछूँ कि मेरी आपसे भेंट कब हुई। उसकी बेतकल्लुफी कह रही थी वह मुझसे परिचित है। मै बेगाना कैसे बनूँ। इसी सिलसिले मे मैने अपने मर्द होने का फर्ज़ भी अदा कर दिया — मेरे लिए कोई खिदमत ?

उसने मुस्कराकर कहा — जी हाँ, आपसे बहुत से काम लूँगी। चलिए, अदर वेटिंग रूम मे बैठें। लखनऊ जा रहे होंगे ? मै भी वही चल रही हूँ।

वेटिंग रूम आकर उसने मुझे आरामकुर्सी पर बिठाया और खुद एक मामूली कुर्सी पर बैठकर सिगरेट केस मेरी तरफ बढ़ाती हुई बोली — आज तो आपकी बोलिंग बड़ी भयानक थी, वर्ना हम लोग पूरी इनिंग से हारते।

मेरा ताज्जुब और भी बढा। इस सुन्दरी को क्या क्रिकेट से भी शौक है। मुझे उसके सामने आरामकुर्सी पर बैठते झिझक हो रही थी। ऐसी बदतमीजी मैंने कभी न की थी। ध्यान उसी तरफ लगा था। तबियत मे कुछ घुटन-सी हो रही थी। रगों में वह तेजी और तबियत मे वह गुलाबी नशा न था जो ऐसे मौके पर स्वभावत. मुझ पर छा जाना चाहिए था। मैंने पूछा — क्या आप वही तशरीफ रखती थीं ?

उसने अपना सिगरेट जलाते हुए कहा — जी हॉ, शुरू से आखिर तक। मुझे तो सिर्फ आपका खेल जँचा। और लोग तो कुछ बेदिल से हो रहे थे और मै उसका राज समझ रही हूँ। हमारे यहाँ लोगों में सही आदमियों को सही जगह पर रखने का माद्दा ही नही है। जैसे इस राजनीतिक पस्ती ने हमारे सभी गुणों को कुचल डाला हो। जिसके पास धन है उसे हर चीज़ का अधिकार है। वह किसी ज्ञान-विज्ञान के, साहित्यिक-सामाजिक जलसे का सभापति हो सकता है, इसकी योग्यता उसमें हो या न हो। नयी इमारतों का उद्‌घाटन उसके हाथो कराया जाता है, बुनियादे उसके हाथों रखवायी जाती है, सांस्कृतिक आंदोलनों का नेतृत्व उसे दिया जाता है, वह कान्वोकेशन के भाषण पढ़ेगा, लड़कों को इनाम बाँटेगा, यह सब हमारी दास-मनोवृत्ति का प्रसाद है। कोई ताज्जुब नही कि हम इतने नीचे और गिरे हुए है। जहॉ हुक्म और अख्तियार का मामला है वहाँ तो खैर मजबूरी है, हमे लोगो के पैर चूमने ही पड़ते हैं मगर जहॉ हम अपने स्वतंत्र विचार और स्वतत्र आचरण से काम ले सकते है वहाँ भी हमारी जी हुजूरी की आदत हमारा गला नहीं छोड़ती। इस टीम का कप्तान आपको होना चाहिए था, तब देखती कि दुश्मन क्योंकर बाज़ी ले जाता। महाराजा साहब में इस टीम का कप्तान बनने की इतनी ही योग्यता है जितनी आप में असेम्बली का सभापति बनने की या मुझमें सिनेमा ऐक्टिंग की।

बिल्कुल वही भाव जो मेरे दिल मे थे मगर उसकी ज़बान से निकलकर कितने असरदार और कितने आँख खोलनेवाले हो गये। मैंने कहा — आप ठीक कहती हैं। सचमुच यह हमारी कमजोरी है।

— आपको इस टीम मे शरीक न होना चाहिए था।

— मै मजबूर था।

इस सुन्दरी का नाम मिस हेलेन मुकर्जी है। अभी इगलैण्ड से आ रही है। यही क्रिकेट मैच देखने के लिए बम्बई उतर गयी थी। इगलैण्ड मे उसने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की है और जनता की सेवा उसके जीवन का लक्ष्य है। वहाँ उसने एक अखबार मे मेरी तस्वीर देखी थी और मेरा जिक्र भी पढ़ा था तब से वह मेरे लिए अच्छा खयाल रखती है। यहाँ मुझे खेलते देखकर वह और भी प्रभावित हुई। उसका इरादा है कि हिन्दुस्तान की एक नयी टीम तैयार की जाय और उसमें वही लोग लिये जायें जो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारी है। उसका प्रस्ताव है कि मै इस टीम का कप्तान बनाया जाऊँ। इसी इरादे से वह सारे हिन्दुस्तान का दौरा करना चाहती है। उसके स्वर्गीय पिता डा० एन० मुकर्जी ने बहुत काफ़ी सम्पत्ति छोड़ी है और वह उसकी सम्पूर्ण उत्तराधिकारिणी है। उसके प्रस्ताव सुन-कर मेरा सर आसमान मे उड़ने लगा। मेरी जिन्दगी का सुनहरा सपना इतने अप्रत्याशित ढग से वास्तविकता का रूप ले सकेगा, यह कौन सोच सकता था। अलौकिक शक्ति में मेरा विश्वास नहीं मगर आज मेरे शरीर का रोआँ-रोआँ कृतज्ञता और भक्ति भावना से भरा हुआ था। मैने उचित और विनम्र शब्दों मे मिस हेलेन को धन्यवाद दिया।

गाड़ी की घण्टी हुई। मिस मुकर्जी ने फर्स्ट क्लास के दो टिकट मँगवाये। मै विरोध न कर सका। उसने मेरा लगेज उठवाया, मेरा हैट खुद उठा लिया और बेधड़क एक कमरे में जा बैठी और मुझे भी अदर बुला लिया। उसका खानसामा तीसरे दर्जे में बैठा। मेरी क्रिया-शक्ति जैसे खो गयी थी। मैं भगवान् जाने क्यों इन सब मामलो मे उसे अगुवई करने देता था जो पुरुष होने के नाते मेरे अधिकार की चीज थी। शायद उसके रूप, उसकी बौद्धिक गरिमा, उसकी उदारता ने मुझ पर रोब डाल दिया था कि जैसे उसने कामरूप की जादूगरनियो की तरह मुझे भेड़ बना लिया हो और मेरी अपनी इच्छा-शक्ति लुप्त हो गयी हो। इतनी ही देर में मेरा अस्तित्व उसकी इच्छा में खो गया था। मेरे स्वाभिमान की यह माँग थी कि मै उसे अपने लिए फ़र्स्ट क्लास का टिकट न मँगवाने देता और तीसरे ही दर्जे

में आराम से बैठता और अगर पहले दर्जे मे बैठना था तो इतनी ही उदारता से दोनों के लिए खुद पहले दर्जे का टिकट लाता, लेकिन अभी तो मेरी क्रियाशक्ति लुप्त हो गयी थी।

२ जनवरी -- मै हैरान हूँ हेलेन को मुझसे इतनी हमदर्दी क्यो है, और यह सिर्फ दोस्ताना हमदर्दी नहीं है। इसमें मुहब्बत की सच्चाई है। दया मे तो इतना आतिथ्य-सत्कार नही हुआ करता, और रही मेरे गुणो की स्वीकृति, तो मैं अक्ल से इतना ख़ाली नही हूँ कि इस धोखे में पडूँ। गुणो की स्वीकृति ज़्यादा से ज़्यादा एक सिगरेट और एक प्याली चाय पा सकती है। यह सेवा-सत्कार तो मैं वही पाता हूँ जहाँ किसी मैच मे खेलने के लिए मुझे बुलाया जाता है। तो भी वहाँ भी इतने हार्दिक ढग से मेरा सत्कार नहीं होता, सिर्फ रस्मी खातिरदारी बरती जाती है। उसने जैसे मेरी सुविधा और मेरे आराम के लिए अपने को समर्पित कर दिया हो। मैं तो शायद अपनी प्रेमिका के सिवा और किसी के साथ इस हार्दिकता का बर्ताव न कर सकता। याद रहे, मैने प्रेमिका कहा है पत्नी नही कहा। पत्नी की हम खातिरदारी नहीं करते, उससे तो ख़ातिरदारी करवाना ही हमारा स्वभाव हो गया है और शायद सच्चाई भी यही है। मगर फ़िलहाल तो मैं इन दोनो नेमतों में से एक का भी हाल नहीं जानता। उसके नाश्ते, डिनर, लच मे तो मैं शरीक था ही, हर स्टेशन पर (वह डाक थी और खास-खास स्टेशनो पर ही रुकती थी) मेवे और फल मँगवाती और मुझे आग्रहपूर्वक खिलाती। कहाँ की क्या चीज़ मशहूर है इसका उसे खूब पता है। मेरे दोस्तों और घरवालों के लिए तरह-तरह के तोहफ़े खरीदे मगर हैरत यह है कि मैने एक बार भी उसे मना न किया। मना क्योंकर करता, मुझसे पूछकर तो लाती नही। जब वह एक चीज लाकर मुहब्बत के साथ मुझे भेंट करती है तो मैं कैसे इन्कार करूँ। खुदा जाने क्यो मै मर्द होकर भी उसके सामने औरत की तरह शर्मीला, कम बोलनेवाला हो जाता हूँ कि जैसे मेरे मुँह में ज़बान ही नहीं। दिन की थकान की वजह से रात भर मुझे बेचैनी रही। सर में हल्का-सा दर्द था मगर मैंने इस दर्द को बढाकर कहा। अकेला होता तो शायद इस दर्द की ज़रा भी परवाह न करता मगर आज उसकी मौजूदगी में मुझे उस दर्द को ज़ाहिर करने मे मज़ा आ रहा था। वह मेरे सर में तेल की मालिश करने लगी और मै खामखाह निढाल हुआ जाता था। मेरी बेचैनी के साथ उसकी परीशानी

बढती जाती थी। मुझसे बार-बार पूछती, अब दर्द कैसा है और मैं अनमने ढग से कहता — अच्छा हूँ। उसकी नाजुक हथेलियों के स्पर्श से मेरे प्राणों में गुदगुदी होती थी। उसका वह आकर्षक चेहरा मेरे सर पर झुका है, उसकी गर्म साँसें मेरे माथे को चूम रही है और मै गोया जन्नत के मज़े ले रहा हूँ। मेरे दिल मे अब उस पर फ़तेह पाने की ख्वाहिश झकोले ले रही है। मै चाहता हूँ वह मेरे नाज़ उठाये। मेरी तरफ से कोई ऐसी पहल न होनी चाहिए जिससे वह समझ जाये कि मै उस पर लट्टू हो गया हूँ। चौबीस घटे के अन्दर मेरी मनःस्थिति मे कैसे यह क्रांति हो जाती है, मैं क्योकर प्रेम के प्रार्थी से प्रेम का पात्र बन जाता हूँ। वह बदस्तूर उसी तल्लीनता से मेरे सिर पर हाथ रक्खे बैठी हुई है। तब मुझे उस पर रहम आ जाता है और मैं भी उस एहसास से बरी नही हूँ मगर इस माशूकी मे आज जो लुत्फ आया उस पर आशिक़ी निछावर है। मुहब्बत करना गुलामी है, मुहब्बत किया जाना बादशाहत।

मैने दया दिखलाते हुए कहा — आपको मेरी वजह से बड़ी तकलीफ हुई।

उसने उमगकर कहा — मुझे क्या तकलीफ हुई। आप दर्द से बेचैन थे और मै बैठी थी। काश यह दर्द मुझे हो जाता।

मै सातवे आसमान पर उड़ा जा रहा था।

५ जनवरी — कल शाम को हम लखनऊ पहुँच गये। रास्ते मे हेलेन से सांस्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक प्रश्नो पर खूब बाते हुई। ग्रेजुएट तो भगवान की दया से मै भी हूँ और तब से फुर्सत के वक़्त किताबे भी देखता ही रहा हूँ, विद्वानो की सगत मे भी बैठा हूँ लेकिन उसके ज्ञान के विस्तार के आगे कदम-कदम पर मुझे अपनी हीनता का बोध होता है। हर एक प्रश्न पर उसकी अपनी राय है और मालूम होता है कि उसने छान-बीन के बाद वह राय क़ायम की है। उसके विपरीत मै उन लोगो मे हूँ जो हवा के साथ उडते है, जिन्हे क्षणिक प्रेरणाएँ उलट-पलटकर रख देती है। मै कोशिश करता था कि किसी तरह उस पर अपनी अक़्ल का सिक्का जमा दूँ मगर उसके दृष्टिकोण मुझे बेज़बान कर देते थे। जब मैंने देखा कि ज्ञान-विज्ञान की बातों मे मै उससे न जीत सकूँगा तो मैने एबीसीनिया और इटली की लडाई का जिक्र छेड दिया जिस पर मैने अपनी समझ मे बहुत कुछ पढा था और इगलैण्ड और फ्रास ने इटली पर जो दबाव डाला है उसकी तारीफ़ में मैंने अपनी सारी वाक्-शक्ति खर्च कर दी। उसने एक मुस्कराहट के साथ कहा—आपका

यह खयाल है कि इगलैण्ड और फ्रास सिर्फ इंसानियत और कमजोर की मदद करने की भावना से प्रभावित हो रहे है तो आपकी गलती है। उनकी साम्राज्य-लिप्सा यह नही बर्दाश्त कर सकती कि दुनिया की कोई दूसरी ताकत फले-फूले। मुसोलिनी वही कर रहा है जो इँगलैण्ड ने कितनी ही बार किया है और आज भी कर रहा है। यह सारा बहुरूपियापन सिर्फ एबीसीनिया मे व्यावसायिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए है। इँगलैण्ड को अपने व्यापार के लिए बाजारों की जरूरत है, अपनी बढ़ी हुई आबादी के लिए जमीन के टुकड़ों की जरूरत है, अपने शिक्षितों के लिए ऊँचे पदों की जरूरत है तो इटली को क्यो न हो। इटली जो कुछ कर रहा है ईमानदारी के साथ एलानिया कर रहा है। उसने कभी दुनिया के सब लोगों के भाईचारे का डका नहीं पीटा, कभी शाति का राग नहीं अलापा। वह तो साफ कहता है कि सघर्ष ही जीवन का लक्षण है। मनुष्य की उन्नति लडाई ही के जरिये होती है। आदमी के अच्छे गुण लड़ाई के मैदान मे ही खुलते है। सबकी बराबरी के दृष्टिकोण को वह पागलपन कहता है। वह अपना शुमार भी उन्ही बड़ी कौमों में करता है जिन्हें रगीन आबादियों पर हुकूमत करने का हक है। इसलिए हम उसकी कार्य-प्रणाली को समझ सकते है। इँगलैण्ड ने हमेशा धोखेबाजी से काम लिया है। हमेशा एक राष्ट्र के विभिन्न तत्वो मे भेद डालकर या उनके आपसी विरोधों को राजनीति का आधार बनाकर उन्हे अपना पिछलग्गू बनाया है। मैं तो चाहती हूँ कि दुनिया में इटली, जापान और जर्मनी खूब तरक्की करें और इँगलैण्ड का आधिपत्य टूटे। तभी दुनिया में असली जनतत्र और शान्ति पैदा होगी। वर्तमान सभ्यता जब तक मिट न जायेगी, दुनिया मे शाति का राज्य न होगा। कमजोर कौमों को जिन्दा रहने का कोई हक नही, उसी तरह जिस तरह कमजोर पौधों को। सिर्फ इसलिए नहीं कि उनका अस्तित्व स्वयं उनके लिए कष्ट का कारण है बल्कि इसलिए कि वही दुनिया के इस झगड़े और रक्तपात के लिए जिम्मेदार है।

मैं भला क्यों इस बात से सहमत होने लगा। मैंने जवाब तो दिया और इन विचारों का इतने ही जोरदार शब्दो में खडन भी किया। मगर मैंने देखा कि इस मामले में वह सतुलित बुद्धि से काम नहीं लेना चाहती या नहीं ले सकती।

स्टेशन पर उतरते ही मुझे यह फ़िक्र सवार हुई कि हेलेन को अपना मेहमान कैसे बनाऊँ। अगर होटल में ठहराऊँ तो भगवान जाने अपने दिल मे क्या कहे। अगर अपने घर ले जाऊँ तो शर्म मालूम होती है। वहाँ ऐसी रुचि-सम्पन्न और

अमीरों जैसे स्वभाववाली युवती के लिए सुविधा की क्या सामग्रियाँ है। यह सयोग की बात है कि मैं क्रिकेट अच्छा खेलने लगा और पढ़ना-लिखना छोड-छाडकर उसी का हो रहा और एक स्कूल का मास्टर हूँ मगर घर की हालत बदस्तूर है। वही पुराना, अँधेरा, टूटा-फूटा मकान, तग गली में, वही पुराने रग-ढग, वही पुराना ढच्चर। अम्माँ तो शायद हेलेन को घर में क़दम ही न रखने दे। और यहाँ तक नौबत ही क्यों आने लगी, हेलेन खुद दरवाज़े ही से भागेगी। काश आज अपना मकान होता, सजा-सँवरा, मै इस काबिल होता कि हेलेन की मेहमानदारी कर सकता, इससे ज़्यादा खुशनसीबी और क्या हो सकती थी लेकिन बेसरोसामानी का बुरा हो।

मैं यही सोच रहा था कि हेलेन ने कुली से असबाब उठवाया और बाहर आकर एक टैक्सी बुला ली। मेरे लिए इस टैक्सी में बैठ जाने के सिवा दूसरा चारा क्या बाक़ी रह गया था। मुझे यकीन है, अगर मैं उसे अपने घर ले जाता तो उस बे-सरोसामानी के बावजूद वह खुश होती। हेलेन रुचि-सम्पन्न है मगर नख़रेबाज़ नही है। वह हर तरह की आज़माइश और तजुर्बे के लिए तैयार रहती है। हेलेन शायद आज़माइशों को और नागवार तजुर्बों को बुलाती है। मगर मुझमे न यह कल्पना है न वह साहस।

उसने ज़रा ग़ौर से मेरा चेहरा देखा होता तो उसे मालूम हो जाता कि उस पर कितनी शर्मिन्दगी और कितनी बेचारगी झलक रही थी। मगर शिष्टाचार का निबाह तो ज़रूरी था, मैंने आपत्ति की — मै तो आपको भी अपना मेहमान बनाना चाहता था मगर आप उल्टा मुझे होटल लिये जा रही है।

उसने शरारत से कहा — इसीलिए कि आप मेरे क़ाबू से बाहर न हो जायँ। मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होती कि आपके आतिथ्य-सत्कार का आनंद उठाऊँ लेकिन प्रेम ईर्ष्यालु होता है, यह आपको मालूम है। वहाँ आपके इष्ट मित्र आपके वक़्त का बड़ा हिस्सा लेंगे, आपको मुझसे बात करने का वक़्त ही न मिलेगा और मर्द आम तौर पर कितने बेमुरव्वत और जल्द भूल जानेवाले होते है इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं तुम्हें एक क्षण के लिए भी अलग नहीं छोड़ सकती। मुझे अपने सामने देखकर तुम मुझे भूलना भी चाहो तो नही भूल सकते।

मुझे अपनी इस खुशनसीबी पर हैरत ही नही, बल्कि ऐसा लगने लगा कि जैसे सपना देख रहा हूँ। जिस सुन्दरी की एक नज़र पर मै अपने को कुर्बान कर देता वह इस तरह मुझसे मुहब्बत का इजहार करे। मेरा तो जी चाहता था कि इसी

बात पर उसके क़दमों को पकड़कर सीने से लगा लूँ और आँसुओ से तर कर दूँ।

होटल मे पहुँचे। मेरा कमरा अलग था। खाना हमने साथ खाया और थोडी देर तक वही हरी-हरी घास पर टहलते रहे। खिलाड़ियों को कैसे चुना जाय, यही सवाल था। मेरा जी तो यही चाहता था कि सारी रात उसके साथ टहलता रहूँ लेकिन उसने कहा—आप अब आराम करें, सुबह बहुत काम है। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहा मगर सारी रात नीद नही आयी। हेलेन का मन अभी तक मेरी आँखों से छिपा हुआ है, हर क्षण वह मेरे लिए पहेली होती जा रही है।

१२ जनवरी—आज दिन भर लखनऊ के क्रिकेटरों का जमाव रहा। हेलेन दीपक थी और पतिंगे उसके गिर्द मँडरा रहे थे। यहाँ से मेरे अलावा दो लोगो का खेल हेलेन को बहुत पसद आया—बृजेन्द्र और सादिक। हेलेन उन्हे आल इंडिया टीम मे रखना चाहती थी। इसमे कोई शक नही कि दोनो इस फन के उस्ताद है लेकिन उन्होने जिस तरह शुरुआत की है उससे तो यही मालूम होता है कि वह क्रिकेट खेलने नही अपनी किस्मत की बाजी खेलने आये है। हेलेन किस मिजाज की औरत है, यह समझना मुश्किल है। बृजेन्द्र मुझसे ज्यादा सुन्दर है यह मै स्वीकार करता हूँ, रहन-सहन से पूरा साहब है। लेकिन पक्का शोहदा, लोफर। मैं नही चाहता कि हेलेन उससे किसी तरह का सबंध रक्खे। अदब तो उसे छू नही गया। बदजबान परले सिरे का, बेहूदा गन्दे मजाक, बातचीत का ढंग नही और मौके-महल की समझ नही। कभी-कभी हेलेन से ऐसे मतलब-भरे इशारे कर जाता है कि मै शर्म से सिर झुका लेता हूँ लेकिन हेलेन को शायद उसका बाजारूपन, उसका छिछोरापन महसूस नहीं होता। नही, वह शायद उसके गदे इशारों का मज़ा लेती है। मैने कभी उसके माथे पर शिकन नही देखी। यह मैं नहीं कहता कि यह हँसमुखपन कोई बुरी चीज़ है, न जिन्दादिली का मैं दुश्मन हूँ लेकिन एक लेडी के साथ तो अदब और कायदे का लिहाज रखना ही चाहिए।

सादिक एक प्रतिष्ठित कुल का दीपक है, बहुत ही शुद्ध-आचरण, यहाँ तक कि उसे ठण्डे स्वभाव का भी कह सकते है, बहुत घमंडी, देखने में चिडचिडा लेकिन अब वह भी शहीदों में दाख़िल हो गया है। कल आप हेलेन को अपने शेर सुनाते

रहे और वह खुश होती रही। मुझे तो उन शेरो मे कुछ मजा न आया। इससे पहले मैने इन हजरत को कभी शायरी करते नही देखा, यह मस्ती कहाँ से फट पडी है ? रूप मे जादू की ताकत है और क्या कहूँ। इतना भी न सूझा कि उसे शेर ही सुनाना है तो हसरत या जिगर या जोश के कलाम से दो-चार शेर याद कर लेता। हेलेन सबका कलाम पढे थोडे ही बैठी है। आपको शेर कहने की क्या जरूरत मगर यही बात उनसे कह दूँ तो बिगड़ जायेंगे, समझेंगे मुझे जलन हो रही है। मुझे क्यों जलन होने लगी। हेलेन की पूजा करनेवालो मे एक मै ही हूँ ? हाँ इतना जरूर चाहता हूँ कि वह अच्छे-बुरे की पहचान कर सके, हर आदमी से बेतकल्लुफी मुझे पसन्द नहीं, मगर हेलेन की नज़रों मे सब बराबर है। वह बारी-बारी से सबसे अलग हो जाती है और सबसे प्रेम करती है। किसी की ओर ज्यादा झुकी हुई है, यह फैसला करना मुश्किल है। सादिक की धन-सम्पत्ति से वह ज़रा भी प्रभावित नहीं जान पड़ती। कल शाम को हम लोग सिनेमा देखने गये थे। सादिक ने आज असाधारण उदारता दिखायी। जेब से वह रुपया निकालकर सबके लिए टिकट लेने चले। मियाँ सादिक जो इस अमीरी के बावजूद तगदिल आदमी है, मैं तो कजूस कहूँगा, हेलेन ने उनकी उदारता को जगा दिया है। मगर हेलेन ने उन्हे रोक लिया और खुद अदर जाकर सबके लिए टिकट लायी। और यो भी वह इतनी बेदर्दी से रुपया खर्च करती है कि मियाँ सादिक के छक्के छूट जाते है। जब उनका हाथ जेब में जाता है, हेलेन के रुपये काउन्टर पर जा पहुँचते है। कुछ भी हो, मैं तो हेलेन के स्वभाव-ज्ञान पर जान देता हूँ। ऐसा मालूम होता है वह हमारी फरमाइशों का इन्तजार करती रहती है और उनको पूरा करने मे उसे खास मजा आता है। सादिक साहब को उसने अलबम भेट कर दिया जो योरोप के दुर्लभ चित्रों की अनुकृतियों का सग्रह है और जो उसने योरोप की तमाम चित्रशालाओ मे जाकर खुद इकट्ठा किया है। उसकी आँखे कितनी सौन्दर्य-प्रेमी हैं। बृजेन्द्र जब शाम को अपना नया सूट पहनकर आया, जो उसने अभी सिलाया है, तो हेलेन ने मुस्कराकर कहा — देखो कहीं नज़र न लग जाय तुम्हे ! आज तो तुम दूसरे यूसुफ बने हुए हो। बृजेन्द्र बाग-बाग हो गया। मैने जब लय के साथ अपनी ताज़ा ग़ज़ल सुनायी तो वह एक-एक शेर पर उछल-उछल पड़ी। अद्भुत काव्यमर्मज्ञ है। मुझे अपनी कविता-रचना पर इतनी खुशी कभी न हुई थी मगर तारीफ जब सबका बुलौवा हो जाये तो उसकी क्या कीमत। मियाँ सादिक को कभी अपनी सुन्दरता का दावा नहीं हुआ। भीतरी सौन्दर्य से आप जितने मालामाल है बाहरी सौन्दर्य मे

उतने ही कगाल। मगर आज शराब के दौर मे ज्योंही उनकी आँखो में सुर्खी आयी हेलेन ने प्रेम से पगे हुए स्वर मे कहा — भइ, तुम्हारी ये आँखे तो जिगर के पार हुई जाती है। और सादिक साहब उस वक़्त उसके पैरो पर गिरते-गिरते रुक गये। लज्जा बाधक हुई। उनकी आँखों की ऐसी तारीफ शायद ही किसी ने की हो। मुझे कभी अपने रूप-रग, चाल-ढाल की तारीफ सुनने की इच्छा नही हुई। मैं जो कुछ हूँ, जानता हूँ। मुझे अपने बारे मे यह धोखा कभी नही हो सका कि मैं खूबसूरत हूँ। यह भी जानता हूँ कि हेलेन का यह सब सत्कार कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन अब मुझे भी यह बेचैनी होने लगी कि देखो मुझ पर क्या इनायत होती है। कोई बात न थी, मगर मैं बेचैन रहा। जब मै शाम को यूनिवर्सिटी ग्राउण्ड से खेल की प्रैक्टिस करके आ रहा था तो मेरे ये बिखरे हुए बाल कुछ और ज्यादा बिखर गये थे। उसने आसक्त नेत्रों से देखकर फौरन कहा — तुम्हारी इन बिखरी हुई जल्फो पर निसार होने को जी चाहता है! मैं निहाल हो गया, दिल में क्या-क्या तूफान उठे कह नहीं सकता।

मगर खुदा जाने क्यों हम तीनों मे से एक भी उसकी किसी अदा या अदाज या रूप की प्रशसा शब्दों में नही कर पाता। हमे लगता है कि हमें ठीक शब्द नहीं मिलते। जो कुछ हम कह सकते है उसमे कही ज्यादा प्रभावित है। कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती।

१ फरवरी — हम दिल्ली आ गये। इस बीच में मुरादाबाद, नैनीताल, देहरादून वग़ैरह जगहों के दौरे किये मगर कही कोई खिलाड़ी न मिला। अलीगढ़ और दिल्ली से कई अच्छे खिलाड़ियों के मिलने की उम्मीद है इसलिए हम लोग वहाँ कई दिन रहेगे। एलेविन पूरी होते ही हम लोग बम्बई आ जायेंगे और वहाँ एक महीने प्रैक्टिस करेंगे। मार्च में आस्ट्रेलियन टीम यहाँ से रवाना होगी। तब तक वह हिन्दुस्तान मे सारे पहले से निश्चित मैच खेल चुकी होगी। हम उससे आख़िरी मैच खेलेंगे और खुदा ने चाहा तो हिन्दुस्तान की सारी शिकस्तो का बदला चुका देंगे। सादिक और बृजेन्द्र भी हमारे साथ घूमते रहे। मैं तो न चाहता था कि ये लोग आये मगर हेलेन को शायद प्रेमियों के जमघट में मजा आता है। हम सब के सब एक ही होटल मे हैं और सब हेलेन के मेहमान है। स्टेशन पर पहुँचे तो सैकड़ों आदमी हमारा स्वागत करने के लिए मौजूद थे। कई औरतें भी थी

लेकिन हेलेन को न मालूम क्यों औरतों से आपत्ति है। उनकी सगत से भागती है, खासकर सुन्दर औरतों की छाया से भी दूर रहती है हालाँकि उसे किसी सुन्दरी से जलने का कोई कारण नहीं है। यह मानते हुए भी कि हुस्न उस पर खत्म नहीं हो गया है, उसमे आकर्षण के ऐसे तत्व मौजूद है कि कोई परी भी उसके मुकाबले में नही खड़ी हो सकती। नख-शिख ही तो सब कुछ नहीं है। रुचि का सौन्दर्य, बातचीत का सौन्दर्य, अदाओं का सौन्दर्य भी तो कोई चीज़ है। प्रेम उसके दिल में है या नही खुदा जाने लेकिन प्रेम के प्रदर्शन में वह बेजोड़ है। दिलजोई और नाज़बरदारी के फन मे हम जैसे दिलदारों को भी उससे शर्मिन्दा होना पड़ता है। शाम को हम लोग नयी दिल्ली की सैर को गये। दिलकश जगह है, खुली हुई सडके, जमीन के खूबसूरत टुकड़े, सुहानी रविशे। उसको बनाने मे सरकार ने बेदरेग रुपया खर्च किया है और बेज़रूरत। यह रक़म रिआया की भलाई पर खर्च की जा सकती थी मगर इसको क्या कीजिए कि जनसाधारण इसके निर्माण से जितने प्रभावित है उतने अपनी भलाई की किसी योजना से न होते। आप दस-पॉच मदरसे ज्यादा खोल देते या सड़कों की मरम्मत मे या, खेती की जाँच पड़ताल में इस रुपये को खर्च कर देते मगर जनता को शान-शौकत, धन-वैभव से आज भी जितना प्रेम है उतना आपके रचनात्मक कामो से नही है। बादशाह की जो कल्पना उसके रोम-रोम में घुल गयी है वह अभी सदियो तक न मिटेगी। बादशाह के लिए शान-शौकत जरूरी है। पानी की तरह रुपया बहाना जरूरी है। किफ़ायतशार या कजूस बादशाह चाहे वह एक-एक पैसा प्रजा की भलाई के लिए खर्च करे, इतना लोकप्रिय नही हो सकता। अग्रेज़ मनोविज्ञान के पडित है। अग्रेज ही क्यों हर एक बादशाह जिसने अपने बाहुबल और अपनी बुद्धि से यह स्थान प्राप्त किया है स्वभावतः मनोविज्ञान का पडित होता है। इसके बग़ैर जनता पर उसे अधिकार क्योंकर प्राप्त होता। खैर, यह तो मैने यूँही कहा। मुझे ऐसा अदेशा हो रहा है कि शायद हमारी टीम सपना ही रह जाये। अभी से हम लोगों में अनबन रहने लगी है। बृजेन्द्र क़दम-क़दम पर मेरा विरोध करता है। मै आम कहूँ तो वह अदबदाकर इमली कहेगा और हेलेन को उससे प्रेम है। जिन्दगी के कैसे-कैसे मीठे सपने देखने लगा था मगर बृजेन्द्र, कृतघ्न स्वार्थी बृजेन्द्र मेरी जिन्दगी तबाह किये डालता है। हम दोनों हेलेन के प्रिय पात्र नही रह सकते, यह तय बात है; एक को मैदान से हटना पड़ेगा।

७ फ़रवरी — शुक्र है दिल्ली मे हमारा प्रयत्न सफल हुआ। हमारी टीम मे तीन नये खिलाड़ी जुडे—जाफर, मेहरा और अर्जुन सिंह। आज उनके कमाल देखकर आस्ट्रेलियन क्रिकेटरों की धाक मेरे दिल से जाती रही। तीनो गेद फेकते है। जाफ़र अचूक गेद फेकता है, मेहरा सब्र की आजमाइश करता है और अर्जुन बहुत चालाक है, तीनों दृढ स्वभाव के लोग है, निगाह के सच्चे और अथक। अगर कोई इन्साफ़ से पूछे तो मै कहूँगा कि अर्जुन मुझसे बेहतर खेलता है। वह दो बार इँगलैण्ड हो आया है। अँग्रेजी रहन-सहन से परिचित है और मिज़ाज पहचानने-वाला भी अव्वल दर्जे का है, सभ्यता और आचार का पुतला। बृजेन्द्र का रग फीका पड गया। अब अर्जुन पर ख़ास कृपा-दृष्टि है और अर्जुन पर फ़तह पाना मेरे लिए आसान नही है, मुझे तो डर है वह कहीं मेरी राह का रोडा न बन जाये।

२५ फरवरी — हमारी टीम पूरी हो गयी। दो प्लेयर हमे अलीगढ से मिले, तीन लाहौर से और एक अजमेर से और कल हम बम्बई आ गये। हमने अजमेर, लाहौर और दिल्ली में वहाँ की टीमों से मैच खेले और उन पर बडी शानदार फ़तह पायी। आज बम्बई की हिन्दू टीम से हमारा मुकाबला है और मुझे यकीन है कि मैदान हमारे हाथ रहेगा। अर्जुन हमारी टीम का सबसे अच्छा खिलाडी है और हेलेन उसकी इतनी ख़ातिरदारी करती है कि मुझे जलन नही होती। इतनी ख़ातिरदारी तो मेहमान की ही की जा सकती है। मेहमान से क्या डर। मज़े की बात यह है कि हर व्यक्ति अपने को हेलेन का कृपा-पात्र समझता है और उससे अपने नाज उठवाता है। अगर किसी के सिर मे दर्द है तो हेलेन का फर्ज है कि उसकी मिज़ाजपुर्सी करे, उसके सर में चदन तक घिसकर लगा दे। मगर उसके साथ ही उसका रोब हर एक के दिल पर इतना छाया हुआ है कि कोई उसके किसी काम की आलोचना करने का साहस नही कर सकता। सब के सब उसकी मर्ज़ी के गुलाम है। वह अगर सबके नाज़ उठाती है तो हुकूमत भी हर एक पर करती है। शामियाने मे एक से एक सुन्दर औरतों का जमवट है मगर हेलेन के क़ैदियों की मजाल नही कि किसी की तरफ देखकर मुस्करा भी सके। हर एक के दिल पर ऐसा डर छाया रहता है कि जैसे वह हर जगह पर मौजूद है। अर्जुन ने एक मिस पर यूँ ही कुछ नजर डाली थी, हेलेन ने ऐसी प्रलय की आँख से उसे देखा कि सरदार साहब का रग उड़ गया। हर एक समझता है कि वह उसकी तक़दीर की मालिक

है और उसे अपनी तरफ से नाराज करके वह शायद जिन्दा न रह सकेगा। औरों की तो मै क्या कहूँ, मैने ही गोया अपने को उसके हाथों बेच दिया है। मुझे तो अब ऐसा लग रहा है कि मुझमे कोई ऐसी चीज खत्म हो गयी है जो पहले मेरे दिल मे डाह की आग-सी जला दिया करती थी। हेलेन अब किसी से बोले, किसी से प्रेम की बाते करे, मुझे गुस्सा नही आता। दिल पर चोट लगती जरूर है मगर उसका इजहार अकेले में आँसू बहाकर करने को जी चाहता है। वह स्वाभिमान कहाँ गायब हो गया नही कह सकता। अभी उसकी नाराज़गी से दिल के टुकडे हो गये थे कि एकाएक उसकी एक उचटती हुई-सी निगाह ने या एक मुस्कराहट ने गुदगुदी पैदा कर दी। मालूम नहीं उसमे वह कौन-सी ताकत है जो इतने हौसलामद नौजवान दिलों पर हुकूमत कर रही है। उसे बहादुरी कहूँ, चालाकी और फुर्ती कहूँ, हम सब जैसे उसके हाथों की कठपुतलियाँ है। हममे अपनी कोई शख़्सियत, कोई हस्ती नहीं है। उसने अपने सौन्दर्य से, अपनी बुद्धि से, अपने धन से और सबसे ज्यादा सबको समेट सकने की अपनी ताकत से हमारे दिलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

१ मार्च — कल आस्ट्रेलियन टीम से हमारा मैच खत्म हो गया। पचास हज़ार से कम तमाशाइयो की भीड़ न थी। हमने पूरी इनिंग्स से उनको हराया और देवताओं की तरह पुजे। हममें से हर एक ने दिलोजान से काम किया और सभी यकसाँ तौर पर फूले हुए थे। मैच खत्म होते ही शहरवालों की तरफ़ से हमें एक शानदार पार्टी दी गयी। ऐसी पार्टी तो शायद वाइसराय के सम्मान में भी न दी जाती होगी। मैं तो तारीफों और बधाइयो के बोझ से दब गया। मैंने ४४ रनों मे पाँच खिलाड़ियों का सफाया कर दिया था। मुझे खुद अपने भयानक गेद फेकने पर अचरज हो रहा था। जरूर कोई अलौकिक शक्ति हमारा साथ दे रही थी। इस भीड में बम्बई का सौन्दर्य अपनी पूरी शान और रगीनी के साथ चमक रहा था और मुझे दावा है कि सुन्दरता की दृष्टि से यह शहर जितना भाग्यशाली है दुनिया का कोई दूसरा शहर शायद ही हो। मगर हेलेन इस भीड़ में भी सबकी दृष्टियों का केन्द्र बनी हुई थी। यह जालिम महज हसीन नहीं है, मीठा बोलती भी है और उसकी अदाएँ भी मीठी है। सारे नौजवान परवानों की तरह उस पर मँडला रहे थे, एक से एक खूबसूरत, मनचले, और हेलेन उनकी भावनाओं से खेल

रही थी, उसी तरह जैसे वह हम लोगों की भावनाओ से खेला करती थी। महाराज-कुमार जैसा सुन्दर जवान मैने आज तक नही देखा। सूरत से रोब टपकता है। उनके प्रेम ने कितनी सुन्दरियों को दुख दिया है कौन जाने। मर्दाना दिलकशी का जादू-सा बिखरता चलता है। हेलेन उनसे भी वैसी ही आजाद बेतकल्लुफी से मिली जैसे दूसरे हजारो नौजवानों से। उनके सौन्दर्य का, उनकी दौलत का उस पर जरा भी असर न था। न जाने इतना गर्व, इतना स्वाभिमान उसमें कहाँ से आ गया है। कभी नहीं डगमगाती, कही रोब मे नहीं आती, कभी किसी की तरफ नही झुकती। वही हँसी-मजाक है, वही प्रेम का प्रदर्शन, किसी के साथ कोई विशेषता नहीं, दिलजोई सब की मगर उसी बेपरवाही की शान के साथ।

हम लोग सैर करके कोई दस बजे रात को होटल पहुँचे तो सभी ज़िन्दगी के नये सपने देख रहे थे। सभी के दिलो मे एक धुकधुकी-सी ही रही थी कि देखे अब क्या होता है। आशा और भय ने सभी के दिलों में एक तूफान-सा उठा रक्खा था गोया आज हर एक के जीवन की एक स्मरणीय घटना होनेवाली है। अब क्या प्रोग्राम है, इसकी किसी को खबर न थी। सभी जिन्दगी के सपने देख रहे थे। हर एक के दिल पर एक पागलपन सवार था। हर एक को यक़ीन था कि हेलेन की खास दृष्टि उस पर है मगर यह अदेशा भी हर एक के दिल मे था कि खुदा न ख़ास्ता कही हेलेन ने बेवफाई की तो यह जान उसके कदमों पर रख देगा, यहाँ से जिन्दा घर जाना कयामत था।

उसी वक्त हेलेन ने मुझे अपने कमरे में बुला भेजा। जाकर देखता हूँ तो सभी खिलाडी जमा है। हेलेन उस वक़्त अपनी शर्बती बेलदार साड़ी में आँखों मे चकाचौंध पैदा कर रही थी। मुझे उस पर झुँझलाहट हुई, इस आम मजमे में मुझे बुलाकर कवायद कराने की क्या ज़रूरत थी। मैं तो खास बर्ताव का अधि-कारी था। मै भूल रहा था कि शायद इसी तरह उनमे से हर एक अपने को खास बर्ताव का अधिकारी समझता हो।

हेलेन ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—दोस्तो, मै कह नही सकती कि आप लोगों की कितनी कृतज्ञ हूँ और आपने मेरी ज़िन्दगी की कितनी बड़ी आरजू पूरी कर दी। आप में से किसी को मिस्टर रतन लाल की याद आती है?

रतन लाल! उसे भी कोई भूल सकता है! वह जिसने पहली बार हिन्दु-स्तान की क्रिकेट टीम को इँगलैण्ड की धरती पर अपने जौहर दिखाने का मौका दिया, जिसने अपने लाखों रुपये इस चीज की नज़र किये और आख़िर बारबार

की पराजयों से निराश होकर वही इँगलैण्ड मे आत्म-हत्या कर ली। उसकी वह सूरत अब भी हमारी आँखों के सामने फिर रही है।

सब ने कहा—खूब अच्छी तरह, अभी बात ही कै दिन की है।

'आज इस शानदार कामयाबी पर मैं आपको बधाई देती हूँ। भगवान ने चाहा तो अगले साल हम इँगलैण्ड का दौरा करेंगे। आप अभी से इस मोर्चे के लिए तैयारियाँ कीजिए। लुत्फ तो जब है कि हम वहाँ एक मैच भी न हारें, मैदान बराबर हमारे हाथ रहे। दोस्तो, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। किसी लक्ष्य को पूरा करने के लिये जो काम किया जाता है उसी का नाम जिन्दगी है। हमें कामयाबी वहीं होती है जहाँ हम अपने पूरे हौसले से काम में लगे हो, वही लक्ष्य हमारा स्वप्न हो, हमारा प्रेम हो, हमारे जीवन का केन्द्र हो। हममे और इस लक्ष्य के बीच मे और कोई इच्छा, कोई आरजू दीवार की तरह न खड़ी हो। माफ कीजिएगा आपने अपने लक्ष्य के लिए जीना नही सीखा। आपके लिए क्रिकेट सिर्फ एक मनोरजन है। आपको उससे प्रेम नही। इसी तरह हमारे सैकड़ो दोस्त है जिनका दिल कही और होता है, दिमाग़ कही और, और वह सारी ज़िन्दगी नाकाम रहते है। आपके लिए मैं ज़्यादा दिलचस्पी की चीज़ थी, क्रिकेट तो सिर्फ मुझे खुश करने का ज़रिया था। फिर भी आप कामयाब हुए। मुल्क मे आप जैसे हजारो नौजवान है, जो अगर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जीना और मरना सीख जायँ तो चमत्कार कर दिखायें। जाइए और वह कमाल हासिल कीजिए। मेरा रूप और मेरी राते वासना का खिलौना बनने के लिए नहीं है। नौजवानों की आँखो को खुश करने और उनके दिलो में मस्ती पैदा करने के लिए जीना मैं शर्मनाक समझती हूँ। जीवन का लक्ष्य इससे कहीं ऊचा है। सच्ची जिन्दगी वही है जहाँ हम अपने लिए नही सबके लिए जीते है।'

हम सब सिर झुकाये सुनते रहे और झल्लाते रहे। हेलेन कमरे से निकलकर कार पर जा बैठी। उसने अपने रवानगी का इन्तजाम पहले ही कर लिया था। इसके पहले कि हमारे होश-हवास सही हो और हम परिस्थिति समझे, वह जा चुकी थी।

हम सब हफ्ते भर तक बबई की गलियो, होटलों, बँगलो की खाक छानते रहे, हेलेन कही न थी। और ज्यादा अफ़सोस यह है कि उसने हमारी ज़िन्दगी का जो आइडियल रखा वह हमारी पहुँच से ऊँचा है। हेलेन के साथ हमारी ज़िन्दगी का सारा जोश और उमग खत्म हो गयी।

—ज़माना, जुलाई १९३७

# कोई दुख न हो तो बकरी ख़रीद लो

उन दिनों दूध की तकलीफ थी। कई डेरी फार्मों की आज़माइश की, अहीरों का इम्तहान लिया, कोई नतीजा नहीं। दो-चार दिन तो दूध अच्छा मिलता फिर मिलावट शुरू हो जाती। कभी शिकायत होती दूध फट गया, कभी उसमें से नागवार बू आने लगती, कभी मक्खन के रेजे निकलते। आखिर एक दिन एक दोस्त से कहा — भाई, आओ साझे मे एक गाय ले ले। तुम्हे भी दूध का आराम होगा, मुझे भी। लागत आधी आधी, खर्च आधा आधा, दूध भी आधा आधा। दोस्त साहब राजी हो गये। मेरे घर में जगह न थी और गोबर वगैरह से मुझे नफ़रत है। उनके मकान में काफी जगह थी इसलिए प्रस्ताव हुआ कि गाय उन्ही के घर रहे। इसके बदले मे उन्हे गोबर पर एकछत्र अधिकार रहे। वह उसे पूरी आजादी से पाये, उपले बनाये, घर लीपें, पडोसियों को दें या उसे किसी आयुर्वेदिक उपयोग में लाये, इक़रार करनेवाले को इसमे किसी प्रकार की आपत्ति या प्रतिवाद न होगा और इकरार करनेवाला सही होश-हवास मे इकरार करता है कि वह गोबर पर कभी अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करेगा और न किसी को उसे इस्तेमाल करने के लिए आमादा करेगा।

दूध आने लगा, रोज-रोज की झंझट से मुक्ति मिली। एक हफ़्ते तक किसी तरह की शिकायत न पैदा हुई। गरम-गरम दूध पीता था और खुश होकर गाता था —

> रब का शुक्र अदा कर भाई जिसने हमारी गाय बनाई।
> ताजा दूध पिलाया उसने लुत्फ़े-हयात चखाया उसने।
> दूध में भीगी रोटी मेरी उसके करम ने बख्शी सेरी।
> खुदा की रहमत की है मूरत कैसी भोली-भाली सूरत।

मगर धीरे-धीरे यहाँ भी पुरानी शिकायतें पैदा होने लगी। यहाँ तक नौबत

---

१. एक फ़ारसी कहावत

पहुँची कि दूध सिर्फ नाम का दूध रह गया। कितना ही उबालो न कही मलाई का पता न मिठास। पहले तो शिकायत कर लिया करता था, इससे दिल का बुखार निकल जाता था। शिकायत से सुधार न होता तो दूध बन्द कर देता था। अब तो शिकायत का भी मौका न था, बन्द कर देने का जिक्र ही क्या। भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर, पियो या नाले में डाल दो। आठ आने रोज का नुस्खा किस्मत मे लिखा हुआ। बच्चा दूध को मुँह न लगाता, पीना तो दूर रहा। आधो आध शक्कर डालकर कुछ दिनो दूध पिलाया तो फोडे निकलने शुरू हुए और मेरे घर मे रोज बमचख मची रहती थी। बीवी नौकर से फ़रमाती — दूध ले जाकर उन्हीं के सर पटक आ। मै नौकर को मना करता। वह कहती — अच्छे दोस्त है तुम्हारे, उसे शरम भी नही आती। क्या इतना अहमक़ है कि इतना भी नही समझता कि यह लोग दूध देखकर क्या कहेगे ! गाय को अपने घर मँगवा लो, बला से बदबू आयगी, मच्छर होगे, दूध तो अच्छा मिलेगा। रुपये खर्च है तो उसका मजा तो मिलेगा।

चड्ढा साहब मेरे पुराने मेहरबान है। खासी बेतकल्लुफी है उनसे। यह हरकत उनकी जानकारी में होती हो यह बात किसी तरह गले के नीचे नही उतरती। या तो उनकी बीवी की शरारत है या नौकर की लेकिन जिक्र कैसे करूँ। और फिर उनकी बीवी से भी तो राह-रस्म है। कई बार मेरे घर आ चुकी है। मेरी बीवी जी भी उनके यहाँ कई बार मेहमान जा चुकी है। क्या वह यकायक इतनी बेवकूफ हो जायेगी, सरीहन आँखो में धूल झोंकेगी! और फिर चाहे किसी की शरारत हो, मेरे लिए यह गैरमुमकिन था कि उनसे दूध की ख़राबी की शिकायत करता। खैरियत यह हुई कि तीसरे महीने चड्ढा का तबादला हो गया। मैं अकेले गाय रख न सकता था। साझा टूट गया। गाय आधे दामो बेच दी गयी। मैंने उस दिन इत्मीनान की साँस ली।

आख़िर यह सलाह हुई कि एक बकरी रख ली जाय। वह बीच आँगन के एक कोने मे पड़ी रह सकती है। उसे दुहने के लिए न ग्वाले की जरूरत न उसका गोबर उठाने, नाँद धोने, चारा-भूसा डालने के लिए किसी अहीरिन की जरूरत। बकरी तो मेरा नौकर भी आसानी से दुह लेगा। थोड़ी-सी चोकर डाल दी, चलिये किस्सा तमाम हुआ। फिर बकरी का दूध फायदेमन्द भी ज़्यादा है, बच्चों के लिए खास तौर पर। जल्दी हजम होता है, न गर्मी करे न सर्दी, स्वास्थ्यवर्द्धक है। संयोग से मेरे यहाँ जो पडित जी मेरे मसौदे नकल करने आया करते थे, इन मामलों

में काफी तजुर्बेकार थे। उनसे ज़िक्र आया तो उन्होंने एक बकरी की ऐसी स्तुति गायी, उसका ऐसा कसीदा पढ़ा कि मैं बिन देखे ही उसका प्रेमी हो गया। पछाँही नसल की बकरी है, ऊँचे कद की, बड़े-बड़े थन जो ज़मीन से लगते चलते है। बेहद कमखोर लेकिन बेहद दुधार। एक वक़्त में दो-ढाई सेर दूध ले लीजिए। अभी पहली बार ही बियाई है। पच्चीस रुपये मे आ जायगी। मुझे दाम कुछ ज़्यादा मालूम हुए लेकिन पडितजी पर मुझे एतबार था। फ़रमाइश कर दी गयी और तीसरे दिन बकरी आ पहुँची। मै देखकर उछल पड़ा। जो-जो गुण बताये गये थे उनसे कुछ ज़्यादा ही निकले। एक छोटी-सी मिट्टी की नाँद मँगवायी गयी, चोकर का भी इन्तज़ाम हो गया। शाम को मेरे नौकर ने दूध निकाला तो सचमुच ढाई सेर। मेरी छोटी पतीली लबालब भर गयी थी। अब मूसलों ढोल बजायेंगे। यह मसला इतने दिनों के बाद जाकर कही हल हुआ। पहले ही यह बात सूझती तो क्यों इतनी परेशानी होती। पडितजी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। मुझे सबेरे तड़के और शाम को उसके सीग पकड़ने पड़ते थे तब आदमी दुह पाता था। लेकिन यह तकलीफ इस दूध के मुकाबले मे कुछ न थी। बकरी क्या है, कामधेनु है। बीवी ने सोचा इसे कही नजर न लग जाय इसलिए उसके थन के लिए एक गिलाफ़ तैयार हुआ, उसकी गर्दन में नीले चीनी के दानों का एक माला पहनाया गया। घर मे जो कुछ जूठा बचता, देवी जी खुद जाकर उसे खिला आती थीं।

लेकिन एक ही हफ्ते में दूध की मात्रा कम होने लगी। जरूर नजर लग गयी। बात क्या है। पण्डित जी से हाल कहा तो उन्होने कहा — साहब, देहात की बकरी है, जमीन्दार की ! बेदरेग अनाज खाती थी और सारे दिन बाग मे घूमा-चरा करती थी। यहाँ बँधे-बँधे दूध कम हो जाये तो ताज्जुब नहीं। इसे ज़रा टहला दिया कीजिए।

लेकिन शहर में बकरी को टहलाये कौन और कहाँ ? इसलिए यह तय हुआ कि बाहर कहीं मकान लिया जाय। वहाँ बस्ती से जरा निकलकर खेत और बाग होंगे, कहार घण्टे-दो घण्टे टहला लाया करेगा। झटपट मकान बदला और गो कि मुझे दफ़्तर आने-जाने में तीन मील का फ़ासला तय करना पड़ता था लेकिन अच्छा दूध मिले तो मैं इसका दुगना फ़ासला तय करने को तैयार था। यहाँ मकान खूब खुला हुआ था, मकान के सामने सहन था, ज़रा और बढ़कर आम और महुए वग़ैरह का बाग़। बाग से निकलिए तो काछियों के खेत थे, किसी में

आलू, किसी में गोभी। एक काछी से तय कर लिया कि रोजाना बकरी के लिए कुछ हरियाली दे जाया करे। मगर इतनी कोशिश करने पर भी दूध की मात्रा में कुछ खास बढ़ती नहीं हुई। ढाई सेर की जगह मुश्किल से सेर भर दूध निकलता था लेकिन यह तस्कीन थी कि दूध ख़ालिस है, यही क्या कम है।

मैं यह कभी नहीं मान सकता कि ख़िदमतगारी के मुकाबले में बकरी चराना ज़्यादा जलील काम है। हमारे देवताओं और नबियो का बहुत सम्मानित वर्ग गल्ले चराया करता था। कृष्ण जी गाये चराते थे। कौन कह सकता है कि उस गल्ले में बकरियाँ न रही होंगी। हजरत ईसा और हजरत मुहम्मद दोनों ही भेड़े चराते थे। लेकिन आदमी रूढ़ियों का दास है। जो कुछ बुजुर्गों ने नही किया उसे वह कैसे करे। नये रास्ते पर चलने के लिए जिस संकल्प और दृढ़ आस्था की जरूरत है वह हर एक मे तो होती नहीं। धोबी आपके गन्दे कपड़े धो लेगा लेकिन आपके दरवाजे पर झाड़ू लगाने में अपनी हतक समझता है। जरायमपेशा कौमों के लोग बाजार से कोई चीज क़ीमत देकर ख़रीदना अपनी शान के ख़िलाफ समझते हैं। मेरे खिदमतगार को बकरी लेकर बाग़ में जाना बुरा मालूम होता था। घर से तो ले जाय लेकिन बाग में उसे छोड़कर खुद किसी पेड़ के नीचे सो जाता। बकरी पत्तियाँ चर लेती थी। मगर एक दिन उसके जी मे आया कि ज़रा बाग से निकलकर खेतों की सैर करे। यों वह बहुत ही सभ्य और सुसंस्कृत बकरी थी, उसके चेहरे से गम्भीरता झलकती थी। लेकिन बाग और खेत में उसे यकसाँ आज़ादी नहीं है, इसे वह शायद न समझ सकी। एक रोज़ किसी खेत मे घुस गयी और गोभी की कई क्यारियाँ साफ कर गयी। काछी ने देखा तो उसके कान पकड़ लिये और मेरे पास लाकर बोला — बाबूजी, इस तरह आपकी बकरी हमारे खेत चरेगी तो हम तो तबाह हो जायँगे। आपको बकरी रखने का शौक है तो इसे बाँधकर रखिये। आज तो हमने आपका लिहाज किया लेकिन फिर हमारे खेत मे गयी तो हम या तो उसकी टाँग तोड़ देगे या कानीहौद भेज देंगे।

अभी वह अपना भाषण ख़तम न कर पाया था कि उसकी बीवी आ पहुँची और उसने इसी विचार को और भी जोरदार शब्दो मे अदा किया — हाँ हाँ करती ही रही मगर राँड खेत में घुस गयी और सारा खेत चौपट कर दिया, इसके पेट मे भवानी बैठे! यहाँ कोई तुम्हारा दबैल नहीं है। हाकिम होगे अपने घर के होगे। बकरी रखना है तो बाँधकर रखो नहीं गला ऐंठ दूँगी!

मैं भीगी बिल्ली बना हुआ खड़ा था। जितनी फटकार आज सहनी पड़ी

उतनी जिन्दगी मे कभी न सही। और जिस धीरज से आज काम लिया अगर उससे दूसरे मौको पर काम लिया होता तो आज आदमी होता। कोई जवाब ही न सूझता था। बस यही जी चाहता था कि बकरी का गला घोट दूँ और खिदमतगार को डेढ़ सौ हण्टर जमाऊँ। मेरी खामोशी से वह औरत और भी शेर होती जाती थी। आज मुझे मालूम हुआ कि किन्हीं-किन्ही मौकों पर खामोशी नुकसानदेह साबित होती है। खैर मेरी बीवी ने घर मे यह गुल-गपाडा सुना तो दरवाज़े पर आ गयी और हेकडी से बोली — तू कानीहौज पहुँचा दे और क्या करेगी, नाहक टर्र टर्र कर रही है, घण्टे भर से। जानवर ही है, एक दिन खुल गयी तो क्या उसकी जान लेगी? खबरदार जो एक बात भी मुँह से निकाली होगी। क्यो नही खेत के चारो तरफ झाड लगा देती, काँटो से रूँध दे। अपनी गलती तो मानती नहीं, ऊपर से लडने आयी है। अभी पुलिस मे इत्तला कर दे तो बँधे-बँधे फिरो।

वात कहने की इस शासनपूर्ण शैली ने उन दोनों को ठडा कर दिया। लेकिन उनके चले जाने के वाद मैंने देवी जी की खूब खबर ली — गरीबो का नुकसान भी करती हो ऊपर से रोब जमाती हो। इसी का नाम इंसाफ है?

देवी जी ने गर्वपूर्वक उत्तर दिया — मेरा एहसान तो न मानोगे कि शैतानों को कितनी आसानी से भगा दिया, लगे उल्टे डाँटने। गँवारो को राह बतलाने का सख्ती के सिवा दूसरा कोई तरीका नही। सज्जनता या उदारता उनकी समझ में नही आती। उसे यह लोग कमजोरी समझते है और कमजोर को कौन नहीं दबाना चाहता।

खिदमतगार से जवाब तलब किया तो उसने साफ कह दिया — साहब बकरी चराना मेरा काम नही है।

मैंने कहा — तुमसे बकरी चराने को कौन कहता है, जरा उसे देखते रहा करो कि किसी खेत मे न जाय, इतना भी तुमसे नही हो सकता?

'मै बकरी नहीं चरा सकता साहब, कोई दूसरा आदमी रख लीजिए।'

आखिर मैंने खुद शाम को उसे बाग में चरा लाने का फैसला किया। इतने ज़रा से काम के लिए एक नया आदमी रखना मेरी हैसियत से बाहर था। और अपने इस नौकर को जवाब भी नही देना चाहता था जिसने कई साल तक वफादारी से मेरी सेवा की थी और ईमानदार था। दूसरे दिन मै दफ्तर से ज़रा जल्द चला आया और चटपट बकरी को लेकर बाग मे जा पहुँचा। जाड़ों के दिन थे। ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़ों के नीचे सूखी पत्तियाँ गिरी हुई थी। बकरी पत्तियों

पर टूटी पड़ती थी गोया महीनों की भूखी हो। अभी इस पेड़ के नीचे थी, एक पल में वह जा पहुँची। मेरी दलेल हो रही थी, उसके पीछे-पीछे दौडता फिरता था। दफ्तर से लौटकर जरा आराम किया करता था, आज यह कवायद करना पडी, थक गया, मगर मेहनत सुफल हो गयी, आज बकरी ने कुछ ज्यादा दूध दिया। ✓

यह खयाल आया, अगर सूखी पत्तियाँ खाने से दूध की मात्रा बढ गयी तो यकीनन हरी पत्तियाँ खिलायी जायँ तो इससे कही बेहतर नतीजा निकले। लेकिन हरी पत्तियाँ आये कहाँ से? पेडों से तोड़ूँ तो बाग का मालिक जरूर एतराज़ करेगा, कीमत देकर हरी पत्तियाँ मिल न सकती थी। सोचा क्यों न एक बार बाँस के लग्गे से पत्तियाँ तोडे। मालिक ने शोर मचाया तो उससे आरजू-मिन्नत कर लेगे। राजी हो गया तो खैर, नही देखी जायगी। थोडी-सी पत्तियाँ तोड लेने से पेड़ का क्या बिगडा जाता है। चुनाचे एक पडोसी से एक पतला लम्बा बाँस माँग लाया, उसमे एक आँकुस बाँधा और शाम को बकरी को साथ लेकर पत्तियाँ तोडने लगा। चोर आँखो से इधर-उधर देखता जाता था, कही मालिक तो नहीं आ रहा है। अचानक वही काछी एक तरफ से आ निकला और मुझे पत्तियाँ तोडते देखकर बोला — यह क्या करते हो बाबू जी, आपके हाथ मे यह लग्गा अच्छा नही लगता। बकरी पालना हम गरीबो का काम है कि आप जैसे सरीफों का। मैं कट गया, कुछ जवाब न सूझा। इसमे क्या बुराई है, अपने हाथ से अपना काम करने में क्या शर्म वगैरह जवाब कुछ हलके, बेहकीकत, बनावटी मालूम हुए। सफेदपोशी के आत्मगौरव ने जबान बन्द कर दी। काछी ने पास आकर मेरे हाथ से लग्गा ले लिया और देखते-देखते हरी पत्तियो का ढेर लगा दिया और पूछा — पत्तियाँ कहाँ रख आऊँ।

मैने झेपते हुए कहा — तुम रहने दो मैं उठा ले जाऊँगा।

उसने थोडी-सी पत्तियाँ बगल मे उठा लीं और बोला — आप क्या पत्तियाँ रखने जायँगे, चलिए मैं रख आऊँ।

मैने बरामदे मे पत्तियाँ रखवा लीं। उसी पेड़ के नीचे उसकी चौगुनी पत्तियाँ पडी हुई थीं, काछी ने उनका एक गट्ठा बनाया और सर पर लादकर चला गया। अब मुझे मालूम हुआ, यह देहाती कितने चालाक होते है। कोई बात मतलब से ख़ाली नही।

मगर दूसरे दिन बकरी को बाग में ले जाना मेरे लिए कठिन हो गया। काछी

फिर देखेगा और न जाने क्या-क्या फिकरे चुस्त करे। उसकी नजरों मे गिर जाना मुँह मे कालिख लगाने से कम शर्मनाक न था। हमारे सम्मान और प्रतिष्ठा की जो कसौटी लोगो ने बना रक्खी है, हमको उसका आदर करना पडेगा, नक्कू बनकर रहे तो क्या रहे।

लेकिन बकरी इतनी आसानी से अपनी निर्द्वन्द्व आजाद चहलकदमी से हाथ न खीचना चाहती थी जिसे उसने अपनी साधारण दिनचर्या समझना शुरू कर दिया था। शाम होते ही उसने इतने जोर-शोर से प्रतिवाद का स्वर उठाया कि घर मे बैठना मुश्किल हो गया। गिटकिरीदार 'मे मे' का निरन्तर स्वर आ-आकर कान के पर्दो को क्षत-विक्षत करने लगा। कहाँ भाग जाऊँ? बीवी ने उसे गालियाँ देना शुरू की। मैने गुस्से मे आकर कई डंडे रसीद किये, मगर उसे सत्याग्रह स्थगित न करना था न किया। बडे सकट मे जान थी।

आखिर मजबूर हो गया। अपने किये का क्या इलाज! आठ बज रात जाडो के दिन। घर से बाहर मुँह निकालना मुश्किल और मै बकरी को बाग में टहला रहा था और अपनी किस्मत को कोस रहा था। अँधेरे मे पाँव रखते मेरी रूह काँपती है। एक बार मेरे सामने से एक साँप निकल गया था। अगर उसके ऊपर पैर पड जाता तो ज़रूर काट लेता। तब से मै अँधेरे मे कभी न निकलता था। मगर आज इस बकरी के कारण मुझे इस खतरे का भी सामना करना पडा। ज़रा भी हवा चलती और पत्ते खडकते तो मेरी आँखे ठिठुर जाती और पिंडलियाँ काँपने लगतीं। शायद उस जनम मे मै बकरी रहा हूँगा और यह बकरी मेरी मालकिन रही होगी। उसी का प्रायश्चित्त इस जिन्दगी मे भोग रहा था। बुरा हो उस पडित का, जिसने यह बला मेरे सिर मढ़ी। गिरस्ती भी जजाल है। बच्चा न होता तो क्यो इस मूजी जानवर की इतनी खुशामद करनी पडती। और यह बच्चा बड़ा हो जायगा तो बात न सुनेगा, कहेगा, आपने मेरे लिये क्या किया है। कौन-सी जायदाद छोडी है! यह सजा भुगतकर नौ बजे रात को लौटा। अगर रात को बकरी मर जाती तो मुझे जरा भी दु ख न होता।

दूसरे दिन सुबह से ही मुझे यह फिक्र सवार हुई कि किसी तरह रात की बेगार से छुट्टी मिले। आज दफ्तर मे छुट्टी थी। मैंने एक लम्बी रस्सी मँगवायी और शाम को बकरी के गले में रस्सी डाल एक पेड की जड से बाँधकर सो गया—अब चरे जितना चाहे। अब चिराग जलते-जलते खोल लाऊँगा। छुट्टी थी ही, शाम को सिनेमा देखने की ठहरी। एक अच्छा-सा खेल आया हुआ था। नौकर को

भी साथ लिया वर्ना बच्चे को कौन सँभालता। जब नौ बजे रात को घर लौटे और मै लालटेन लेकर बकरी लेने गया तो क्या देखता हूँ कि उसने रस्सी को दो-तीन पेडो मे लपेटकर ऐसा उलझा डाला है कि सुलझना मुशकिल है। इतनी रस्सी भी न बची थी कि वह एक कदम भी चल सकती। लाहौलविलाकूवत, जी मे आया कि कम्बख्त को यही छोड दूँ, मरती है तो मर जाय, अब इतनी रात को लालटेन की रोशनी से कौन रस्सी सुलझाने बैठे। लेकिन दिल न माना। पहले उसकी गर्दन से रस्सी खोली, फिर उसकी पेच-दर-पेच ऐंठन छुडायीं, एक घटा लग गया। मारे सर्दी के हाथ ठिठुरे जाते थे और जी जल रहा था वह अलग। यह तरकीब और भी तकलीफदेह साबित हुई।

अब क्या करूँ कुछ अक़्ल काम न करती थी। दूध का ख़याल न होता तो किसी को मुफ्त दे देता। शाम होते ही चुडैल अपनी चीख-पुकार शुरू कर देगी और घर मे रहना मुशकिल हो जायगा, और आवाज भी कितनी कर्कश और मनहूस होती है। शास्त्रो मे लिखा भी है, जितनी दूर उसकी आवाज़ जाती है उतनी दूर देवता नही आते। स्वर्ग की बसनेवाली हस्तियाँ, जो अप्सराओ के गाने सुनने की आदी है, उसकी कर्कश आवाज से नफरत करे तो क्या ताज्जुब ! मुझ पर उसकी कर्णकटु पुकारो का ऐसा आतक सवार था कि दूसरे दिन दफ्तर से आते ही मै घर से निकल भागा। लेकिन एक मील निकल जाने पर भी ऐसा लग रहा था कि उसकी आवाज मेरा पीछा किये चली आती है। अपने इस चिडचिडेपन पर शर्म भी आ रही थी। जिसे एक बकरी रखने की भी सामर्थ्य न हो वह इतना नाजुक-दिमाग़ क्यों बने और फिर तुम सारी रात तो घर से बाहर रहोगे नही, आठ बजे पहुँचोगे तो क्या वह गीत तुम्हारा स्वागत न करेगा ?

सहसा एक नीची शाखोवाला पेड देखकर मुझे बरबस उस पर चढ़ने की इच्छा हुई। सपाट तनो पर चढना मुशकिल होता है, यहाँ तो छ सात फुट की ऊँचाई पर शाखे फूट गयी थी। हरी-हरी पत्तियो से पेड लदा खडा था और पेड भी था गूलर का जिसकी पत्तियो से बकरियो को खास प्रेम है। मै इधर तीस साल से किसी रूख पर नही चढा। वह आदत जाती रही। इसलिए आसान चढाई के बावजूद मेरे पॉव कॉप रहे थे पर मैने हिम्मत न हारी और पत्तियाँ तोड-तोड नीचे गिराने लगा। यहाँ अकेले मे कौन मुझे देखता है कि पत्तियाँ तोड रहा हूँ। अभी अँधेरा हुआ जाता है। पत्तियो का एक गट्ठा बगल मे दबाऊँगा और घर जा पहुँचूँगा। अगर इतने पर भी बकरी ने कुछ चीं-चपड की तो उसकी शामत ही आ जायगी।

मै अभी ऊपर ही था कि बकरियो और भेडों का एक गोल न जाने किधर से आ निकला और पत्तियो पर पिल पडा। मै ऊपर चीख से रहा हूँ मगर कौन सुनता है। चरवाहे का कही पता नहीं। कही दुबक रहा होगा कि देख लिया जाऊँगा तो गालियाँ पडेगी। झल्लाकर नीचे उतरने लगा। एक-एक पल मे पत्तियाँ गायब होती जाती थी। उतरकर एक-एक की टाँग तोड़ूँगा। यकायक पाँव फिसला और मैं दस फिट की ऊँचाई से नीचे आ रहा। कमर मे ऐसी चोट आयी कि पाँच मिनट तक आँखों तले अँधेरा छा गया। खैरियत हुई कि और ऊपर से नही गिरा, नही तो यहीं शहीद हो जाता। बारे, मेरे गिरने के धमाके से बकरियाँ भागी और थोड़ी-सी पत्तियाँ बच रही। जब जरा होश ठिकाने हुए तो मैने उन पत्तियो को जमा करके एक गट्ठा बनाया और मजदूरो की तरह उसे कंधे पर रखकर शर्म की तरह छिपाये घर चला। रास्ते मे कोई दुर्घटना न हुई। जब मकान कोई चार फर्लांग रह गया और मैने कदम तेज किये कि कही कोई देख न ले तो वह काछी सामने से आता दिखायी दिया। कुछ न पूछो उस वक़्त मेरी क्या हालत हुई। रास्ते के दोनों तरफ खेतो की ऊँची मेडे थी जिनके ऊपर नागफनी के काँटे लगे हुए थे। अगर रस्ते रस्ते जाता हूँ तो वह जालिम मेरे बगल से होकर निकलेगा और भगवान जाने क्या सितम ढाये। कही मुडने का रास्ता नही और वह मरदूद जमदूत की तरह चला आता था। मैने धोती ऊपर सरकायी, चाल बदल ली और सिर झुकाकर इस तरह निकल जाना चाहता था कि कोई मजदूर है। तले की साँस तले थी, ऊपर की ऊपर, जैसे वह काछी कोई ख़ूँखार शेर हो। बार-बार ईश्वर को याद कर रहा था कि हे भगवान, तू ही आफत के मारे हुओ का मददगार है, इस मरदूद की जबान बन्द कर दे। एक क्षण के लिए, इसकी आँखों की रोशनी गायब कर दे. . . .आह, वह यत्रणा का क्षण जब मै उसके बराबर एक गज के फासले से निकला! एक-एक कदम तलवार की धार पर पड रहा था कि शैतानी आवाज कानो मे आयी— कौन है रे, कहाँ से पत्तियाँ तोडे लाता है।

मुझे मालूम हुआ, नीचे से जमीन निकल गयी है और मै उसके गहरे पेट मे जा पहुँचा हूँ। रोएँ, बर्छियाँ बने हुए थे, दिमाग मे उबाल-सा आ रहा था, शरीर को लकवा-सा मार गया था, जवाब देने का होश न रहा। तेज़ी से दो-तीन कदम आगे बढ़ गया, मगर वह ऐच्छिक क्रिया न थी, प्राण-रक्षा की सहज क्रिया थी।

कि एक ज़ालिम हाथ गट्ठे पर पड़ा और गट्ठा नीचे गिर पडा। फिर मुझे

याद नही, क्या हुआ। मुझे जब होश आया तो मैं अपने दरवाज़े पर पसीने मे तर खड़ा था गोया मिरगी के दौरे के बाद उठा हूँ। इस बीच मेरी आत्मा पर उपचेतना का आधिपत्य था और बकरी की वह घृणित आवाज, वह कर्कश आवाज़, वह हिम्मत तोड़नेवाली आवाज, वह दुनिया की सारी मुसीबतो का खुलासा, वह दुनिया की सारी लानतो की रूह कानों मे चुभी जा रही थी।

बीवी ने पूछा -- आज कहाँ चले गये थे? इस चुडैल को जरा बाग भी न ले गये, जीना मुहाल किये देती है। घर से निकलकर कहाँ चली जाऊँ!

मैने इत्मीनान दिलाया — आज चिल्ला लेने दो, कल सबसे पहला यह काम करूँगा कि इसे घर से निकाल बाहर करूँगा, चाहे कसाई को देना पडे।

'और लोग न जाने कैसे बकरियाँ पालते है।'

'बकरी पालने के लिए कुत्ते का दिमाग चाहिए।'

सुबह को बिस्तर से उठकर इसी फिक्र मे बैठा था कि इस काली बला से क्योंकर मुक्ति मिले कि सहसा एक गड़रिया बकरियो का एक गल्ला चराता हुआ आ निकला। मैंने उसे पुकारा और उससे अपनी बकरी को चराने की बात कही। गडरिया राज़ी हो गया। यही उसका काम था। मैने पूछा — क्या लोगे?

'आठ आने बकरी मिलते है हजूर।'

'मै एक रुपया दूँगा लेकिन बकरी कभी मेरे सामने न आवे।'

गड़रिया हैरत मे रह गया — मरकही है क्या बाबूजी?

'नही, नही, बहुत सीधी है, बकरी क्या मारेगी, लेकिन मै उसकी सूरत नहीं देखनी चाहता।'

'अभी तो दूध देती है?'

'हाँ, सेर-सवा सेर दूध देती है।'

'दूध आपके घर पहुँच जाया करेगा।'

'तुम्हारी मेहरबानी।'

जिस वक़्त बकरी घर से निकली है मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे घर का पाप निकला जा रहा है। बकरी भी खुश थी गोया कैद से छूटी है। गड़रिये ने उसी वक़्त दूध निकाला और घर में रखकर बकरी को लिये चला गया। ऐसा बेगरज़ गाहक उसे जिन्दगी में शायद पहली ही बार मिला होगा।

एक हफ्ते तक तो दूध थोड़ा-बहुत आता रहा फिर उसकी मात्रा कम होने लगी यहाँ तक कि एक महीना खतम होते-होते दूध बिलकुल बन्द हो गया। मालूम

हुआ बकरी गाभिन हो गयी है। मैने जरा भी एतराज न किया। काछी के पास गाय थी, उससे दूध लेने लगा। मेरा नौकर खुद जाकर दुहा लाता था।

कई महीने गुजर गये। गड़रिया महीने मे एक बार आकर अपना रुपया ले जाता। मैने कभी उससे बकरी का जिक्र न किया। उसके खयाल ही से मेरी आत्मा कॉप जाती थी। गड़रिये को अगर चेहरे का भाव पढ़ने की कला आती होती तो वह बड़ी आसानी से अपनी सेवा का पुरस्कार दुगना कर सकता था।

एक दिन मैं दरवाज़े पर बैठा हुआ था कि गड़रिया अपनी बकरियों का गल्ला लिये आ निकला। मै उसका रुपया लाने अन्दर गया, कि क्या देखता हूँ मेरी बकरी दो बच्चों के साथ मकान में आ पहुँची। वह पहले सीधी उस जगह गयी जहाँ बॅधा करती थी फिर वहॉ से आँगन मे आयी और शायद परिचय दिखलाने के लिए मेरी बीवी की तरफ ताकने लगी। उन्होने दौड़कर एक बच्चे को गोद मे ले लिया और कोठरी में जाकर महीनों का जमा चोकर निकाल लायीं और ऐसी मुहब्बत से बकरी को खिलाने लगी कि जैसे बहुत दिनों की बिछुडी हुई सहेली आ गयी हो। न वह पुरानी कटुता थी न वह मनमुटाव। कभी बच्चे को चुमकारती थीं, कभी बकरी को सहलाती थी और बकरी डाकगाड़ी की रफ्तार से चोकर उड़ा रही थी।

तब मुझसे बोली — कितने खूबसूरत बच्चे है!

'हॉ, बहुत खूबसूरत।'

'जी चाहता है, एक पाल लूँ।'

'अभी तबियत नही भरी।'

'तुम बड़े निर्मोही हो।'

चोकर ख़तम हो गया, बकरी इत्मीनान से बिदा हो गयी। दोनों बच्चे भी उसके पीछे फुदकते चले गये। देवी जी आॅख में आॅसू भरे यह तमाशा देखती रही।

गड़रिये ने चिलम भरी और घर मे आग मॉगने आया। चलते वक्त बोला — कल से दूध पहुँचा दिया करूँगा मालिक।'

देवीजी ने कहा — और दोनों बच्चे क्या पियेगे?

'बच्चे कहाँ तक पियेगे बहूजी। दो सेर दूध देती है, अभी दूध अच्छा न होता था, इस मारे नहीं लाया।'

मुझे रात की वह मर्मान्तिक घटना याद आ गयी।

मैंने कहा — दूध लाओ या न लाओ, तुम्हारी खुशी, लेकिन बकरी को इधर न लाना।

उस दिन से न वह गड़रिया नज़र आया और न वह बकरी, और न मैंने पता लगाने की कोशिश की। लेकिन देवीजी उसके बच्चों को याद करके कभी-कभी आँसू बहा लेती है।

—'वारदात' से